ISSN No. 0971-796 X

प्राकृत विद्या

वर्ष 12, अंक 4,
वर्ष 13, अंक 1,

संयुक्तांक

जनवरी-जून '2001 ई०

महावीर-चन्दना विशेषांक

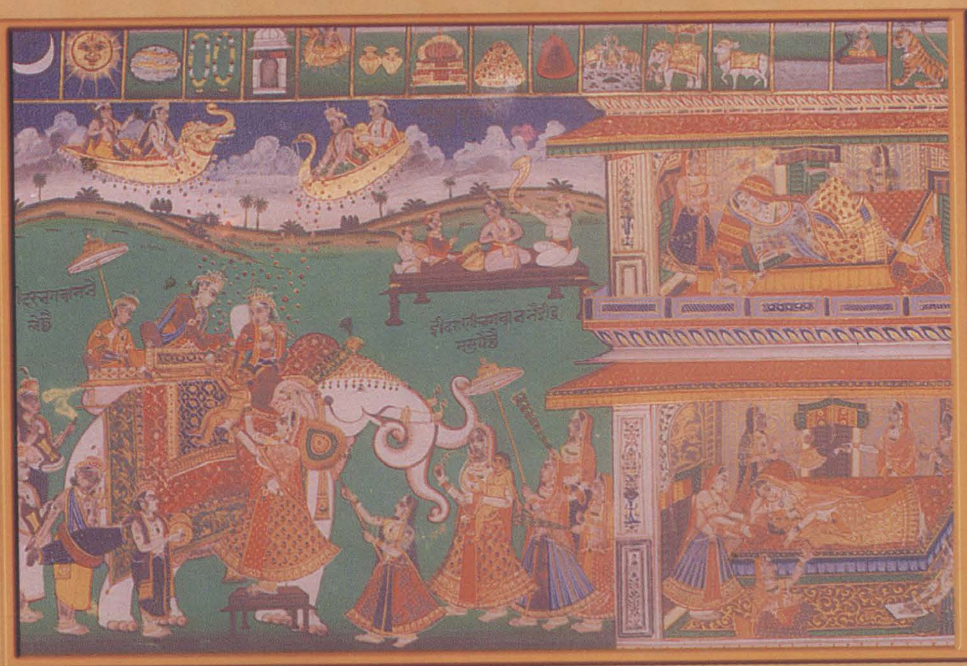

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के जन्मोत्सव का एक दुर्लभ प्राचीन चित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवरण पृष्ठ के बारे में

आवरण पृष्ठ पर मुद्रित चित्र जयपुर राजघराने के कोषागार में संकलित एक प्राचीन चित्र की छाया-अनुकृति है। यह लगभग 250 वर्ष प्राचीन है। इसमें भगवान् महावीर के गर्भ-कल्याणक एवं जन्म-कल्याणक का दृश्य चित्रित है। गर्भकल्याणक की सूचना ऊपर सोलह स्वप्नों के चित्र द्वारा दी गयी है। माँ प्रियकारिणी त्रिशला वैशाली-कुण्डग्राम के 'नन्द्यावर्त' राजमहल के अपने शयनकक्ष में लेटी हुई **आषाढ शुक्ल षष्ठी** के दिन प्रात:काल (रात्रि के अंतिम प्रहर में) परम मांगलिक सोलह स्वप्न देखती है। इस विषय में आचार्यों ने लिखा है—

"माता यस्य प्रभाते करिपति-वृषभौ सिंहपोतं च लक्ष्मीं,
मालायुग्मं शशांकं रवि-झषयुगले पूर्णकुम्भौ तटाकम्।
पायोधिं सिंहपीठं सुरगणनिभृतं व्योमयानं मनोज्ञम्,
चाद्राक्षीन्नागवासं मणिगणशिखिनौ तं जिनं नौमि भक्त्या।।"

अर्थ :— जिन तीर्थंकर वर्धमान महावीर की माता ने प्रभात-समय में ये 16 स्वप्न देखे हैं, उन्हें मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ :—

1. हाथी, 2. बैल, 3. सिंह, 4. लक्ष्मी, 5. दो मालायें, 6. चन्द्र, 7. सूर्य, 8. दो मछलियाँ, 9. जलपूर्ण दो कुम्भ, 10. तालाब, 11. समुद्र, 12. सिंहासन, 13. देव-विमान, 14. नाग-भवन, 15. रत्नराशि एवं 16. निर्धूम अग्नि।

भगवान् के गर्भकल्याणक के विषय में निम्नानुसार उल्लेख मिलता है—

"आषाढ-सुसित-षष्ठ्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते शशिनि।
आयात: स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीश:।।"

अर्थ :— 'आषाढ' मास के 'शुक्लपक्ष' की 'षष्ठी' तिथि को 'हस्त' नक्षत्र के मध्य में चन्द्रमा स्थित होने पर 'पुष्पोत्तर' नामक विमान के इन्द्र का जीव अपनी स्वर्ग-आयु को भोगकर माँ त्रिशला के गर्भ में अवतरित हुआ।

आधुनिक गणना के अनुसार यह तिथि शुक्रवार, 17 जून 599 ईसापूर्व बैठती है।

नौ माह, सात दिन और बारह घंटे का गर्भवास पूर्ण करके चैत्र शुक्ल त्रयोदशी सोमवार, 27 मार्च 598 ईसापूर्व को माँ त्रिशला की कुक्षि से स्वर्णिम-वर्ण की आभावाले भरतक्षेत्र के वर्तमानकाल के चरम तीर्थंकर का बालक वर्द्धमान के रूप में जन्म हुआ।

उनके गर्भवास के समय छप्पन कुमारी देवियाँ माता की सेवा करती रहीं। जन्म होने की सूचना पाते ही सौधर्मेन्द्र सपरिकर वैशाली नगरी में आया और उसने ऐरावत हाथी पर अत्यन्त बहुमानपूर्वक ले जाकर नवजात शिशु का सुदर्शनमेरु पर्वत की पाण्डुकशिला पर एक हजार आठ कलशों से भव्य जन्माभिषेक किया।

इसी का संक्षिप्त सांकेतिक वर्णन इस आवरण-चित्र में अंकित है।

—सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ISSN No. 0971-796 X

।। जयदु सुद-देवदा ।।

प्राकृत-विद्या
पागद-विज्जा

PRAKRIT-VIDYA
Pagad-Vijja

शौरसेनी, प्राकृत एवं सांस्कृतिक मूल्यों की त्रैमासिकी शोध-पत्रिका

The quarterly Research Journal of Shaurseni, Prakrit & Cultural Values

वीरसंवत् 2527 जनवरी-जून '2001 ई० (संयुक्तांक) वर्ष 12 अंक 4

Veersamvat 2527 January-June '2001 (Joint Issue) Year 12 Issue 4

आचार्य कुन्दकुन्द समाधि-संवत् 2013

मानद प्रधान सम्पादक

प्रो० (डॉ०) राजाराम जैन

निदेशक, कुन्दकुन्द भारती जैन शोध संस्थान

Hon. Chief Editor

PROF. (DR.) RAJA RAM JAIN

Director, K.K.B. Jain Research Institute

मानद सम्पादक

डॉ० सुदीप जैन

एम.ए. (प्राकृत), पी-एच.डी.

Hon. Editor

DR. SUDEEP JAIN

M.A. (Prakrit), Ph.D.

प्रकाशक

श्री सुरेश चन्द्र जैन

मंत्री

श्री कुन्दकुन्द भारती ट्रस्ट

Publisher

SURESH CHANDRA JAIN

Secretary

Shri Kundkund Bharti Trust

★ वार्षिक सदस्यता शुल्क – पचास रुपये (भारत) 6.0 $ (डालर) भारत के बाहर

★ एक अंक – पन्द्रह रुपये (भारत) 1.5 $ (डालर) भारत के बाहर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादक-मण्डल

डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री प्रो० (डॉ०) प्रेमसुमन जैन
डॉ० उदयचन्द्र जैन डॉ० जयकुमार उपाध्ये प्रो० (डॉ०) शशिप्रभा जैन

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ० वीरसागर जैन

श्री कुन्दकुन्द भारती (प्राकृत भवन)
18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110067
फोन (011) 6564510
फैक्स (011) 6856286

Kundkund Bharti (Prakrit Bhawan)
18-B, Spl. Institutional Area
New Delhi-110067
Phone (91-11) 6564510
Fax (91-11) 6856286

'आम्नाय' का वैशिष्ट्य

"वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशा: ।"

अर्थात् वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, **आम्नाय** और धर्मोपदेश —ये पाँच स्वाध्याय के अंग हैं।

"अष्टस्थानोच्चारविशेषेण यच्छुद्धं घोषणं पुन: पुन: परिवर्तनं स आम्नाय: कथ्यते ।"

—(आ० श्रुतसागर सूरि, तत्त्वार्थवृत्ति, नवम अध्याय, 25)

कण्ठ, तालु आदि आठ उच्चारण-स्थानों की विशेषता से जो शुद्ध घोषण/उच्चारण बारम्बार परिवर्तनपूर्वक किया जाता है, उसे 'आम्नाय' कहते हैं।

**

धन-कन-कंचन-राजसुख, सबहिं सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान।।

**

कातन्त्रव्याकरणम्

'कातन्त्रं हि व्याकरणं पाणिनीयेतरव्याकरणेषु प्राचीनतमम्। अस्य प्रणेतृविषयेऽपि विपश्चितां नैकमत्यम्। एवमेव कालविषये नामविषये च युधिष्ठिरो हि कातन्त्रप्रवर्तनकालो विक्रमपूर्व तृतीय-सहस्राब्दीति मन्यते।'

—(लेखक : लोकमणिदाहल:, व्याकरणशास्त्रेतिहास:, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 260)

**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

क्र.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
01.	मंगलाचरण : वर्द्धमान महावीर : ग्रन्थों के आलोक में		5
02.	सम्पादकीय : भगवान् महावीर की समसामयिकता	डॉ० सुदीप जैन	8
03.	सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव	आचार्य विद्यानन्द मुनि	17
04.	भगवान् महावीर और उनका जीवन-दर्शन	डॉ० ए०एन० उपाध्ये	28
05.	महावीर जन्मकल्याणक-महोत्सव (कविता)	अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ	41
06.	महावीर के संघ की गणिनी युगप्रवर्तिका 'चन्दनबाला'	डॉ० नीलम जैन	42
07.	वइसालीए कुमार-वड्ढमाणो	डॉ० उदयचन्द्र जैन	46
08.	आर्या चन्दनाष्टक (कविता)	डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया	53
09.	वैशालिक महावीर	श्रीमती रंजना जैन	54
10.	महासती चन्दना	श्रीमती नीतू जैन	60
11.	वैशाली और राजगृह	डॉ० सुदीप जैन	64
12.	थी शक्ति कैसी प्रभु-भक्ति में (कविता)	श्रीमती प्रभाकिरण जैन	75
13.	'तिलोयपण्णत्ती' में भगवान् महावीर और उनका सर्वोदयी दर्शन	डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल	77
14.	लोकतांत्रिक दृष्टि और भगवान् महावीर	प्रभात कुमार दास	82
15.	चन्दना-चरित	कवि श्री नवलशाह	86
16.	महावीर-देशना के अनुपम रत्न : अनेकान्त एवं स्याद्वाद	डॉ० सुदीप जैन	90
17.	महावीराष्टक स्तोत्र (हिन्दी पद्यानुवाद)	डॉ० वीरसागर जैन	101

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

18. वर्द्धमान महावीर : जीवन एवं दर्शन — डॉ० प्रेमचन्द रांवका — 103

19. भगवान् महावीर और अहिंसा-दर्शन — डॉ० सुदीप जैन — 107

20. स्मृति के झरोखे से — श्रीमती त्रिशला जैन — 112

21. त्रिशला-कुंवर की तत्त्वदृष्टि — डॉ० माया जैन — 113

22. भगवान् महावीर के 'अनेकान्त' का सामाजिक पक्ष — श्रीमती रंजना जैन — 117

23. नारी सम्मान की प्रतीक 'चन्दना' — कु० ममता जैन — 122

24. पुस्तक-समीक्षा — 124-127
   (i) मध्यप्रदेश का जैनशिल्प — 124
   (ii) धवलगान — 125
   (iii) रत्नाकर — 125
   (iv) चामुण्डराय वैभव — 126
   (v) शौरसेनी प्राकृतभाषा एवं उसके साहित्य का संक्षिप्त इतिहास — 127

25. अभिमत — 128

26. समाचार-दर्शन — 131

27. इस अंक के लेखक/लेखिकायें — 143

प्राचीन भारत में अहिंसक संस्कार

"सारे देश में कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन-प्याज खाता है; सिवाय चांडाल के। दस्यु को चांडाल कहते हैं। वे नगर के बाहर रहते हैं और जब नगर में पैठते हैं, तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं; ताकि लोग जान जायें और बचकर चलें कहीं उनसे छू न जायें। जनपद में सूअर और मुर्गी नहीं पालते, न जीवित पशु बेचते हैं, न कहीं सूनागार और मद्य की दुकानें हैं। क्रय-विक्रय में कौड़ियों का व्यवहार है। केवल चांडाल मछली मारते, मृगया करते और मांस बेचते हैं।"

—(चीनी यात्री फाह्यान का यात्रा-विवरण, पृष्ठ 64)

**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगलाचरण

वर्द्धमान महावीर : ग्रन्थों के आलोक में

सिद्धत्थराय पियेकारिणीहि कुंडले वीरे।
उत्तरफागुणि-रिक्खे चित्तसिया तेरसीए उप्पण्णो।। —*(यतिवृषभ)*

अर्थ :— कुण्डलपुर में राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी के घर चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को 'उत्तरफाल्गुनी' नक्षत्र में वीर प्रभु का जन्म हुआ।

जिण-जम्महो अणुदिय सोहमाण, णिय-कुल-सिरि देंक्खेवि वड्ढमाण।
सिय माणुकलाइ सहुँ सुरेहिं, सिरि सेहर - रयणहि भासुरेहिं।।
दहमे दिणि तहो भव बहु निवेण, किउ 'वड्ढमाण' इउ णामु तेण।।
—*(विवुध श्रीधर)*

अर्थ :— जिसकी जन्म लेने के उपरान्त दिनोंदिन शोभा बढ़ती गई और जिसके जन्म लेने पर कुल की श्री (लक्ष्मी) उसीप्रकार वर्द्धमान हुई, जैसे दिन में भानु की कलाओं और रात्रि में चन्द्रमा की कलाओं की श्री (शोभा) बढ़ जाती है; इसीलिए जन्म से दसवें दिन उस भवावलि-निवारक शिशुरूप प्रभु का नाम 'वड्ढमाण' (वर्द्धमान) रखा गया।

विशाला जननी यस्य विशालं कुलमेव च।
विशालं वचनं चास्य तेन वैशालिको जिन:।। —*(सूत्रकृतांग टीका)*

अर्थ :— जिनकी जननी विशाला (बड़े कुल व श्रेष्ठ आचरणवाली) कुल विशाल (उच्च) तथा वचन विशाल आशयवाले थे, वे जिनेन्द्र प्रभु इन कारणों से 'वैशालिक' कहलाते थे।

सन्मतिर्महतिर्वीरो महावीरोऽन्त्यकाश्यप:।
नाथान्वयो वर्धमानो यत्तीर्थमिह साम्प्रतम्।। —*(कवि धनञ्जय)*

अर्थ :— जिनका तीर्थ (धर्मतीर्थ) लोक में सम्प्रति (इस समय) चल रहा है, वे सन्मति, महतिवीर, महावीर, अन्त्यकाश्यप (काश्यप-गोत्रीय), नाथान्वयी वर्द्धमान हैं।

सो णाम महावीरो जो रज्जं पयहिऊण पव्वइयो।
काम-कोह-महासत्तुपक्ख णिग्घायणं कुणइ।। —*(अनुयोगद्वार सूत्र)*

अर्थ :— उन्हीं का नाम महावीर है, जिन्होंने राज्य-वैभव का परित्याग कर प्रव्रज्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(दीक्षा) ली और काम-क्रोध आदि विकराल शत्रुओं के पक्ष का निग्रह किया।

निगंठो आवुसो नातपुत्तो सव्वण्णु सव्वदरस्सी।

अपरिसेसे णाण दंस्सण परिजानाति।। —*(मज्झिमनिकाय, भाग 1)*

अर्थ :— आयुष्मान निगंठ (निर्ग्रन्थ) नातपुत्त (ज्ञातृपुत्र) (भगवान महावीर) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। वह अपने अपरिशेष (असीम) ज्ञान-दर्शन द्वारा सब कुछ जानते हैं।

सो जयदि जस्स केवलणाणुज्जल-दप्पणम्मि लोयालोयं।

पुढ पदिबिंबं दीसदि वियसिय, सयवत्त-गब्भउरो वीरो।। —*(आचार्य गुणधर)*

अर्थ :— जिनके केवलज्ञानरूपी उज्ज्वल दर्पण में लोकालोक स्पष्ट प्रतिबिंबित हुये दीखते हैं और जो विकसित कमल-गर्भ के समान तप्त-स्वर्णाभ हैं, वे वीर भगवान् जयवन्त हों !

ण पेॅम्मे णिसण्णो महावीर-सण्णो। तमीसं जदीणं जए संजदीणं।।

दमाणं जमाणं खमा संजमाणं। उद्दाणं रमाणं पबुद्धत्थमाणं।।

दया-वड्ढमाणं जिणे वड्ढमाणं। सिरेणं णमामो।।

—*(आचार्य पुष्पदन्त)*

अर्थ :— प्रेम में निस्संग (विषय-वासना में अनासक्त) महावीर हमारे लिये शरण हैं। उस इन्द्रियजयी संयमी ईश की जय हो ! दम, यम, क्षमा, संयम के धारक, अभ्युदय एवं निःश्रेयसरूप उभय लक्ष्मी में रमण करनेवाले, सम्पूर्ण तत्त्वार्थ के ज्ञाता तथा वृद्धिंगत दयावान वर्द्धमान जिनेन्द्र को हम मस्तक झुकाकर नमन करते हैं।

नमः श्री वर्द्धमानाय निर्द्धूत-कलिलात्मने।

सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते।। —*(आचार्य समन्तभद्र)*

अर्थ :— जिन्होंने अपनी आत्मा से कर्ममल धो डाला है और जिनकी विद्या (ज्ञान) में अलोकाकाश-सहित तीनों लोक दर्पणवत् प्रतिबिंबित होते हैं, उन श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार है।

नमो नमः सत्त्वहितंकराय, वीराय भव्याम्बुज-भास्कराय।

अनन्तलोकाय सुरार्चिताय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।। —*(पूज्यपाद देवनन्दि)*

अर्थ :— समस्त प्राणियों का हित करनेवाले, भव्यरूपी अम्बुजों (कमलों) को सूर्य के समान प्रफुल्लित करनेवाले, अनन्तलोक को देखनेवाले, सुरों (देवों) द्वारा अर्चित (पूजित) देवाधिदेव वीर जिनेन्द्र को बारम्बार नमस्कार है।

संसार-दावानल-दाह-नीरं, संमोह-धूलीहरणे समीरम्।

मायारस-दारण-सार-सीरं, नमामि वीरं गिरिसार-धीरम्।। —*(आ० हरिभद्रसूरि)*

अर्थ :— संसाररूपी दावानल की दाह (ज्वाला या जलन) को शान्त करने के लिये नीर (जल) के समान, सम्मोहरूपी धूल को उड़ाने के लिये समीर (हवा) के समान, माया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के रस को सोखने के लिये सीर (सूर्य) के समान तथा गिरि के समान धीर (धैर्यवान) 'वीर' को मैं नमस्कार करता हूँ !

अनन्तविज्ञानमतीतदोषमबाध्यसिद्धान्तममर्त्यपूज्यम् ।
श्रीवर्द्धमानं जिनमाप्तमुख्यं स्वयम्भुवं स्तोतुमहं यतिष्ये ।। —*(आचार्य हेमचन्द्रसूरि)*

अर्थ :— अनन्तज्ञान के धनी, समस्त दोषों से रहित, अकाट्य सिद्धान्त के प्रतिपादक, देवों द्वारा पूजित, आप्त-पुरुषों में प्रमुख, स्वयंभू वर्द्धमान जिनेन्द्र की स्तुति करने का मैं प्रयत्न करता हूँ।

कुंडलपुरि-सिद्धार्थ-भूपालम्, तत्पत्नी-प्रियकारिणी-बालम् ।
तत्कुलनलिन-विकाशितहंसम्, घातपुरोघातिक-विध्वंसम् ।।
ज्ञानदिवाकर-लोकालोकम्, निर्जित-कर्माराति-विशोकम् ।
बालवयस्संयम-सुपालितम्, मोहमहानल-मथन-विनीतम् ।। —*(पं० आशाधर)*

अर्थ :— वह कुंडलपुर के राजा सिद्धार्थ और उनकी पत्नी प्रियकारिणी के बालक (पुत्र) हैं। उनके कुलरूपी कमल को विकसित करनेवाले सूर्य के समान हैं। समस्त घात-प्रतिघात के विध्वंसक हैं। अपने ज्ञानरूपी सूर्य से लोक और अलोक को प्रकाशित करनेवाले हैं। कर्म शत्रुओं को पराजित कर वे विशोक (शोक से विहीन) हुए हैं। बालवय: से ही संयम का सम्यक् पालन कर और मोहरूपी महाअग्नि का शमन कर वह विनीत हुये हैं। ❖❖

'वैशाली' और 'पावापुर' दो तीर्थ

'भारत के प्राचीन धर्मों में जैनधर्म भी है। जैनधर्म के प्रतिष्ठापक* श्रमण महावीर कौन थे? यह भी घुमक्कड़-राज थे। घुमक्कड़-धर्म के आचरण में छोटी से बड़ी तक सभी बाधाओं और उपाधियों को उन्होंने त्याग दिया — घर-द्वार ही नहीं, वस्त्र का भी वर्णन किया था। 'करतल-भिक्षा तरुतलवास, दिग्-अंबरत्व उन्होंने इसीलिए अपनाया था कि निर्द्वन्द्व विचरण में कोई बाधा न रहे।

भगवान् महावीर दूसरी-तीसरी नहीं, प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ थे। वह आजीवन घूमते ही रहे। **वैशाली** में जन्म लेकर विचरण करते ही **पावा** में उन्होंने अपना शरीर छोड़ा।'

—*(महापण्डित श्री राहुल सांस्कृत्यायन, अथातो घुमक्कड़-जिज्ञासा)*

✳✳

* महावीर वस्तुत: जैनधर्म के प्रतिष्ठापक नहीं थे, अपितु परमप्रभावक थे। वर्तमान युग में जैनधर्म की प्रथम प्रभावना आदिब्रह्मा तीर्थंकर ऋषभदेव ने की थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

भगवान् महावीर की समसामयिकता

—डॉ० सुदीप जैन

वीर: सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधा: संश्रिता:।
वीरेणाभिहित: स्वकर्मनिचयो, वीराय भक्त्या नम:।।
वीरात् तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तप:।
वीरे श्री-धृति-कीर्ति-कान्ति-निचयो, हे वीर ! भद्रं त्वयि।।

इक्ष्वाकुवंश-केसरी, काश्यपगोत्री, लिच्छिविजाति-प्रदीप, नाथकुल-मुकुटमणि प्रात:स्मरणीय तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक का वर्षव्यापी कार्यक्रम विश्वस्तर पर मनाया जा रहा है। अनेकों समितियों का एतदर्थ विभिन्न स्तरों पर निर्माण हुआ है तथा व्यापक ऊहापोहपूर्वक बहुआयामी कार्यक्रमों की रूपरेखा भी बनायी गयी हैं। ऐसी योजनाओं आदि की चर्चा किये बिना मैं अपेक्षित समझता हूँ कि हम भगवान् महावीर के प्रामाणिक जीवनवृत्त और उनके सन्देशों की समसामयिकता को जान सके, तो भी वह वर्षव्यापी आयोजन किसी सीमा तक चरितार्थ हो सकता है।

भारतीय जीवन पर जैनसंस्कृति एवं भगवान् महावीर के आचार-विचार की अमिट छाप रही है। इसीलिए कृतज्ञ होकर सन्तों एवं मनीषियों ने उनका सविनय यशोगान किया है—

देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग ! सर्वज्ञ तीर्थंकर सिद्ध महानुभाव !!
त्रैलोक्यनाथ जिनपुंगव वर्द्धमान ! स्वामिन् गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते।।

अर्थ :— हे देवाधिदेव वीतराग-सर्वज्ञ-तीर्थंकर-सिद्ध-महानुभाव-त्रैलोक्यनाथ-परमेश्वर-जिनों में श्रेष्ठ वर्द्धमान महावीर स्वामी ! मैं आपके चरणयुगल की शरण में आया हूँ।

णाणं सरणं मे दंसणं च सरणं च चरिय-सरणं च।
तव-संजमं च सरणं भगवं सरणं महावीरो।।

अर्थ :— मेरे लिये ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-संयम शरणभूत हैं और भगवान् महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी मेरे लिए शरणभूत हैं।

ऐसे त्रिलोकपूज्य भगवान् महावीर स्वामी की जीवनगाथा जैन-परम्परा में आत्मा की अनादि-अनन्तता को प्रमाणित करती हुई वर्णित है। पुराणग्रन्थों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पौत्र 'मारीच' के भव से इनकी आत्मकथा प्रारंभ होती है। तीर्थंकर ऋषभदेव की दिव्यध्वनि के अनुसार यह मारीच स्वयं को भरतक्षेत्र का चौबीसवाँ तीर्थंकर बनना सुनिश्चित जानकर दुरभिमान के शिखर पर आरूढ होकर तीर्थंकर का विरोध करनेवाला बन गया और अनगिनत भव-भवान्तरों तक संसार में परिभ्रमण करता रहा। फिर महावीर के भव से दस भव पूर्व सिंह जैसी तिर्यंच पर्याय में दो ऋद्धिधारी मुनिराजों के सम्बोधन से आत्मबोधपूर्वक उसने सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया और मोक्षमार्ग के प्रथम सोपान पर पदविन्यास किया। कैसी विडम्बना थी कि स्वयं तीर्थंकर की दिव्यध्वनि से मनुष्य-पर्याय में जो तत्त्व समझ में नहीं आया, सामान्य मुनिराजों के समझाने पर तिर्यंच अवस्था में भी उसने उसे आत्मसात् कर लिया। फिर क्रमश: आत्मसाधना के पथ पर अग्रसर रहते हुये विविध पुण्यशाली पदों को अलंकृत करते हुये अंतत: 'वैशाली' गणतन्त्र के कुण्डग्रामाधिपति राजा सिद्धार्थ के आंगन में माँ प्रियकारिणी त्रिशला के हर्ष को बढ़ाते हुये उसने चरमशरीरी बनकर मनुष्य-जन्म सार्थक किया।

राजा सिद्धार्थ के सम्बन्ध में निम्नानुसार महिमागान प्राप्त होता है—

"भूपति-मौलिमाणिक्य: सिद्धार्थो नाम भूपति:।" —*(काव्य शिक्षा, 31)*

"नाथो नाथकुलस्यैक: सिद्धार्थाख्य:।" —*(उत्तरपुराण 75/8, पृष्ठ 482)*

माँ त्रिशला की कुक्षि में महावीर के जीव के अवतरण से पूर्व उनकी मन:स्थिति का प्रभावी चित्रण इस पद्य में वर्णित है—

"एषैकदा तु नवकल्पलतेव भूयो, भूय: प्रपन्नऋतुकापि फलेन हीना।
आलोक्य केलिकलहंसवधूं सगर्भां, दध्यौ धरापतिवधूरिति दीनचेता।।"

रानी त्रिशला को विवाह के वर्षों बाद भी पुत्रलाभ नहीं हुआ, इससे वह खिन्न रहती थीं। उसने एक दिन ऋतु-स्नान के बाद उद्यान पुष्करिणी पर केलिमग्न हंसवधू को देखा, वह हंसवधू गर्भवती थी। रानी त्रिशला विचारने लगी, मैं कल्पलता के समान बार-बार ऋतुमती होती हूँ; किन्तु फल कुछ नहीं अर्थात् फल से शून्य हूँ, पुत्ररहित हूँ। इसप्रकार वह दीन मन से विचारने लगी।

ऐसी मानसिक पीड़ा भोगने के बाद जब गर्भावतरण के छह मास पूर्व 'नन्द्यावर्त' महल के आंगन में दिव्य रत्नवृष्टि होने लगी, तभी से भावी तीर्थंकर के अवतरण की मनोरम कल्पना सभी के मन में अँगड़ाई लेने लगी। माँ प्रियकारिणी त्रिशला भी उस क्षण की उत्कंठा से प्रतीक्षा करने लगीं। फिर एक दिन आषाढ शुक्ल षष्ठी की प्रत्यूष-बेला (पंचमी की रात्रि के अन्तिम प्रहर) में उन्होंने दिव्य-फलसूचक उत्तमोत्तम सोलह स्वप्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखे, जिनका परिणाम राजा सिद्धार्थ और राजज्योतिष ने गणना करके भावी तीर्थंकर बालक का गर्भावतरण घोषित किया—

"आषाढ-सुसित-षष्ठ्यां हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते शशिनि।
आयात: स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीश:।।"

प्रभु का गर्भावतरण होते ही स्वर्ग से छप्पन कुमारी-देवियाँ आकर माँ त्रिशला की सेवा का दायित्व संभालने लगीं। क्रमश: गर्भकाल पूर्ण होने पर चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन प्रात:काल वैशाली का सौभाग्य अवतरित हुआ। प्रभु के जन्म की सूचना पाते ही तीनों लोगों में आनंद छा गया और—

"उन्मीलितावधिदशा सहसा विदित्वा, तज्जन्मभक्ति भरत: प्रणतोत्तमाङ्गा:व।
घण्टा-निनाद-समवेतनिकायमुख्या, दिष्टया ययुस्तदिति 'कुण्डपुरं' सुरेन्द्रा।।"

—(महाकवि असग रचित 'वर्धमान-चरित्र')

अवधिज्ञान से कुण्डपुर में तीर्थंकर का जन्म हुआ जानकर सुरेन्द्र तीर्थंकर का जन्म-कल्याणक मनाने के लिए उस कुण्डपुर में आये। उस समय भक्ति के भार से उनके मस्तक नत थे। प्रभु का जन्म हुआ है — इस बात की सूचना **कल्पवासी** देवों को वहाँ उस समय **घंटे के बजने** से हो जाती है। व्यन्तर देवों को **भेरी** के वजनों से, ज्योतिषियों को **सिंहनाद** के होने से, **भवनवासियों को शंख** की मधुर ध्वनि होने से प्रभु के जन्म होने का समाचार विदित हो जाता है। सबके सब सुरेन्द्र अपने परिवार-सहित अपने-अपने भाग्य की सराहना करते हुए ठाठ-बाट से प्रभु का जन्म-कल्याणक मनाने वैशाली के कुण्डपुर को तुरन्त प्रस्थान करते हैं।

स्वयं सौधर्मेन्द्र भी भावी तीर्थंकर का जन्मकल्याणक मनाने आया और सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर सद्योजात बालकपन एक हजार आठ कलशों से भव्य जन्माभिषेक कर उसने भावी तीर्थंकर बालक की स्तुति की—

"देव ! त्वय्यद्य जाते त्रिभुवनमखिलं चाद्यजातं सनाथम्।
जातो मूर्तोद्य धर्म: कुमतबहुतमो ध्वस्तभद्यैव जातम्।।
स्वर्मोक्षद्वार कपाटं स्फुटमिह निवृतं चाद्य पुण्याहमाशी।
र्जातं लोकाग्रचक्षुर्जय जय भगवज्जीव वर्धस्व नंद।।"

—(पं० नेमिचंद्र प्रतिष्ठा तिलक, 9/7)

अर्थ :— हे देव ! तीर्थंकर वर्द्धमान आज आपके जन्म लेने से सम्पूर्ण त्रैलोक्य आज सनाथ हो गया है, आज धर्म मूर्तरूप में 'साक्षात्' उपस्थित हो गया है, कु-मत या मिथ्यात्वरूपी तम आज नष्ट हो गया है, आज स्वर्ग और मोक्ष के द्वार, जो बन्द थे, खुल गये हैं; मैं पवित्र हो गया हूँ। हे लोकाग्रचक्षु ! हे भगवन् ! आप जीवित रहो — बढ़ते रहो, आनन्दित होओ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने लाड़ले पुत्र का नृप सिद्धार्थ ने बड़े लाड़-दुलार से सार्थक नामकरण किया 'वर्द्धमान'— **"श्री वर्द्धमान इति नाम चकार राजा"**

तब वहाँ उपस्थित समस्त देवों एवं नर-नारियों ने तुमुलघोष किया—

"जय वड्ढमाण-जस वड्ढमाण"

अर्थ :— जिनका यश सदा वर्द्धमान (उत्तरोत्तर वृद्धिंगत) है, ऐसे वर्द्धमान की जय हो।

उनके शरीर का वर्ण तपे हुए सोने के समान तेजस्वी एवं नयनाभिराम था।

"णमिदूण वड्ढमाणं कणयणिहं देवराय-परिपुज्जं"

—*(गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा 401)*

अन्यत्र इन्हें गाय के दूध के समान पीताभ गौरवर्णी कहा गया है—

"गोखीर-संखधवलं मंसं रुधिरं च सव्वंगे" —*(आ० कुन्दकुन्द, बोधपाहुड, 4/38)*

उनका शरीर एक हजार आठ शुभ लक्षणों से युक्त था—

"सहसट्ठ-सुलक्खणेहिं संजुत्तो" —*(दंसणपाहुड, 35)*

चूँकि उनके जन्म के समय नन्द्यावर्त राजप्रासाद पर 'सिंह' चिह्नांकित ध्वजा फहरा रही थी, अत: उनका चिह्न 'सिंह' घोषित हुआ—

"सिंहो अर्हतां ध्वजा"

लिच्छिवियों की पताका (ध्वजा) पर 'सिंह' का चिह्न अंकित था।

तत्कालीन प्रख्यात ज्योतिषियों ने तिथि-नक्षत्र, मुहूर्त्त आदि की विशद गणनापूर्वक कुमार वर्द्धमान की जन्मकुण्डली बनायी—

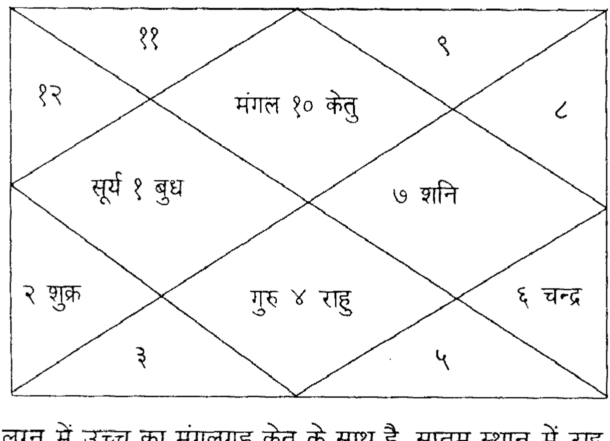

इसमें लग्न में उच्च का मंगलग्रह केतु के साथ है, सप्तम स्थान में राहु है और उस स्थान पर मंगल की पूर्ण दृष्टि है। इसलिये यह स्पष्ट है कि तीर्थंकर कुमार वर्द्धमान निश्चयरूप से **अविवाहित** रहे। उपर्युक्त ग्रह उनका बाल **ब्रह्मचारी** होना सिद्ध करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। चौथे स्थान में पापग्रहों से युक्त अष्टमेश है। मंगल और शनि पापग्रह हैं।

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार सप्तम भाव में राहु स्थित हो, इस भावपर पापग्रह की दृष्टि हो, सप्तमेश पापाक्रान्त हो, तो पत्नी का अभाव रहता है। ऐसे जातक का विवाह नहीं होता, इस योग से उसके संयमी होने की सूचना मिलती है।

इसी के परिणामस्वरूप वे अविवाहित रहे तथा अपनी अल्प-आयु का बोध भी उन्हें संसार के बंधनों से विरत रखकर संयममार्ग की ओर आकर्षित कर रहा था। इसप्रकार इनकी कुमारदीक्षा हुई और 'पंच बालयति' तीर्थंकरों में इनकी गणना हुई—

"वासुपूज्यस्तथा मल्लिर्नेमिः पार्श्वोऽथ सन्मतिः।
कुमाराः पंच निष्क्रान्ताः पृथिवीपतयः परे।। —*(दशभक्ति, पृ० 247)*

"वासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पार्श्व-वर्धमान-तीर्थकराणां कुमारदीक्षितानां यौवनराज्य-स्थापनपर्यंतं जन्माभिषेक-क्रियां कुर्यात्।" —*(प्रतिष्ठातिलक 2 अ०, पृ० 503)*

समवायांगसूत्र, ठाणांगसूत्र, पउमचरिय तथा आवश्यकनिर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु की मान्यता है कि **वर्द्धमान अविवाहित थे।** उद्धरण के रूप में 'समवायांग सूत्र' की एक गाथा इसप्रकार है—

"तिहुयणपहाणसामिं, कुमारकाले वि तविय तवयरणे।
वसुपुज्ज-सुदं मल्लिं चरिमतियं सत्थुवे णिच्चं।।"

'कुमार' शब्द का अर्थ विवाहित लेने पर पाँचो तीर्थंकरों को विवाहित मानना होगा, अतः यह संभव नहीं। —*(पं० दलसुखभाई मालवणिया)*

महान् दार्शनिक **पाइथागोरस** ब्रह्मचर्य की महिमा बताते हुये लिखते हैं—

"जो व्यक्ति अपने आप पर नियंत्रण नहीं कर सकता है, वह स्वतंत्र (स्वाधीन) नहीं हो सकता है। अपने आप पर शासन और अनुशासन की शक्ति-सामर्थ्य 'ब्रह्मचर्य' के बिना संभव नहीं है।"

यद्यपि युवराज-अवस्था में ही इनका चिन्तन और प्रशान्तमुद्रा विज्ञजनों को भी 'सन्मति' प्रदान करती थी—

"संजयस्यार्थ-संदेहे संजाते विजयस्य च, जन्मानन्तरमेवैनमभ्येत्यालोकमात्रतः।
तत्संदेहे गते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः, अस्त्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः।।"
—*(उत्तरपुराण, 74/282-3, पृष्ठ 462)*

अर्थ :— पार्श्वापत्य 'संजय' और 'विजय' नाम के दो चारण-मुनियों को इस बात में भारी सन्देह उत्पन्न हो गया था कि मृत्यु के उपरान्त जीव पुनः किसी दूसरी पर्याय में जन्म लेता है या नहीं? वर्द्धमान के जन्म के कुछ समय बाद उन चारण मुनिराजों ने जब भावी तीर्थंकर बालक वर्द्धमान को देखा, तो उसी क्षण उनका वह संदेह दूर हो गया। अतएव उन्होंने भक्ति से उनका नाम **'सन्मति'** रखा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जो संजय-विजयहिं चारणेहिं, अवलेइउ सेसवि देवदेउ,
णट्ठउ भीसणु संदेहहेउ, सम्मइ कोंक्कउ संजम-धणेहिं।
विरइय-गुर-विणय-पयाहिणेहिं।।" —*(वीरजिणिदचरिउ, 1-10-15)*

'संजय' और 'विजय' नामक चारणऋद्धिधारी मुनियों ने उनके शैशवकाल में ही देवों के देव तीर्थंकर वर्द्धमान को जान लिया।

और अब तो वे साक्षात् संयम-साधना के मार्ग पर अग्रसर हो गये थे।

"यः सर्वसिद्धान्प्रणिपत्य केशानुत्पाट्य दिव्यांबरमालयभूषाः।
त्यक्त्वा प्रवव्राज निजात्मलब्धै..।।"

—*(प्रतिष्ठापाठ 309)*

उन्होंने 'णमो सिद्धाणं' उच्चारण करके उत्तम और देवापनीत सुन्दर वस्त्र-माल्य आभूषणों को त्यागकर हाथों से पंचमुष्टि केशलोंच किया और आत्मपद प्राप्ति-हेतु निर्ग्रन्थ-दीक्षा ग्रहण की।

आत्मसाधना करते हुए वे एक बार कौशाम्बी नगरी में पधारे। वहाँ नारी-समूह की शिरोमणि आर्या चन्दना अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोगती हुई श्रेष्ठि वृषभदत्त की पत्नी की ईर्ष्या के कारण तलघर में वंदिनी बनी हुई थी। उसके आहारदान के पुण्य-परिणाम को सफल बनाते हुए मुनिराज वर्द्धमान ने उससे आहार ग्रहण किया एवं दानतीर्थ के अध्याय में तो नया अध्याय जोड़ा ही, नारियों के आत्मगौरव की प्रतिष्ठा भी की।

आहारदान-चन्दना की महिमा के बारे में आचार्य गुणभद्र लिखते हैं—

"शील-महात्म्यसंभूत पृथुहेमशराविका।
शालयन्नभाववत्कोद्रवोदना विधिवत्सुधी।।" —*(उत्तरपुराण, 74/346)*

अर्थ :— चन्दना के शील के माहात्म्य से मिट्टी के बर्तन स्वर्णमय हो गये तथा साधारण उबले हुए कोदों उत्कृष्ट शालितंदुल से निर्मित खीर बन गये।

इसीप्रकार निरन्तर आत्मसाधना एवं विहार करते हुए बारह वर्ष व्यतीत होने पर 'जृम्भिका' ग्राम के निकट 'ऋजुकूला' नदी के तट पर उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हुई—

"ग्राम-पुर-खेट-कर्वट-मडम्ब-घोषाकरान्प्राविहार।
उग्रैस्तपोविधातै-र्हादशवर्षाण्यमरपूज्यः।।" —*(पूज्यपाद निर्वाणभक्ति, 10)*

"नयन द्वादशवर्षाणि साधिकानि छद्मस्थो मौनव्रती तपश्चचार"

—*(शीलांक, आचारांग सूत्रवृत्ति, पृ० 273)*

"गमइय छदुमत्थत्तं बारसवासाणि पंच-मासे य।
पण्णरसाणि दिणाणि य तिरयणसुद्धो महावीरो।।"

—*(जयधवला, भाग 1, पृ० 81)*

अर्थ :— मुनिदीक्षा के बाद छद्मस्थ-अवस्था में बारह वर्ष, पाँच माह और पन्द्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिन व्यतीत करने के उपरान्त महावीर मन-वचन-कर्म से शुद्ध (वीतरागी-सर्वज्ञ भगवान्) बन गये।

इसप्रकार तीसरे 'ज्ञान-कल्याणक' का मंगल-प्रसंग उपस्थित हुआ। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने तत्काल धर्मसभा 'समवसरण' की रचना की। बारह सभाओं में मनुष्य, तिर्यंच और देव तीर्थंकर के मंगल प्रवचन 'दिव्यध्वनि' के श्रवणार्थ एकत्रित हुए; किन्तु उन्हें निराश होना पड़ा। नियत समय पर तीर्थंकर महावीर का वहाँ से विहार हो गया। यह क्रम कई दिनों तक चला, तो इन्द्र चिन्तित हो गया। उसने अपने अवधिज्ञान से जाना कि समर्थ शिष्य के अभाव में दिव्यध्वनि नि:सृत नहीं हो रही है। तब अवधिज्ञान से ही गौतम-गोत्रीय इन्द्रभूति नामक विप्रवर को इस पद के योग्य पाया और नीतिपूर्वक वह उन्हें समवसरण में ले आया। समवसरण में तीर्थंकर का मानस्तम्भ देखने मात्र से उनमें अतिशय विनय का भाव जागृत हुआ और उन्होंने तीर्थंकर महावीर का शिष्यत्व अंगीकार कर लिया। इस बारे में निम्नानुसार उल्लेख मिलते हैं—

> **"मानस्तम्भ-विलोकनादवनतीभूतं शिरो बिभ्रता,**
> **पृष्टस्तेन सुमेधसा स भगवानुद्दिश्य जीवस्तितिम्।**
> **तत्संशीतिमपाकरोज्जिनपति: संभूत दिव्यध्वनि,**
> **दीक्षां पञ्चशतैर्द्विजातितनयै: शिष्यै: समसोऽग्रहीत।।"**

—*(महाकवि असग, वर्धमान-चरितम्, 18/51)*

मानस्तम्भ के देखने से नम्रीभूत शिर को धारण करनेवाले उस बुद्धिमान् इन्द्रभूति ने **जीव के सद्भाव** को कक्ष कर भगवन महावीर से पूछा और उत्पन्न हुई **'दिव्यध्वनि'** से सहित भगवान् महावीर ने उसके संशय को दूर कर दिया। उसी समय पाँच सौ ब्राह्मण-पुत्रों के साथ उस इन्द्रभूति ने श्रमण-दीक्षा से अपने को विभूषित किया।

श्री वर्द्धमानस्वामिनं, प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी 'जयति भगवन्' इत्यादि स्तुतिमाह—

"ततश्च जयति भगवान् इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा केशलोचनानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसमृर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोति गणधरदेवा: संजाता:। गौतमस्वामी भव्योपकारार्थं द्वादशांग श्रुतरचना कृतवान्।" —*(वृहद् द्रव्यसंग्रह, संस्कृत टीका)*

अर्थ :— गौतम गणधर ने भगवान् महावीर तीर्थंकर के प्रत्यक्ष दर्शन कर 'जयति भगवान्' इन शब्दों से प्रारंभ करते हुये स्तुति की तदनन्तर गौतम, अग्निभूति और वायुभूति इन तीनों विद्वानों ने तीर्थंकर महावीर भगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण की और केशलौंच करने के अनन्तर ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान चारों ज्ञान उनको प्रकट हो गये तथा सातों प्रकार की ऋद्धियां प्रगट हो गईं। इसप्रकार वे तीनों ही मुनि उस समय भगवान् महावीर के गणधर हुये। उनमें से गौतम स्वामी ने भव्य जीवों का उपकार करने के लिये द्वादशांग श्रुतज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की रचना की।

'व्याख्या-प्रज्ञप्ति-अंग' में प्राप्त उल्लेख के अनुसार शिष्यत्व अंगीकार करके एवं 'गणधर' पद पर प्रतिष्ठित होकर इन्द्रभूति गौतम ने तीर्थंकर महावीर से साठ हजार प्रश्नों के द्वारा तत्त्वज्ञान अर्जित किया—

"च समुच्चये (5) अष्टाविंशतिसहस्रलक्षद्वयपदपरिमाणा जीव: किमस्ति।
नास्तीत्यादिगण धरषष्टि सहस्रप्रश्नव्याख्याविश्री व्याख्याप्रज्ञप्ति: २२८०००१।।"

—(श्रुतभक्ति:, क्रियाकलाप 173)

अर्थ :— जीव है अथवा नहीं है ? —इसप्रकार गौतम गणधर देव ने **साठ** हजार प्रश्न भगवान् अरहंत देव महावीर से पूछे। उन सब प्रश्नों का तथा उनके उत्तरों का वर्णन व्याख्या-प्रज्ञप्त्यंग में है। इसकी पद संख्या **दो लाख अट्ठाईस हजार** जघन्य है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है कि श्रुत का ग्रहण एवं प्रकटीकरण गौतम गणधर के द्वारा हुआ है—

"वीरमुहकमलणिग्गय-सयल-सुदग्गहण-पवयण-सतत्थं।
णमिदूण गोदमं तह, सिद्धंतालयमणुवोंच्छं।।"

—(गोम्मटसार जीवकाण्ड 728)

तीर्थंकर महावीर के मुखकमल से निर्गत समस्त श्रुतसिद्धान्त के ग्रहण करने और प्रकट करने समर्थ गौतम गणधर को नमस्कार करके मैं इस सिद्धान्तालय (सिद्धांतग्रंथ) को कहूँगा।

तीर्थंकर महावीर के तीर्थ में दस 'अन्त:कृत केवली' हुए, जिनका उल्लेख आगमग्रंथों में निम्नानुसार मिलता है—

उक्तं च तत्त्वार्थभाष्ये—

"संसारस्यान्त: कृतो यैस्तेऽन्कृत: नमि-मतङ्ग-सोमिल-रामपुत्र-सुदर्शन-यमलीक-वलीक-निष्कंविल पालम्बाष्टपुत्रा इति एते दस वर्द्धमान-तीर्थंकर-तीर्थे।।"

—(छक्खंडागम 1, 1, 2, पृ० 104)

तीस वर्षों तक आचार में 'अहिंसा', विचार में 'अनेकान्त', वाणी में 'स्याद्वाद' एवं जीवन में 'अपरिग्रह' —इस सिद्धान्त-चतुष्टयी का सम्पूर्ण देश में प्रतिपादन करने के बाद बिहार प्रान्त की ऐतिहासिक 'पावानगरी' के बहुत से सरोवरों मध्यवर्ती 'महापद्म-सरोवर' के निकट स्थित 'महामणिशिलातल' नामक उच्चभाग पर योगनिरोध कर कार्तिक मास की अमावस्या तिथि को प्रत्यूष-काल में उन्होंने देह का संबंध भी छोड़कर चैतन्यमात्ररूप में अवस्थित होकर निर्वाणलाभ किया। इस अवसर पर भी देवों ने उनका 'मोक्षकल्याणक' गरिमापूर्वक मनाया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समसामयिकता

भगवान् महावीर के सिद्धान्त और उनका जीवनदर्शन उनके काल से लेकर आजतक निरन्तर प्रासंगिक बना रहा है। भगवान् महावीर के निर्वाण के मात्र चौरासी वर्ष हुये थे कि उनका संवत् एक शिलालेखीय प्रमाण में प्राप्त होता है। यह शिलालेख संप्रति अजमेर के राजकीय संग्रहालय में विद्यमान है।

भारतीय जीवन एवं संस्कृति पर भगवान् महावीर के अहिंसा, अनेकान्त आदि सिद्धांतों का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। जैन-परम्परा के अनुसार तीर्थंकर के समान पुण्यशाली जीव अन्य कोई नहीं होता, और उनके इस उत्कृष्ट पुण्य का ही प्रभाव होता है कि तीनों लोकों में धर्म की ऐसी उत्कृष्ट प्रभावना संभव होती है। यह भी माना गया है कि एक तीर्थंकर का पुण्य-प्रसार अगले तीर्थंकर के प्रादुर्भाव (तीर्थोत्पत्ति) होने तक निरन्तर माना जाता है। तदनुसार जब इस भरतक्षेत्र में आगामी तीर्थंकर उत्पन्न होंगे, और उन्हें कैवल्य-प्राप्ति के बाद तीर्थ की उत्पत्ति होगी, तब तक भगवान् महावीर का तीर्थ ही प्रवर्तमान रहेगा और भगवान् महावीर जिनशासन के नायक बने रहेंगे।

ऐसे उत्कृष्ट पुण्य की जैन-परम्परा में अपार महिमा मानी गयी है, युगप्रधान आचार्य कुन्दकुन्द तो यहाँ तक लिखते हैं कि—

"पुण्णफला अरिहंता"

इसके साथ ही यह पद्य भी मननीय है—

"जदि चित्तं ण हि वित्तं, चित्तं वित्तं च ण हि पुत्तं।
चित्तं वित्तं पुत्तं पुण्णेण विणा ण हि लभंते।।"

अर्थ :— यदि भाव हैं और धन के साधन नहीं हैं, यदि भाव और धन दोनों हैं फिर भी पुत्र नहीं है (तो इनकी निरर्थकता का अनुभव होता है।) भाव, धन और पुत्र इन तीनों की ही प्राप्ति पुण्य के बिना नहीं होती है।

नीतिकारों ने इसीलिये लिखा है कि—**"पुण्येन बिना न हि भवन्ति समीहितार्थाः।"**

आज के महावीर के अनुयायियों को इस तथ्य को समझना पड़ेगा और मात्र आयोजनों से संतुष्ट न होकर आचरण में 'अहिंसा', विचार में 'अनेकान्त', वाणी में 'स्याद्वाद' तथा जीवन में 'अपरिग्रह' के पुण्यशाली सिद्धांतों को अपनाकर अपने जीवन को पवित्र बनाना होगा, तभी भगवान् महावीर का जीवन और दर्शन हमारे जीवन की निधि बन सकेगा। पुण्य शब्द का वास्तविक अर्थ पवित्रता है, और मन-वचन-काय की पवित्रता को अपनाये बिना मात्र जय-जयकार लगाकर और भीड़भरे आयोजन कर हम भगवान् महावीर की 2600वीं जन्म-जयन्ती के वर्षव्यापी कार्यक्रमों की सफलता नहीं मान सकते हैं। इसकी सफलता का आधार हमारे मन-वचन-कर्म की पवित्रता होगी, न की आयोजन-प्रियता।

❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव

—आचार्य विद्यानन्द मुनि

तीर्थंकर भगवान् महावीर का तीर्थ अर्थात् प्राणीमात्र के लिये हितकारी मंगल उपदेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और लोककल्याणकारी था, यह तो निर्विवाद ध्रुवसत्य है ही; साथ ही वर्तमान परिस्थितियों में उसका सक्षम रीति से प्रतिपादन किया जाना भी अत्यन्त उपयोगी है। वैचारिक संकीर्णता के उत्तरोत्तर होते हुये प्रसार के इस वातावरण में प्राणीमात्र के हित के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण का हित भी जिसके प्रतिपादन में समाहित रहा हो, ऐसा महामनीषी विचारक वर्तमानकाल में अत्यंत दुर्लभ है। भगवान् महावीर इन्हीं कारणों से आज अत्यंत प्रासंगिक हैं और उनका उपदेश भी आज कहीं अधिक उपयोगी है। इस तथ्य को रेखांकित करता हुआ महामनीषी आचार्यप्रवर विद्यानन्द जी मुनिराज का यह आलेख नि:संदेह न केवल जिज्ञासुओं के लिये व्यापक उपयोगी होगा, अपितु इस विशेषांक की अनुपम श्रीवृद्धि भी करेगा। **—सम्पादक**

वीतराग संस्कृति का जन्मदाता जैनधर्म

जैनधर्म अर्थात् जिनों का धर्म। जिन्होंने वीतराग-संस्कृति को जन्म दिया, परमश्रुत की प्रभावना से विश्व के पर:कोटि पतितों का उद्धार कर उन्हें भव्यत्व प्रदान किया, सम्यग्दृष्टि दी और भव-सन्तरण का मार्गोपदेश किया; वे 'जिन' हैं। श्रमण-मुनियों की कठिन-कठोर चर्या ने सम्यक्त्व-संवलित चरित्रों को चरितार्थ किया। वह धर्म, जिसने हिंसा को परास्त कर 'अहिंसा परम धर्म' की स्थापना की। माँस, मद्य से पंकिल पृथ्वी को अहिंसामृत-सिंचन से पवित्र किया और दया के धर्म-दुर्ग की रचना की। न केवल मनुष्य-पर्याय उससे उपकृत हुई, अपितु तिर्यंचों के भी भाग्य फले और जिनकी शुभोदय-बेला आई, वे यावज्जीवन पातकी रहकर भी मृत्यु-समय में महामंत्र 'णमोकार' सुन सके और उन्हें उत्तम-योनि और श्रेष्ठ-लोकों की प्राप्ति हुई। जीवन्धर ने जन्मपातकी कुत्ते की मरणबेला में 'पञ्च-परमेष्ठी-मंत्र' सुनाया, जिससे उसे सद्गति मिली। काष्ठानल में दग्ध होते नाग-मिथुन अन्तिम समय में पवित्र 'णमोकार मंत्र' सुनने से वे भवान्तर में धरणेन्द्र-पद्मावती बने।

तीर्थंकरों द्वारा निरूपित सर्वोदय तीर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा सर्वहितकारी, सबके लिए उदय का मार्ग प्रशस्त करनेवाला, तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित यह धर्म 'सर्वोदय तीर्थ' के रूप में मानव-जाति के सौभाग्य से तपस्वियों की दीर्घ तप:साधना के पश्चात् पृथ्वी-पुत्रों को प्राप्त हुआ था। चौरासी लाख जीव-योनियों को इसने अभय दिया। वैर, विद्वेष, काम-वासना, कषाय-परिणति के चक्रवात में चकराते हुए मानव को इसने परित्राण और आत्म-कल्याण के स्वर दिये तथा श्रेयोमार्ग पर लगाया। इसकी सर्वोदयता ने, विश्व-प्राणीमैत्रीत्व ने जीवदया के मार्ग पर अतीतकाल से अद्यावधि जितना हितसाधन किया है, वह इतिहास की साक्षी में अनुपम है। इसीलिए स्तुतिकर्त्ताओं के कण्ठ भावगलित-स्वरों में पुकार-पुकार कर कहते हैं—

"सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।।"

—यह उक्ति आचार्य समन्तभद्र की है, जो महान् तार्किक प्राचीन विद्वान् हैं। सर्वोदय वास्तव में तभी आ सकता है, जब राग-द्वेषों का क्षय होकर समत्व का उदय हो। समत्व का उदय ज्ञान के सम्यक्त्व पर आश्रित है। एक धनिक व्यक्ति किसी धनरहित से और एक ज्ञानसम्पन्न किसी अज्ञानी से घृणा, द्वेष अथवा राग-विराग करता है, वह इसलिए कि बाह्य पौद्गलिक तारतम्य (न्यूनाधिकता) से वह अपने को श्रेष्ठ तथा दूसरे को तुच्छ परिकल्पित करता है। किन्तु वास्तव में स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। यदि दैव से, पुरुषार्थ से अथवा शुभकर्म के उदय से सम्पत्ति और ज्ञान उन अभावग्रस्तों के पास आ जायें और पूर्वकाल की लघुता महत्ता में परिवर्तित हो जाये; तो उनके प्रति घृणा, उपेक्षा के पूर्वभाव भी बदल जायेंगे और सम्मानितों में नवीन नामावली लिखी जायेगी। इससे सिद्ध हुआ है कि संसार में सम्पन्नता और विपन्नता कालापेक्षी हैं। कुयें में रँहट के रिक्त शराव (पात्र) भरते रहते हैं और भरित रिक्त होते रहते हैं। जो वस्तुत: में इस तथ्य को हृदयंगम कर लेता है, वह समता को तात्त्विकरूप से जान लेता है। उसी के राग-द्वेष का क्षय होता है, एवं वही सर्वोदय की भावना ला सकता है।

श्रमण-संस्कृति का समताभाव

श्रमण-संस्कृति का संन्यासी-वर्ग जीवनभर के लिए अन्तर-बाह्य ग्रन्थियों का परित्याग करता है, वह इसलिए भी उसे सम्पदाओं और विपदाओं की स्वप्न-सत्ता का ज्ञान हो जाता है। **'अरि-मित्र, महल-मसान, कञ्चन-काँच'** में वह समता धारण करता है और उस धर्म में स्थित हो जाता है, जिसका लक्षण **'इष्टे स्थाने धत्ते'** *(सर्वार्थसिद्धि, 9/2)* है और जो प्राणी को संसार-दावानल से निकालकर अक्षय आनन्द-समुद्र में निमग्न करता है। देव-देवेन्द्रपूजित भगवान् जिन सहस्रों शाखा-प्रशाखाओं से मण्डलायमान महान् धर्म-वृक्ष हैं, अधर्मतप्त वहाँ आश्रय लेते हैं। त्यागी मुनि जो धर्मप्रभावना करते हैं, मानो उस धर्मवृक्ष के नीचे अमृतोपदेश के अनंतकण विकीर्ण करते हैं, जो धर्म-क्षुधातुरों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को वहाँ जिनेन्द्र के चरणमूल में सुधास्वादन के लिए आमन्त्रित करते हैं। वीतराग और सम्यक्त्वी होते हुए भी मुनिराज प्राय: पर्यटन करते रहते हैं और उपदेश प्रदान करते हैं, वे इसी सर्वोदय के लिए। उपदेशों से उनका आत्मकल्याण होता हो, नितान्त ऐसी बात नहीं है। तथापि लोक में धर्मप्रभावना बनाये रखने एवं जिस सम्यक्त्व को उन्होंने प्राप्त किया है, उसी का निरूपण करने के लिए उनका 'यायावर-व्रत' चलता है। धर्मचर्चा के अतिरिक्त लोकसम्पर्क रखना मुनि के लिए निषिद्ध है। क्योंकि—

"जनेभ्यो वाक् तत: स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रम:।
भवन्ति तस्मात् संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत।।" —*(समाधितंत्र, 72)*

यदि लोक-सम्पर्क रखा जाएगा, तो उनसे वार्तालाप आवश्यक होगा। वार्तालाप का विषय मानसिक-स्पन्दन और चित्तविभ्रम उत्पन्न करेगा। त्यागी के लिए तो निश्चय ही यह निषिद्ध है। अत: जन-सम्पर्क वर्जित है।

धर्मप्रभावना मात्र के लिए यदृच्छा से लोकसंग्रह होता हो, वह निन्दनीय नहीं। देश, काल, भाव, क्षेत्र तथा पात्रापात्र का विचार करते हुए मुनि चतुर्विध (आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी और निर्वेदिनी) धर्मकथाओं का आगमानुमोदित व्याख्यान करते हैं।

विश्वमानव के सम्पूर्ण हितों की रक्षा

भगवान् ने सर्वोदय तीर्थ की परिकल्पना करते हुए इसे विश्व-मानवों के सम्पूर्ण हितों की रक्षा करने में सक्षम बनाया है। रागी और त्यागी—दोनों वर्गों के लिए हितावह देशनायें की हैं। राग-परिणति का सर्वथा त्याग सामान्यजन के लिए दुष्कर है, अत: सराग व्यक्ति शनै:-शनै: परिग्रह-परिमाण से तथा अहिंसादि अणुव्रतों से अपने गृहस्थधर्म का समुचित पालन करता हुआ त्याग-मार्ग की ओर प्रवृत्त होने का प्रयत्न करता रहे और त्यागी-वर्ग अपनी सम्यक्चारित्र-विशुद्ध-चर्या से गृहस्थों को विरागपथ का औचित्य-शिक्षण करते रहें। राग अपनी निरंकुशता से इतना प्रबल एवं अनियंत्रित (स्फीत) न हो उठे कि लोक में बुद्धिजीवी मानवजाति में 'मत्स्यन्याय' चल पड़े। इसलिए त्यागियों को आत्मचिन्तन करते हुए धर्मवर्तना के मूल श्रावकों की शास्त्र-प्रवचन द्वारा आत्मा और संसार के विषय में ज्ञान-चेतना को परिष्कृत करते रहना चाहिए। क्योंकि सर्वहितैषी होने पर भी धर्म को ग्रहण करते रहना मानव-स्वभाव के नितान्त अनुकूल नहीं कहा जा सकता। कभी प्रमाद, कभी कालदोष, कभी अशुभ कर्मबन्ध और कभी ज्ञानावरण प्राणियों के आस्थाशील मानस में भी शैथिल्य उत्पन्न कर देते हैं।

आचार्य अकलंकदेव ने न्यायशास्त्र को अपने समय में विपन्न पाया और अनुभव किया कि गुणद्वेषियों ने अज्ञान का (लोकव्याप्त अज्ञता का) दुर्लभ उठाकर उसे विकृत कर दिया है, असम्यक्त्व की ओर घसीट ले गये हैं। ऐसे समय में सम्यक् श्रमपूर्वक उन्होंने तथा तादृश ज्ञान-सामर्थ्य-सम्पन्न अन्य विद्वद्भटों ने उसकी वास्तविकता को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुन: प्रतिष्ठित किया।

यह ज्ञानावरण और काल-प्रभाव न्यायविनिश्चय में भी भ्रम उत्पन्न करता हो, ऐसी बात नहीं है; अपितु यह प्रत्येक क्षेत्र को, जिसमें धर्म और सम्यक्त्व मुख्य हैं, अधिक बाधित करता है। यदि काल-प्रभाव अधिक दुर्धर्ष नहीं होता, तो कलिकाल को उद्देश्य कर आचार्य धर्मग्लानि से आशंकित नहीं होते। जब उन्होंने—

"कलि-प्रावृषि मिथ्यात्व-मेघच्छन्नासु दिक्ष्विह।
खद्योतवत् सुदेष्टारो हा ! द्योतन्ते क्वचित् क्वचित्।।"

लिखा, जिसका आशय है कि कलियुग एक वर्षा ऋतु के समान है, जिसमें दिशायें मिथ्यात्व के मेघों से आच्छादित हो रही हैं, सम्यक् मार्ग सूझता नहीं और अच्छे श्रुतधर्म-प्रभावक ज्ञानी खद्योत के समान कहीं-कहीं क्षणकाल के लिए दिखायी देते हैं। अर्थात् यदि सुदेष्टाओं की वर्तमान में न्यूनता है, तो इसमें कालप्रभाव कारण है।

दिगम्बरत्व : महान् साधना

आचार्य सोमदेव सूरि ने भी विस्मय व्यक्त करते हुए कहा कि 'कलियुग में यदि दिगम्बरत्व देखने को मिलता है, तो यह महान् आश्चर्य है। क्योंकि कलियुग में लोग इन्द्रिय-संयमी नहीं हो पाते और खाते भी बहुत हैं, मानो शरीर अन्नकीट ही हो। और दिगम्बर-मुनि की चर्या सम्पूर्ण रागजयशील तथा एकभुक्तिमय है। यह बात कालधर्म को चुनौती देने के समान है।' इसी अभिप्राय को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा—

"काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादिकीटके।
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नरा:।।"

और वस्तुत: काल की प्रभविष्णुता दुर्जेय है। **'काल: कलिर्वा कलुषाशयो वा'** आचार्य समन्तभद्र ने कलिकाल को कलुषित-हृदय बताया है। इस युग में भद्रपरिणामी और इससे भी उत्कृष्ट विशेषणधारियों में भी चित्तविशुद्धि सर्वथा नहीं पायी जाती। उनकी मानसिक वृत्तियाँ भी राग-द्वेष और नाना उधेड़बुन में लगी हुई देखी जाती हैं। यह दुर्जय काल प्रभाव है। 'भद्रबाहुचरित' में ठीक ही लिखा है **"बोधो धर्मो धनं सौख्यं कलौ हीनत्वमेष्यति"** अर्थात् कलियुग में ज्ञान, धर्म, धन और सुख उत्तरोत्तर हीनता को प्राप्त हो जायेंगे। तब ज्ञान के स्थान पर ज्ञान का दर्प, धर्म के स्थान पर धर्मध्वज होने का प्रदर्शन, धन के स्थान पर अपार तृष्णा और सुख के स्थान पर अतृप्तिकर इन्द्रिय-विलास रह जायेंगे। लोगों की रुचि परिष्कृति और सत्-संस्कार से हीन होने के कारण उच्च-भूमियों से उतर जाएगी। ज्ञान, जिससे आत्महित-बोध हो, प्राय: तिरोहित हो जाएगा और सामान्यज्ञान का पाठ पढ़कर लोग महन्तबुद्धि का गर्व करने लगेंगे। धर्म-पालन करने में आत्म-रुचि, अन्तरंग प्रेरणा नहीं रहेगी; अपितु उसके प्रदर्शन से समाज में उच्चासन का मार्ग प्राप्त किया जाएगा, तथा धन का अपार संचय भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृष्णाशामक नहीं होगा।

आजकल इतनी त्वरा बढ़ गई

आज कलियुग में ये बातें यथार्थ घटित हो रही हैं। क्या धन, क्या धर्म और क्या ज्ञान सभी क्षेत्र तुच्छ एवं कपटपूर्ण वृत्ति के आखेट हो रहे हैं। वास्तविकता में किसी भी स्वीकृत मार्ग का पालन करनेवाला बड़ी कठिनता से मिल पाता है। हाथ में जपमाला लेकर विश्वयात्रा करने वाले मनोविचारों के साथ उड़नेवाले ध्यानियों की आज कमी नहीं है। त्रियोग को सँभालना उच्चकोटि के ज्ञान-ध्यान की शुभ परिणति से शक्य है और वैसी परिणति नाना-कषाय-वेष्टित, कर्म-मल-दूषित आधुनिक कलिकाल में दुष्कर है। प्राय: मानव उस कोटि तक पहुँचने का तप तथा श्रम करता ही नहीं, परन्तु फलवाञ्छा में यह कल्पतरुओं के सर्वस्व को पा लेना चाहता है। त्वरा इतनी बढ़ गई है कि बीज बोने के बाद क्षण-क्षण पर उसकी मिट्टी कुरेदकर देखता है कि अंकुर निकला नहीं। एक माली जितना धैर्य भी नहीं है और फलाकांक्षा की कोई सीमा नहीं है। बस, आर्त-रौद्र ध्यानों में ही समय का अधिकांश व्यतीत हो जाता है। धनिक होने की इच्छा में वह सट्टा, मटका आदि द्यूतवर्गीय व्यसनों में लिप्त होकर एक मुहूर्त में धनपति होने की लालसा रखता है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

विद्या और ज्ञान-प्राप्ति के क्षेत्र में जो आज हो रहा है, वह सर्वविदित है। छात्र विलासी, शौकीन, उद्दण्ड, क्रीड़ाप्रिय, दीर्घसूत्री, हठी, अविनयी, ध्वंसनीतिपरायण एवं हिंसाप्रिय हो गए हैं। ज्ञान की पिपासा, जो प्राचीनकाल में भारतीयों का प्रिय धन थी, मरुभूमि में स्वल्पतोया नदी के समान सूख गई है। धन बढ़ने पर जहाँ दान-धर्म की प्रवृत्ति बढ़ने लगती थी, वहाँ आज विलासिता और कामुकता बढ़ रही है। प्राचीन समय में (चतुर्थकाल में) ज्ञान, धन तथा धर्म जो आत्म-कल्याण के साधन थे, आज साध्य बन गये हैं। यह स्थिति अन्धकारपूर्ण है और धर्मकीर्ति के शब्दों में **'धिग् व्यापकं तम:'** इन सब क्षेत्रों को (जीवन के सभी अंगों को) छेकनेवाले (व्यापक) अन्धकार को धिक्कार है।

आशाधर कहते हैं **'धिग् दु:षमा-कालरात्रिम्'** इस दु:षमा-कालरूपी रात्रि को धिक्कार है। और भी एक सूक्ति है **'कलिकालबलं प्राप्य सलिलै: तैलबिन्दुवत् अधर्मो वर्धते'** कलिकाल के प्रभाव से पानी पर तैलबिन्दु के समान अधर्म बढ़ जाता है। इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि काल का प्रभाव अमोघ है।

जिनेन्द्र का सर्वोदय धर्म

शिशिर-ऋतु वन-प्रकृति के लिए दु:षमा-काल-रात्रिवत् है और वसन्त उन्हें फल-पुष्प-पल्लवों से सम्पन्न करने में चतुर्थकाल-तुल्य है। **'काल: पचति भूतानि, काल: संहरते प्रजा:'** काल की भट्टी में सारा जगत् पक रहा है और काल के शस्त्र से सभी का संहार हो रहा है। प्रजा में व्याप्त धर्म को काल न्यून और अधिक करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् जिनेन्द्र का धर्म 'सर्वोदय' होकर भी यदि आज संसार की जनसंख्या के अधिकांश का प्रतिनिधित्व नहीं करता, तो यह दु:षमाकाल का प्रभाव ही कहना चाहिए; अन्यथा सम्यक्रूपेण मानवोपयोगी जिन उदात्त एवं उदार तत्त्वों का समावेश श्रमणधर्म में है, वे समस्त भूमण्डल के लोक-समुदाय को सम्यग्दृष्टि देने में समर्थ हैं।

अहिंसा और जिनशासन

मानवता का निर्माण जिस अहिंसा-प्रभृति चरित्र से सुलभ है, उसका व्यवहरणीय स्वरूप अखिलरूप में जिनशासन में निबद्ध है। व्यवहारनय और निश्चयनय द्वारा अहिंसादि का पालन तथा आत्मस्वरूप-परिज्ञान-निरूपण जैनधर्म का वह विशिष्ट अमृतमार्ग है, जिसे विश्व का पूर्वाग्रहरहित कोई भी व्यक्ति मानेगा और उसकी अकाट्यता पर अपनी सहमति प्रदर्शित करेगा। बारह अनुप्रेक्षाओं ने मर्त्यजीवन की असारता का इतना स्पष्ट विवेचन किया है कि रागान्धों के लोचनों का कज्जल भी धुलकर साफ हो जाएगा। पञ्च महाव्रत, जिन्हें त्यागी-मुनि धारण करते हैं, संसार से वैर-कलह और अशान्ति मिटाने के अचूक उपाय हैं। हिंसा, अशान्ति और परराष्ट्र-सीमातिक्रमण क्यों होते हैं? क्योंकि मानव का हृदय सच्चे धर्म की प्रतिष्ठा से रहित है। मैत्री, सह-अस्तित्व, समता तथा उदारवृत्तियों का कितना मूल्य है? यह जानकारी उसे नहीं है। धर्मरहित होने से पशुवाहक (जानवरों द्वारा जीवकार्जन करनेवाला) पशुओं पर नाना अत्याचार करता है, अधिक भार लादता है, नृशंसतापूर्वक शारीरिक यन्त्रणा देता है और यथावत् आहार-पानी नहीं देता। यही स्थिति मनुष्य-समाज में अधार्मिकता से बढ़ जाती है। अधिक श्रम और अल्प-वेतन, शोषण तथा उत्पीड़न ही तो हैं। एक कम तौलनेवाला, झूठ बोलनेवाला, मिलावट करनेवाला, ठगी, चोरी और भ्रष्टाचार का अपराधी नहीं तो क्या है? समाज में अपने-अपने क्षेत्र में हानिकर्त्ता और हानिभोक्ता दो दल हैं। हानिकर्त्ता व्यक्ति पर-उत्पीड़क है और हिंसा का भागी है। इस गम्भीर आत्मपतित, अनैतिक स्थिति का अन्त धर्म के बिना अशक्य है। मानव- जीवन के उदात्त-तत्त्वों का संकलन धर्म में समाविष्ट किया गया है। सम्यग्धर्म उत्तम जीवन की कला है। बिना वैर-विद्वेष के संसार-यात्रा कैसे की जा सकती है? —यह धर्म सिखाता है। पञ्च अणुव्रतों का पालन ही यदि मनुष्य करने लगे, तो देवता स्वर्ग को छोड़कर पृथ्वी पर उतरने लगें। कथनी और करनी का भेद मिटाकर मन, वचन, काय की एकवाक्यता सिद्ध करने पर कल्पवृक्षों का युग आ सकता है।

पाँच अणुव्रतों का पालन करें

संसार में व्याप्त इस मानसिक भ्रष्टाचार को, जो कथनी तथा करनी में भेद उत्पन्न करता है, सम्यग्दृष्टि वीतराग अच्छी प्रकार जानते थे। उन्हें मानव की इस प्रवृत्ति का तप:सिद्धि से ज्ञान हो गया था। इसीलिए समीचीन सर्वोदय धर्म की देशना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए उन्होंने धर्म की दस-सूत्री-योजना को प्रस्तुत किया। पञ्च-अणुव्रतों का पालन लोक के लिए आवश्यक बताया। मूलगुणों को चारित्रमार्ग से चरितार्थ कर लोक-प्रबोध दे सकें तथा आत्मकल्याण-साधन कर सकें, इसके लिए त्याग का सर्वोत्कृष्ट मुनिमार्ग स्वीकार किया। ये ही ऐसे सक्षम साधन हैं, जिनके द्वारा पृथ्वी पर स्वर्ग की रचना हो सकती है। मनुष्य मनुष्यता के आनंद को प्राप्त कर सकता है। दशलक्षण मानो निर्विरोध प्रगतिशील जीवन की खुली हुई दशों दिशायें हैं। मनुष्य के दैनिक तथा आयुपर्यन्तगामी व्यवहारों का मणिकोष हैं। मानव-संसार में नित्य जिनका उपयोग होता है और सफलता की सिद्धि प्राप्त की जाती है, ऐसे अनुभूत प्रयोग, सर्वथा अहिंसक, निर्वैर और स्वपर-कल्याणकारी, जो घर को आनन्द-मन्दिर और संसार को निरापद भूमि बना सकते हैं। जिनके पालन से अन्तर्बाह्य शान्ति मिलती है और अणु-आयुधों की निर्माण-भट्टियाँ बुझ जाती हैं, प्रक्षेपास्त्र शून्य में खो जाते हैं, ताल ठोंककर रण-आमन्त्रण करनेवाले सिंहनाद मैत्री-स्वरों में परिवर्तित होते हैं और आत्मा के तलस्पर्शी रत्नों की उपलब्धि सहज हो जाती है।

सामाजिकता के लिए शुचिता धर्म

जो मनुष्य इन धर्म-लक्षणों को किसी त्यागी-विशेष के लिए, किसी भव्यात्मा के लिए अथवा जातिगत आचरण के लिए सीमित मानते हैं, वे निश्चय ही 'समीचीन' शब्द का अर्थ नहीं जानते, 'सर्वोदय तीर्थ' की परिभाषा से अनभिज्ञ हैं। 'क्षमा' क्या जैनों का धर्म ही है? 'मार्दव' और 'आर्जव' को सम्प्रदाय-विशेष के लिए उपकारक मानते हो? 'सत्य' क्या प्रत्येक व्यक्ति के लिए पालनीय नहीं? 'शौच' के बिना सामाजिकता और आत्मशुद्धि टिक सकेगी? दीर्घजीवन के लिए 'संयम' कितना आवश्यक है? कार्यों की सिद्धि 'तप' बिना हुई है? महान् उपलब्धियों को 'त्यागी' ही पा सकता है, राग करने से तो अपनी छाया भी आगे-आगे भागती है। अभिमान और दर्प के विन्ध्याचलों को ओढ़कर कितनी दूर चलोगे? चलने के लिए तथा ऊपर पहुँचने के लिए लघुभारवान् होने की परम आवश्यकता है। 'अकिंचनत्व' ही वह स्थिति है, जिससे मनुष्य ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, संहनन —इन आठों मदों से रहित हो सकता है। मद पाप है और पाप का निरोध सम्पत्तियों की प्राप्ति है। 'ब्रह्मचर्य-व्रत' तो अपार महिमाशील है। जैसे अब अंगों की क्रिया के लिए मनुष्य के लिए कन्धे से ऊपर का भाग आवश्यक है, उसीप्रकार धर्म के पालनार्थ ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। मति, मेधा, बल, ओज, स्मृति, धृति, ज्ञान, विज्ञान सामर्थ्य, नव-नवस्फुरण कारिणी प्रतिभा ब्रह्मचर्य के सुगम (सुलभ) परिणाम हैं। जो धीर मनुष्य अपने श्वेत-शोणित अर्थात् शुक्र को अपने शरीर में ही पचा लेता है, वही अदृष्टवीर्य सच्चा वीर्यवान् है। सत्त्व और तेज उसके नेत्रों में दीप्ति बनकर दमकते रहते हैं। इन दश लक्षणों को ही 'धर्म' कहते हैं। यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन के मित्र सहकारी और सहायक इन सुहृदों से वञ्चित रहकर चलना पसन्द करे, तो उसे महा-अरण्य में पथ भूला हुआ अन्धा, वधिर और पंगु कहना चाहिए।

आज हम क्या बनने जा रहे हैं?

आज लोग धर्म का लोप करने को कटि बाँधे खड़े हैं। उन्हें धर्म शब्द से चिढ़ है, मानो अपने सच्चे साथियों से वैर है। क्षमा, मृदुता, ऋजुता और अकिंचनता को वे आत्महीनता समझते हैं, सत्य-भाषण को मूर्खता कहते हैं। शौच को अण्डे-माँस में भूनकर पचा रहे हैं, संयम को नपुंसकत्व मानते हैं, तप उनके लिये पाषंड (ढोंग) है और त्याग को परिग्रहों के विपुल भार के नीचे शव-समाधि दे दी गई है, अकिञ्जन होना व्यक्तित्व को कुण्ठित करना है। उन्हें तो किञ्चन (कुछ) होने की धुन सवार है और इसका मूल्य चुकाने में वे अपना शील, धर्म, सभी दाँव पर लगा रहे हैं। ब्रह्मचर्य एक बकवास है, जिसे वे अस्वाभाविक एवं हानिकारक मानते हैं। प्राचीनकाल से आज तक जिन्होंने ब्रह्मचर्य धारण किया, वे या तो पुंस्त्वहीन थे या नितान्त मूर्ख, जिन्होंने देहेन्द्रियों को स्वाद से भर देने वाले अब्रह्म की उपासना नहीं की।

यही चिन्तन-दिशा पञ्च-अणुव्रत-पालन के विषय में है। जैसे अरबी-लिपि उल्टे हाथ से (वामगतिक) अक्षर बनाती है, वैसे ही उन अधार्मिकों का विचार, चिन्तन और वर्तन वाममार्गी है। वे प्रत्येक पुराण को जीर्ण और अनुपयोगी कहते हैं। उनकी इन विकृत परिभाषाओं का परिणाम स्पष्ट है। संसार घोर दु:खसन्तप्त है। अशान्ति शूल बनकर चुभने लगी है। रोग दूर करने को एक 'इंजेक्शन' लगवाता है और दूसरा रोग उत्पन्न कर लेता है। —यह है आज की वास्तविक स्थिति, जिसमें आदमी घुट-घुट कर जीता है और प्रत्येक श्वास में मरण-वेदना का अनुभव करता है। इसीलिए तो शास्त्रकारों ने कहा— **"बावत्तरी-कला-कुसला पंडिय-पुरिसा अपंडिया चेव।**
सव्व-कलाण वि पवरं जे धम्मकलं ण जाणंति।।"

अर्थात् यदि कोई बहत्तर कलाओं में कुशल है; किन्तु धर्म-कला में अकुशल है, तो वह चाहे पंडित हो या अपंडित हो, निष्फल है; क्योंकि कला तो उज्ज्वलता, कुशलता और रोचिष्णुता तथा आह्लादकता का नाम है। धर्मरहित कलायें तो नट-विद्या हैं। **'ज्यों रहीम नट-कुण्डली सिमटि कर कूदि जात'** शिक्षा-प्राप्त नट कुण्डली (एक छोटे घेरे) में से सिमिटकर, कूदकर निकल जाता है, वैसे ही बाह्य सांसारिक चपलताओं का दर्शन ही धर्मरहित करता है। आत्मा का दृश्य उसके कृतित्वों में नहीं झलकता। इसी को 'मिथ्यादृष्टि' कहा गया है। मनुष्य की सत्य-दृष्टि उसके आत्मपरिज्ञान में है और इससे व्यतिरिक्त सभी दृष्टियाँ मिथ्या हैं। दशलक्षण धर्म और पञ्चअणु (अथवा महाव्रत) जीवन के अन्तरबाह्य, भौतिक आत्मिक पक्षों को सँवारते हैं, उनमें वास्तविक कला-कुशलता की उद्भावना करते हैं। परन्तु बाजार की दौने में धरी हुई मिठाई खाकर जिसका स्वाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिगड़ गया है, वह अपने घर में शुद्धिपूर्वक बनायी हुई चौके की मिठाई पसन्द नहीं करता। वैसे ही धर्म-रहस्यों से अनभिज्ञ व्यक्ति अधार्मिकता को लुब्धक की निगाह से रच-रचकर स्वीकार करता है। मानो, छिलका और गुठली खाता है, रस को थूकता है। आश्चर्य होता है इस तम:परम्परा पर और इन असम्यक्-संविदाओं पर धिक्कार भेजने को जी चाहता है।

बहुत वर्षों पूर्व भारत के राष्ट्रकवि **मैथिलीशरण गुप्त** ने कहा था—

"हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी?
आओ, विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।।"

वास्तव में स्थिति इतनी विषम हो चुकी है कि जिन आर्यवंशजों (भारतीयों) को देखकर देवत्व की कल्पना साकार हो उठती थी, आज उनके शरीर से, बुद्धि से, मन से मानवता के स्वाभाविक स्तर का भान भी नहीं होता। एक अतिरंजित भौतिक लालसाओं के लिए दुर्दमनीय वासना रखने वाले यांत्रिक संस्करण से प्रतीयमान मनुष्य नामधारी जीवों से भववीथियाँ संकुल हो रही हैं। सब एक-दूसरे को धकेलकर, कुचलकर आगे बढ़ जाने को आतुर हैं। किसी की किसी के साथ संवेदना नहीं, मानवत्व नहीं। मशीनों के युग में श्वास लेनेवाला मानव स्वयं मशीन हो गया है, और इस मशीन को ही सर्वस्व मान बैठा है।

धर्मप्राणता हमारी संस्कृति का मूल-मंत्र

प्राचीन भारत के धर्मप्राण-जीवन से तुलना करने पर तत्कालीन जीवन से आज आकाश-पाताल जितनी दूरी दिखायी देती है। जन-जीवन शून्य होता जा रहा है। जिससे अपवित्रता का परिहार और पवित्रता का आधान किया जाता है, जो दयारूप जल से सिक्त है, इच्छितों का प्रसविता है, उस धर्म-कल्पवृक्ष की स्थापना अपने-अपने हृदयों में करना लोग भूलते जा रहे हैं। यदि प्रत्येक मानव के मानस-नेत्रों के समक्ष धार्मिकता का 'स्मरण-पत्र' नहीं रखा गया, तो संसार निकट भविष्य में रहने योग्य नहीं रह जाएगा। आने वाली सन्तानें अपने पूर्वजों पर गर्व कर सकें और धर्म को समादर की दृष्टि से देख पायें, इसके लिए तप करने का समय वर्तमान है। मोह, अविद्या-अन्धकार में भटकते हुए जनों को 'सर्वोदय-तीर्थ' का अनुजीवी ही अपने समत्व से उपकृत कर सकता है। यह कथंचित् सत्य है कि कालदोष से मानवों की धार्मिकता में ह्रास आया है, सम्यक्त्व की ओर प्रवृत्ति न्यून हुई है, मानव अपने सर्वाभ्युदय-साधक मित्र से वञ्चित हो गया है; तथापि मोक्ष-प्राप्ति के लिए परम-पुरुषार्थ का निरूपण करनेवाला, सम्यक्चारित्र को प्रमुखता देने वाला सर्वोदयी धर्म अपने तप और पुरुषार्थ को न छोड़ते हुए धार्मिक पराक्रम तो कर सकता है। दैवाधीन अथवा कालाधीन होकर अपने आत्मबल को अकिंचन नहीं करना चाहिए। सदैव उदग्र पुरुषार्थ और आत्मप्रदेशों में निरवद्य विचरने के संकल्पों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रतिहत रखना हितावह है। आगम, स्वाध्याय और चारित्रमार्गी मुनि-महेश्वरों से प्रेरणा लेकर श्रेयोमार्ग पर आगे बढ़ते रहने की अदम्य इच्छा कदाचित् कालप्रभाव को भी मृदु होने के लिए बाध्य कर देती है। मात्र काल को दोषभागी बनाकर बच निकलने का ब्याज करना भी पुरुषार्थ-पराङ्मुखता है। 'ज्ञानार्णव' में आचार्य शुभचन्द्र का वचन है कि—

"तवारोढुं प्रवृत्तस्य मुक्तेर्भवनमुन्नतम्।
सोपानराजिकाऽमीषां पादच्छाया भविष्यति।। 5/18।।

मुनि-परमेष्ठियों की चरणकान्ति का अनुसरण करते हुए भव्य मुक्ति-मन्दिर तक जा सकेंगे —इसमें क्या सन्देह है? विशुद्ध बोध-पीयूष का पान करनेवाले करुणासिन्धु महाव्रती जहाँ पदविन्यास करते हैं, वहाँ धन्य-क्षणों का आविर्भाव ज्ञान से लोक को सम्पन्न करना, सर्वोदय तीर्थ का विस्तार करना है। लोक अज्ञान से, असंस्कार से किसी पक्ष-विशेष के प्रति दुराग्रह रखने से, हठवाद से यथार्थ ज्ञान को स्वीकार करना नहीं चाहता। उसे युक्ति, आगम, तर्क तथा सौहार्दभाव से मिथ्यात्व से हटाकर सम्यक्त्व में प्रतिष्ठित कराना धार्मिकों का कर्तव्य है। **'सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव'** कहने वाले के हृदय में यह दृढ़ता विद्यमान है कि वह श्रमण-धर्म को सार्वजनीन, विश्वहितावह मानता है। इस 'सर्वोदय' के दावे को सिद्ध करने के लिए निम्न तथ्य प्रस्तुत हैं :—

आठ मदों को दूर करें

श्रमण-संस्कृति ने आठ मदों में जाति, कुल, बल, ऋद्धि आदि को लेते हुए परम्परा-प्राप्त श्रेष्ठत्व को निरस्त किया है और साथ ही वस्तु-स्वरूप के यथार्थ ज्ञान को महत्त्व देते हुए सम्यग्ज्ञाता और सम्यग्द्रष्टा को धर्मज्ञान का अधिकारी माना है। आत्मा से व्यतिरिक्त सभी पदार्थ परवस्तु हैं और परवस्तु में आसक्ति मोह है। संसार में आसक्ति ही युद्ध, वैर, कलह, विषय-मूढ़ता इत्यादि को जन्म देती है और मानव का पतन कराती है। आसक्ति से मनुष्य अकार्य में प्रवृत्त होता है, परवस्तु के मोह में आत्मविस्मृत हो जाता है। तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि से प्रसूत आगम इन दुरन्त मोहच्छेद के लिए तीक्ष्ण कुठार हैं। 'व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से ऊँचा उठता है; अन्य द्वारा विहित कर्म अन्य के लिए सहायक नहीं होता, अतः स्वयंप्रवृत्ति ही पुरुषार्थ-सिद्धिप्रद है।' इस ज्ञान से व्यक्ति कर्तृत्व और भोक्तृत्व में भ्रान्तिमान् नहीं रहता, तथा शुभाशुभ-कर्मबन्धजन्य परिणामों के अवश्य भोक्तृत्व को जान लेता है। जानने के उपरान्त वह शुभकर्ममात्र का बन्ध रख सकता है। अथवा सर्वकर्मारम्भ-संन्यासव्रत लेकर कर्म-परिणमन का सर्वथा क्षय करने की ओर प्रवृत्त हो सकता है। आत्मा ही परमात्मा है और वह बन्धन से मुक्त होने पर संसार-परिभ्रमण से मुक्त होकर अपने स्वरूप में ही समाहित हो जाती है। इस तत्त्वज्ञान से मानव परमात्म-स्थिति प्राप्त करने के लिए उत्साहित होता है, उसे आत्मा के सर्वोच्च स्वरूप का, स्व से स्व के लिए ज्ञान हो जाता है। दशलक्षण तथा पाँच अणुव्रत मानवमात्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की हितसाधना के अमोघ-मन्त्र हैं। संवर, निर्जरा ऐसे प्रकरण हैं, जो संचित कर्ममलों को निकाल बाहर फेंकते हैं, नये कर्मों का आगमन रोकते हैं और इसप्रकार मनुष्य को आत्मिक योगमार्ग का निर्देश करते हैं, जिस पर चलकर वह आत्मसिद्धि प्राप्त कर लेता है। **'संसार असार है'** इसी विषय को **'द्वादश अनुप्रेक्षा'** से समझाते हुए अनेक दृष्टियों से निर्भ्रान्त सिद्ध कर दिया है कि आपात-रमणीय-प्रतीयमान दैहिक-भोग क्षय होने वाले हैं और इनके हितसाधन में आत्महित विस्मरण करना अपने ही सर्वनाश को आमन्त्रण देना है। जहाँ अनेक धर्म कोरे ज्ञान को ही महत्त्व देते हैं तथा उसी से मुक्ति-प्राप्ति का निरूपण करते हैं; वहाँ श्रमण-संस्कृति में सम्यग्ज्ञानानुपूर्वी सम्यक्चारित्र को उपयोगिता का अन्तिम चरण मानते हैं। यह स्थापना इतनी क्रान्तिकर है कि प्रतिवाद के अशेष अस्त्र कुण्ठित हो जाते हैं। श्रद्धा के बिना कोरे ज्ञान को **'ज्ञानं पंगु क्रिया चान्धा'** कहकर उपेक्षणीय, असमर्थ, अनुपयोगी बताया है। कषायों को नि:शेष करना, विषयों को निर्मूल करना श्रेय:साधना के लिए अपरिहार्य है; क्योंकि इनसे आर्त-रौद्र ध्यान बने रहते हैं, तथा नि:संगत्व की प्राप्ति नहीं होती। सर्व सावद्यविरत होने वाले को अन्तर्बाह्य परिग्रह मात्र हेय है और दिगम्बरत्व ही वह उपाय है, जिसमें कर्मक्षय करने की सातिशय क्षमता है। सर्वोदय धर्म इसी उच्च भूमिका का समादर करता है। मानव ज्ञानवान् होकर सर्वसंन्यास का व्रत ग्रहण करे तथा आवागमन से सदा के लिये छूट जाए, दिगम्बरत्व का यही अभिप्राय है। मोक्ष-सिद्धि के लिए स्वीकार किया जाने वाला व्रत (निर्ग्रन्थ मुनिचर्या) यदि अष्टविंश मूलगुणों से रहित करके भी देखे, तो इतना कठिन है कि पालन करना अशक्य प्रतीत होता है। उस पर मूलगुणों-सहित का मुनिधर्म-पालन करते हैं, यह तो अत्यन्त असहनीय है। सारे तप दिगम्बरत्व में समा जाते हैं और नि:शंक यह कहा जा सकता है कि उनके लिए मोक्षमार्ग खुला है।

आत्मोपलब्धि के लिए महातपा दिगम्बर मुनि कौन-सा उत्सर्ग नहीं करते हैं? संसार के यावत् पदार्थों का नि:संगत्व क्या सामान्य बात है? जब लोग नित्य सुख-सुविधा के साधनों का आविर्भाव करने में लगे हैं, तब सब ओर से मनोवृत्तियों को हटाकर सर्वसंयम ले लेना **'अतिदुस्तर पन्था:'**। यह वेष चारित्र-सहित तीर्थंकरों ने अपनाया और आज तक उनके अनुगामी अपनाते आये हैं। यह अकिञ्चनता की पराकाष्ठा है यह। इससे अधिक आकिञ्चन्य क्या हो सकता है? जैसे बीज मिट्टी में मिल जाए, वैसे अपने अहंकार को नि:शेष विगलित करने वाले महाव्रती सर्वोदय-तीर्थ की देन ही हो सकते हैं। विश्व-समाज में भगवान् के सर्वोदय-तीर्थरूपी मंगल को प्रचारित करने के लिए श्रावक, तपस्वी और विद्वान् अपने धर्मश्रम को उपयोग कर आधि-व्याधि-ग्रस्त संसार तक परित्राण के स्वर पहुँचायें तथा समभावी हों; तभी आचार्यप्रोक्त 'तवैव' **(सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव)** पद आशीर्वादक होगा। ❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर और उनका जीवन दर्शन

—डॉ० ए०एन० उपाध्ये

'बंगलौर की जैनमिशन सोसाइटी' और 'इन्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर' के संयुक्त तत्त्वावधान में 23 अप्रैल 1956 को डॉ० ए०एन० उपाध्ये का 'महावीर जयन्ती' के शुभ अवसर पर अंग्रेजी में भाषण हुआ था, जिसे इन्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर ने जुलाई 1956 में प्रकाशित कर प्रसारित कराया था।

श्री कुन्दनलाल जैन ने इस लेख का जून 1962 में अनुवाद कर उसे तत्कालीन प्रतिष्ठित पत्रिका 'अनेकान्त', वर्ष 15 की तृतीय किरण में प्रकाशित करा दिया। आज 40 वर्ष बाद भी इस लेख की महत्ता एवं उपयोगिता तदनुरूप ही है, तथा इसकी ताजगी में कोई अन्तर नहीं आया है; अतः जिज्ञासु पाठकों की जिज्ञासा-शान्त्यर्थ पुनः 'प्राकृतविद्या' में प्रकाशनार्थ प्रस्तुत है।

भगवान् महावीर की 2600वीं जन्म-जयन्ती के पावन अवसर पर इस लेख की उपादेयता और अधिक बढ़ गई है। **—सम्पादक**

भारत के कुछ विशिष्ट पुरुषों में अध्यात्म एवं ज्ञान की पिपासा अनादिकाल से ही प्रचलित रही है। उस समय भी जब कि जनसाधारण अज्ञानता, गरीबी एवं अपने पूर्वजों की अन्धश्रद्धा तथा पूजा में ही लगा रहता था। धार्मिक नेताओं का महत्त्व अपने भक्तों के विश्वास विजय में ही निहित था। भारत में धार्मिक नेता दो प्रकार के रहे हैं—एक पण्डों व पुरोहितों के रूप में उपदेशक, तथा दूसरे परोपकारी एवं आत्मशोधी के रूप में मुनिगण। उपदेशक शास्त्रोक्त-पद्धति के महारथी होते थे। वे कहा करते थे कि "विश्व एवं देवताओं तक का अस्तित्व और उद्धार उनके द्वारा प्रवर्तित बलिदान के मार्ग से ही सम्भव है", इनके सम्प्रदाय बहुदेववादी थे। देवता लोग प्रायः प्राकृतिक शक्ति के केन्द्र थे और मानव-समाज उनकी असीम कृपा पर निर्भर था। पुरोहित लोग देवताओं को बलि चढ़ा-चढ़ा कर ही मानवों की सुरक्षा का आडम्बर रचा करते थे। यह वैदिक विचारधारा थी, जो भारत में उत्तर-पश्चिम से आई और अपने अद्भुत प्रभाव से यत्र-तत्र अनेकों अनुयायी बनाती हुई भारत के पूर्व और दक्षिण में फैल गई।

इसके विपरीत भारत के पूर्व में गंगा-यमुना के कछारों में कुछ आत्मशोधी साधु हुये,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो उच्च राजघरानों से सम्बन्धित थे तथा उच्च चिन्तन एवं धार्मिक क्रांति के इच्छुक थे। उनकी दृष्टि में प्राणीमात्र धार्मिक चिन्तन का केन्द्र है, साथ ही अचेतन-जगत् से उसके सम्बन्ध टूटने का एक साधन भी है। इससे वे साधु-लोग जीवन की इहलौकिक और पारलौकिक समस्याओं पर सोचने के लिए बाध्य हुए; क्योंकि उनके समक्ष आत्मा (चेतन) और कर्म (जड़ पदार्थ) दोनों ही यथार्थ थे। इहलौकिक अथवा पारलौकिक जीवन आत्मा और कर्म के पारस्परिक अनादि-निधन सम्बन्धों का परिणाम ही तो है और यही सांसारिक दुखों का कारण भी है; पर धर्म का मूल उद्देश्य कर्म को आत्मा से पृथक् करना है, जिससे आत्मा पूर्ण मुक्त हो शुद्ध ज्ञानात्मक चिदानन्द चैतन्य का आनन्द-अनुभव कर सके। मनुष्य अपना स्वामी स्वयं ही है। उसके मन, वचन और काय उसे अपने ही रूप में परिणमन करते हैं तथा कराते रहते हैं। इसप्रकार मनुष्य अपने भूत-भविष्य का निर्माता व विघटनकर्ता स्वयं ही है। धार्मिक पथ पर अग्रसर होने के लिए वह अपने पूर्ववर्ती आचार्यों को अपना आदर्श मानता है और जब तक आध्यात्मिक उन्नति की चरम-सीमा एवं परिपूर्णता (कृतकृत्यता) नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक मुनि-मार्ग का अवलम्बन कर कर्म-संघर्ष में रह बना रहता है।

इसप्रकार हम स्पष्टरूप से देखते हैं कि प्राच्य धार्मिक विचारधारा में ईश्वर-कर्तृत्व एवं उसके प्रचारक पुरोहितों का कोई स्थान न था। यह युग तो जैन तीर्थंकर नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, आजीवक सम्प्रदाय के गोशाल, सांख्यदर्शन के कपिलऋषि एवं बौद्धधर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध के प्रतिनिधित्व का काल था।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश में विशेषतया शिक्षित वर्ग में भारतीय प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को नवीनरूप में ढालने के प्रति विशेष जागरुकता दिखाई दे रही है। बड़े हर्ष की बात है कि इस प्रसंग में महावीर और बुद्ध को बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति से स्मरण किया जाता है और उनके महत्त्व को आंका जाने लगा है। पर आश्चर्य तो यह है कि ऐसे महापुरुषों को, जिन्होंने अपनी शिक्षाओं एवं उपदेशों द्वारा इस देश को नैतिकता एवं मानवता के क्षेत्र में इतना अधिक महान् और समृद्ध बनाया, अपनी ही भूमि में उन्हें कुछ समय के लिए भुला दिया गया। दूसरी सबसे अधिक खटकने वाली बात यह है कि **महावीर और बुद्ध का महत्त्व एवं उनके साहित्य का जो मूल्यांकन हम लोग सदियों पूर्व स्वयं अच्छी तरह कर सकते थे, वह सब अब पश्चिमी विद्वानों द्वारा हुआ और हम प्रसुप्त दशा में पड़े रहे।** जैन और बौद्ध-साहित्य के क्षेत्र में पश्चिमी विद्वानों की बहुमूल्य सेवाओं ने हमारी आँखें खोल दी हैं और आज हम इस स्थिति में हो सके हैं कि अपनी विभूतियों को पहचान सकें।

24वें तीर्थंकर भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध के समकालीन थे; उनके विचार एवं सिद्धांत-संस्कृति के अनुकूल थे। भगवान् महावीर एवं उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों ने जो भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेश दिये थे, वे सब आज 'जैनदर्शन' के नाम से विख्यात हैं; पर आज वे हमारे जीवन में सक्रियरूप से नहीं उतरे हैं, जिनका जैन-साहित्य में विभिन्न भाषाओं द्वारा विवेचन किया गया था।

भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के इतिहास में बिहार प्रान्त का बड़ा महत्त्व है। भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर, राजर्षि जनक जैसी पुण्य विभूतियों को प्रदान करने का श्रेय इसी बिहार की पुण्यभूमि को है। मीमांसा, न्याय एवं वैशेषिक जैसे श्रेष्ठ दर्शनों की बहुमूल्य भेंट देने वाली मिथिला का गौरव भी तो बिहार प्रान्त ही को प्राप्त होता है। लगभग 2500 वर्ष पूर्व वैशाली (वसाढ़, पटना से 30 मील उत्तर में) एक समृद्धशाली राजधानी थी, इसके आसपास ही कुण्डपुर या क्षत्रियकुण्ड के महाराज सिद्धार्थ और उनकी महारानी त्रिशला (प्रियकारिणी) की कोख से भगवान् महावीर जन्मे थे। अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं एवं गुणों के कारण ही ज्ञातृपुत्र, वैशालिक, वर्द्धमान और सन्मति आदि नामों से प्रसिद्ध थे। उनकी माता त्रिशला चेटक-वंश से सम्बन्धित थी, जो विदेह का सर्वशक्तिमान् लिच्छवि-शासक था, जिसके संकेत पर मल्लवंशीय एवं लिच्छवि लोग मर मिटने को तैयार रहते थे।

महावीर के विवाह के सम्बन्ध में मूल-परम्परा उन्हें बाल-ब्रह्मचारी बतलाती है। राजपुत्र होने के कारण महावीर के तत्कालीन राजवंशों से बड़े अच्छे सम्बन्ध थे। उनसे अपेक्षा की गई थी कि वे अपने पिता के राज्य का अधिकारपूर्वक उपभोग करें, पर उन्होंने वैसा नहीं किया। 30 वर्ष के होते ही उन्होंने राजकीय भोगोपभोगों का परित्याग कर डाला और आध्यात्मिक शांति की खोज के लिए मुनि-दीक्षा धारण कर ली। इसप्रकार जीवन की कठिनतम समस्याओं को सफलतापूर्वक कैसे हल करना चाहिए? —इसका एक सर्वश्रेष्ठ आदर्श उन्होंने तत्कालीन जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया।

आध्यात्मिक शांति एवं पवित्रता के मार्ग में राग एवं संग्रह की प्रवृत्तियाँ बड़ी बाधक थीं, पर उन्होंने आदर्शरूप से सहर्ष उन सबका परित्याग कर दिया, स्वयं निर्ग्रंथ बन गए और दैगम्बरी वेष धारणकर साधना और तपश्चरण में तल्लीन हो गए। इस बीच उन्हें जो-जो कष्ट भोगने पड़े, उनका विस्तृत वर्णन 'आचारांगशास्त्र' में मिलता है। 12 वर्ष की कठोरतम यातनाओं के पश्चात् महावीर अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर सके और समय तथा स्थान की दूरी को लांघते हुए शुद्ध एवं पूर्णज्ञान की उपलब्धि कर 'केवली' या 'सर्वज्ञ' कहलाये। उन दिनों श्रेणिक बिंबसार राजगृह के शासक थे, भगवान् महावीर की सर्वप्रथम देशना (दिव्य-ध्वनि) राजगृही के समीप 'विपुलाचल पर्वत' पर हुई थी। लगातार 30 वर्ष तक वे मगध देश के विभिन्न भागों में महात्मा बुद्ध की भाँति विहार करते रहे और जैनधर्म का प्रचार किया। भगवान् महावीर के माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी थे, भगवान् महावीर ने अपने विहार-काल में जीवन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कठिनाइयों एवं उनसे बचने के उपायों से लोगों को अवगत कराया। उन्होंने आत्मा की उच्चता एवं पवित्रता पर बल दिया, उनके उपदेश सर्वसाधारण के लिए थे। उनके अनुयायियों में राजा-महाराजा थे, गरीब-किसान भी थे। उन्होंने चतुर्विध संघ की स्थापना की, जो मुनि-आर्यिका, श्रावक और श्राविका नाम से प्रसिद्ध हुआ था; वह आज भी प्रचलित है। भगवान् महावीर के सिद्धान्तों का प्रभाव जैनदर्शन के अतिरिक्त भारत में अन्यत्र भी मिलता है। वे तीर्थंकर थे, उन्होंने युगों-युगों से संत्रस्त मानवता के परित्राण एवं सर्वशान्ति की स्थापना के लिए मार्ग-निर्धारण किया था। द्वितीय शताब्दी में समन्तभद्र स्वामी ने महावीर के सिद्धांतों को, जो 'महावीर तीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध थे, 'सर्वोदयं' नाम दिया, जिसका इस देश में आज महात्मा गाँधी जी के बाद सामान्यत: प्रयोग किया जाता है। ईसा से 527 वर्ष पूर्व भगवान् महावीर 72 वर्ष की आयु में 'पावापुर' से निर्वाण सिधारे, जिसकी खुशी में जगह-जगह दीप जलाये गए और तब से ही सम्पूर्ण भारतवर्ष में 'दीपावली पर्व' प्रचलित हुआ।

भगवान् महावीर के जीवन एवं कार्यों पर बड़ा विशाल नवीन और प्राचीन सभी तरह का साहित्य उपलब्ध है और उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भी अन्य पुरुषों की भाँति बहुत से पुराण, लोककथायें तथा अनेकों अतिशयोक्ति पूर्ण बातें लिखी गई हैं। फलत: उनके विषय में विशुद्ध वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन व शोध करना बड़ा कठिन हो गया है; क्योंकि अध्ययन व शोध के जो साधन हैं, वे साम्प्रदायिकता या धार्मिकता से अछूते नहीं हैं, उनमें साम्प्रदायिकता की गंध विद्यमान है। ऊपर मैंने जो कुछ कहा है, वह भगवान् महावीर का केवल साधारण-सा जीवन-परिचय ही है। इसप्रकार यदि भगवान् महावीर का और अधिक ऐतिहासिक अध्ययन करना कठिन है, तो मेरी राय से यह अति उत्तम होगा कि उनके सिद्धान्तों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया जाये और उनका जीवन में सक्रिय प्रयोग किया जाये; अपेक्षा इसके कि उनके व्यक्तिगत जीवन पर लम्बे-चौड़े वाद-विवाद या बहुविध बातें खड़ी हों।

वैशाली नगर अपने समय में उन्नति के चरम शिखर पर था और भगवान् महावीर की जन्मभूमि होने के कारण भारतीय धार्मिक जगत् में तो इसकी ख्याति और भी अधिक बढ़ गई थी। वैशाली की पुण्य-विभूतियों ने मानवता के उद्धार के लिये बड़े अच्छे-अच्छे सिद्धान्त सिखाये और स्वयं त्याग एवं साधनामय पावन जीवन अंगीकार किया। महावीर तो अपने समकालीनों में निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ रहे। बौद्ध ग्रंथ 'महावस्तु' में लिखा है कि भगवान् बुद्ध ने वैशाली के 'अलारा' एवं 'उड्डक' में अपने प्रथम गुरु की खोज की ओर उनके निर्देशन में जैन बनकर रहे। पश्चात् उत्पन्न मध्यमार्ग अपनाकर वैशाली में अत्यधिक सम्मानित हुए। उन्हें राजकीय सम्मान प्राप्त था, वे कूटागारशाला, (जो मुख्यतया उनके लिए ही बनाई गई थी) के महावन में रहते थे। द्वितीय बौद्ध-परिषद् की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बैठक वैशाली में ही हुई थी, अत: यह बड़ा पवित्र तीर्थस्थान माना जाने लगा, यहीं पर बौद्ध-संघ 'हीनयान' और 'वज्रयान' के रूप में विभाजित हुआ था। भगवान् बुद्ध की प्रसिद्ध शिष्या 'आम्रपाली' वैशाली में ही रहती थी, जहाँ उसने अपना उपवन महात्मा बुद्ध एवं संघ को वसीयत के रूप में अर्पण किया था। वैशाली का राजनैतिक महत्त्व भी था और यहाँ गणतन्त्रीय शासन-पद्धति प्रचलित थी। यहाँ लिच्छवि गणराज्य के राष्ट्रपति महाराज चेटक थे, जिन्होंने मल्ल की गणराज्य काशी, कौशल के 18 गणराज्य तथा लिच्छवियों के 9 गणराज्य मिलाकर एक संघशासन का सुसंगठन किया था। 'दीघनिकाय' में वज्जि- संघ की शासन-पद्धति एवं कार्य-कुशलता की श्रेष्ठता का सुन्दर वर्णन मिलता है, जो तत्कालीन गणतन्त्रात्मक शासनपद्धति का श्रेष्ठतम आदर्श थी। वैशाली वाणिज्य की भी विशालतम केन्द्र थी, जहाँ श्रीमंतों, वणिजों एवं शिल्पियों की मुद्रायें चला करती थीं। जब फाहियान (399-414 ई० में) भारत आया, तब वैशाली धर्म, राजनीति एवं व्यापार का एक प्रमुख-केन्द्र थी, पर अगली तीन शताब्दियों में इसका पतन प्रारम्भ हो गया और ह्वेनसाँग (635ई० में) जब भारत आया, तब तो यह बिल्कुल ही नष्ट-भ्रष्ट हो गई थी और अब तो जीर्ण-शीर्ण वृद्धा की भाँति बिल्कुल ही उपेक्षित है।

आधुनिक भारतीय गणराज्य ने वैशाली-संघ की एकता से बहुत कुछ सीखा है, तथा वज्जिसंघ की एकता हमारे प्रजातन्त्र की प्रमुख आधारशिला है। और अहिंसा, जो पंचशील का प्राण है, हमारी नीति-निर्धारण की मूल-केन्द्र-बिन्दु है। हमारी केन्द्रीय सरकार हिन्दी को राजभाषा बनाकर मगध-शासन की नीति का अनुकरण कर रही है, जिसने वर्ग-विशेष की भाषा की अपेक्षा जन-साधारण की भाषा को ही प्रतिष्ठा एवं गौरव प्रदान किया था। सम्राट् अशोक के सभी लेख प्राकृत में ही उपलब्ध हैं, जो तत्कालीन जनभाषा थी। हमारे प्रधानमन्त्री पं० नेहरू को भी प्रियदर्शी सम्राट् अशोक की भाँति अपने उच्चाधिकारियों की अपेक्षा जनता जनार्दन से मिलना अत्यधिक रुचिकर है। इस रूप में वैशाली को उपेक्षित नहीं कहा जा सकता है और आजकल तो केन्द्रीय शासन, बिहार शासन, भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति साहू शांतिप्रसाद जी और वैशाली-संघ के उत्साही सदस्य डॉ० जगदीशचन्द्र माथुर आदि के सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप वैशाली का उत्थान हो रहा है। बिहार-शासन ने जैन और प्राकृत-साहित्य के अध्ययन के लिए यहाँ एक स्नातकोत्तर संस्था की स्थापना की है। आशा है यह ज्ञान और अध्ययन का विशाल-केन्द्र बन जायेगी !

कालचक्र की प्रबल गति एवं राजनीतिक परिवर्तनों के कारण वैशाली सर्वथा ध्वस्त हो गई और हम भारतवासी भी उसके अतीत वैभव एवं महत्त्व को भुला बैठे, पर आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि वैशाली ने अपने सुयोग्य सपूतों को अब तक भी नहीं भुलाया है। वैशाली के जैन-बौद्ध-स्मारकों में वहाँ के स्थानीय मूल निवासी 'सिंह' व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नाथ' क्षत्रिय लोगों द्वारा अधिकृत एक उपजाऊ खेत भी एक बड़े महत्त्वपूर्ण स्मारक के रूप में आज भी विद्यमान है। लोग इसे जोतते-बोते नहीं हैं; क्योंकि उनके यहाँ वंश-परम्परा से यह धारणा प्रचलित है कि **इस पवित्र भूमि पर भगवान् महावीर अवतरित हुए थे, अतः इस पुण्यभूमि को जोतना-बोना नहीं चाहिए।** भारत के धार्मिक इतिहास में यह एक अद्भुत घटना है, जो भगवान् महावीर की स्मृति अपनी ही जन्मभूमि में 2600 वर्ष बाद भी उनके सम्बन्धियों एवं वंशजों द्वारा आज भी सुरक्षित है।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में महावीर का समय निश्चय ही प्रतिभा, मानसिक विकास एवं सूझ-बूझ का युग था, उनके समकालीनों में केशकंबली, मक्खली-गोशाल, पकुद्ध-कच्चायन, पूरणकश्यप, संजय वेलट्ठिपुत्त और तथागत बुद्ध प्रभृति धार्मिक पुण्य-विभूतियाँ थीं। भगवान् महावीर ने अपने पूर्ववर्ती तीर्थंकरों से बहुत कुछ सीखा एवं पाया था। उन्हें धर्म और दर्शन की एक सुव्यवस्थित परम्परा ही उत्तराधिकार में नहीं प्राप्त हुई थी, अपितु सुसंगठित साधु-संघ एवं उनके सच्चे अनुयायी भी मिले थे। वे उस दर्शन एवं धर्म का सक्रिय प्रयोग करते थे, जिसे भगवान् महावीर तथा उनके शिष्यों ने प्रचलित किया।

महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर समकालीन थे। उनका विहार (प्रचार)-क्षेत्र भी एक ही था और वहाँ के राजवंश एवं शासक दोनों के ही भक्त थे। इन दोनों ने मानव के मानवीयरूप पर ही विशेष बल दिया था और जनता-जनार्दन को उनकी अपनी ही भाषा में उच्च नैतिक आदर्श सिखाये थे, जिनसे व्यक्तिमात्र का आध्यात्मिक धरातल ऊँचा उठा एवं सामाजिक दृढ़ता में योग मिला। ये आदर्श, भावी पीढ़ी के लिए प्राच्य अथवा मागध धर्म के श्रेष्ठ प्रतिनिधि सिद्ध हुए और श्रमण-संस्कृति के नाम से विख्यात हुए। सौभाग्य से तत्सम्बन्धी मूल-साहित्य आज भी हमें उपलब्ध है। प्रारम्भिक बौद्ध और जैन-साहित्य आज भी हमें उपलब्ध हैं। प्रारम्भिक बौद्ध और जैन-साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से दोनों में एक अद्भुत समानता तथा धार्मिक एवं नैतिक चेतना प्राप्त होती है, जो न केवल 2000 वर्ष पूर्व ही उपादेय थी; अपितु आज भी अनेकों उलझनभरी मानवीय समस्याओं के सुलझाने का एकमात्र साधन है। महात्मा गांधी ने जो सत्य और अहिंसा की लौ (ज्योति) जगाई, उसकी पृष्ठभूमि में भगवान् महावीर एवं महात्मा बुद्ध के नैतिक आदर्श ही तो हैं। पाली भाषा में जो निर्ग्रंथ-सिद्धांत का विवरण मिलता है, वह जैन और बौद्ध के पारस्परिक सम्बन्धों के निर्णय में अत्यधिक सहायक है।

भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध में इतनी अधिक समानता थी कि प्रारम्भ में तो यूरोपीय विद्वान् दोनों को एक ही व्यक्ति समझने की भ्रांति कर बैठे; पर आज गम्भीर अध्ययन के विकास एवं शोध-खोज के फलस्वरूप दोनों महापुरुषों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व सिद्ध हो गया है, जिन्होंने भारतीय चिन्तनधारा के इतिहास पर एक महत्त्वपूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाव छोड़ा। यह एक ध्यान देने की बात है कि महात्मा बुद्ध ने केवलज्ञान (दिव्यज्योति) प्राप्ति से पूर्व कई विद्वानों के साथ अनेकों प्रकार के प्रयोग कर मध्यममार्ग अपनाया था तथा तत्कालीन प्रचलित अनेकों धार्मिक मान्यताओं एवं परम्पराओं का परित्याग भी किया था। उन्होंने तो भगवान् ऋषभदेव, नेमिनाथ एवं अपने निकटतम पूर्ववर्ती तीर्थंकर पार्श्वनाथ (जो उनसे केवल 200 वर्ष पूर्व हुए थे) द्वारा प्रचलित धर्म को ही अंगीकार किया और उसे ही तत्कालीन समाज के समक्ष प्रस्तुत किया।

महात्मा बुद्ध के विचार अपने समकालीन मतों एवं विश्वासों से बहुत कम मेल खाते हैं; क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि "मानवजाति के लिए मैंने कुछ नवीन खोज की है"; पर भगवान् महावीर के विचार अपनी समकालीन विचारधाराओं से बहुत मिलते-जुलते हैं, वे दूसरे के विचार समझने को सदैव उत्सुक रहते थे; क्योंकि वे उस धर्म का उपदेश साधारण रूप में परिवर्तित कर रहे थे, जो भगवान् पार्श्वनाथ के समय से प्रचलित था। उदाहरणार्थ डॉ० याकोबी ने लिखा है— "महावीर और बुद्ध दोनों ने अपने मतों के प्रचार के लिए अपने-अपने वंशों का सहारा लिया। दूसरे प्रतिद्वंद्वियों पर उनका प्रचार निश्चय ही देश के मुख्य-मुख्य परिवारों पर निर्भर था। महात्मा बुद्ध की आयु 80 वर्ष की थी, जबकि भगवान् महावीर केवल 72 वर्ष ही जिये। महात्मा बुद्ध के मध्यमार्ग ने समाज को एक नवीनता दी और नये अनुयायियों में विशेष उत्साह पैदा किया, फलस्वरूप उनका प्रभाव बड़ी दूर-दूर तक विस्तार से फैला, पर भगवान् महावीर ने तो नवीन और प्राचीन दोनों को ही अपनाया था, इसलिए वे सहयोग की भावना से ओत-प्रोत रहे। उनके समय नये अनुयायियों का प्रश्न इतना ज्वलन्त न था, जितना कि महात्मा बुद्ध के सामने था। जैन और बौद्ध साधुओं के नियमों में बड़ी समानता थी, इसका प्रबल प्रमाण यह है कि कुछ समय के लिए महात्मा बुद्ध ने निर्ग्रंथत्व (दिगम्बरत्व) धारण किया था, जो भगवान् पार्श्वनाथ के समय से चला आ रहा था। डॉ० याकोबी ने लिखा है कि—"जब बौद्धधर्म की स्थापना हुई, तब निगण्ठ (निर्ग्रंथ) जो 'जैन' या 'अर्हत्' के नाम से प्रसिद्ध हैं, एक महत्त्वपूर्ण वर्ग के रूप में विद्यमान थे। पालि-साहित्य में भगवान् महावीर का 'निगण्ठ-नातपुत्त' के नाम से उल्लेख मिलता है। इसप्रकार महावीर और बुद्ध ने प्रारम्भ में एक ही श्रमण-संस्कृति के आदर्शों पर अपना जीवन प्रारम्भ किया, पर आगे चलकर वे भिन्न-भिन्न हो गये और इसी तरह उनके अनुयायी भी समय और स्थान भेद के कारण भिन्न-भिन्न हो गये। पर यह एक शोध का विषय है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि दोनों धर्म भारत में पैदा हुए, पर जैनधर्म तो आज भी जीवितरूप से अपनी जन्मभूमि में विद्यमान है, पर बौद्धधर्म अपनी जन्मभूमि को छोड़ पूर्वी क्षितिज पर पल्लवित हो रहा है —ऐसा क्यों? एक बड़ा विचारणीय प्रश्न है। अत: आज यह अत्यधिक आवश्यक है कि महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर की शिक्षाओं का जो अध्ययन हुआ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसे और भी अधिक विस्तार एवं शोधपूर्वक मनन, चिन्तन कर पता लगाया जाये।

जैन-सम्प्रदाय के इतिहास की सामग्री यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। महावीर के पश्चात् जैनधर्म का अनुवर्तन बड़े-बड़े धुरंधर विद्वान् एवं साधुओं ने किया, जिन्हें श्रेणिक बिम्बसार और चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे महान् प्रभावशाली शासकों का आश्रय प्राप्त था। बहुत से धार्मिक साधु, राजवंश, समृद्ध व्यापारी एवं पवित्र परिवारों ने जैनधर्म की स्थिरता एवं प्रगति के लिए बड़े-बड़े बलिदान किए फलस्वरूप भारतीय कला, साहित्य, नैतिकता, सभ्यता एवं संस्कृति के लिए जैनियों की जो कुछ भेंट है, उस पर भारत को गर्व है।

भगवान् महावीर के सिद्धान्त विधिवत् रूप से तत्कालीन लोकभाषाओं में नियमानुसार ग्रन्थबद्ध हुए, जिनकी व्याख्या निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य एवं टीकाओं के रूप में हुई और फुटकर विषयों पर छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी गईं; उन पर आगे चलकर बड़ा विवेचनात्मक विस्तृत साहित्य तैयार हुआ। उनकी शिक्षाओं एवं सिद्धान्तों को बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों एवं मुनियों ने बड़े तार्किक ढंग से सुरक्षित रखा, जबकि अन्य भारतीय पद्धतियों में ऐसा बहुत ही कम था।

भारतीय साहित्य में जैनियों की सेवा अनेकों विषयों से सम्बन्धित हैं और वे प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, तमिल, कन्नड़ पुरानी हिन्दी एवं पुरानी गुजराती आदि विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध है। जैनाचार्यों ने भाषाओं को अपने उद्देश्य का मूल-साधन माना था, धार्मिक उदारता के कारण उन्होंने किसी एक ही भाषा पर बल नहीं दिया। धन्य है उनकी दूरदर्शिता को कि उन्होंने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में इतने विशाल साहित्य का निर्माण किया तथा तमिल और कन्नड़ को इतना अधिक सुसमृद्ध किया, इसके लिए मुझे विद्वज्जनों से विशेष कुछ कहने की जरूरत नहीं है। गत कई वर्ष हुए **डॉ० हूलर ने जैन-साहित्य के विषय में लिखा था कि—"व्याकरण, खगोलशास्त्र और साहित्य की विभिन्न शाखाओं में जैनाचार्यों की इतनी अधिक सेवायें हैं कि उनके विरोधी भी उस तरफ आकर्षित हुए। जैनाचार्यों की कुछ रचनायें तो आज यूरोपीय विज्ञान के लिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।** दक्षिण में जहाँ उन्होंने द्रविड़ों के बीच कार्य किया, वहाँ उनकी भाषाओं के विकास में उन्होंने पूर्ण योग दिया। कन्नड़, तमिल एवं तेलगु आदि साहित्यिक भाषायें जो जैनाचार्यों द्वारा डाली गई नींव पर ही निर्भर हैं और आज उनके ही कारण पल्लवित हो रही हैं, यद्यपि यह भाषा-विकास का कार्य उन्हें अपने मूल उद्देश्य से बहुत दूर खींच ले गया; फिर भी इससे भारतीय भाषा एवं सभ्यता के इतिहास में उन्हें बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। एक बड़े जर्मन विद्वान् ने कहा था, जो शोध-खोज से भी सिद्ध होता है कि **"यदि आज हूलर जीवित होते, तो भारतीय-साहित्य में जैनाचार्यों की सेवाओं पर वे बड़े उच्चकोटि के शोधपूर्ण विचार व्यक्त कर जैनत्व का महत्त्व बढ़ाते।"** जैनियों ने बड़ी सावधानी एवं चिंतापूर्वक प्राचीन पाण्डुलिपियों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरक्षित रखा है। जैसलमेर, जयपुर, पट्टन और मूड़बिद्री आदि स्थानों में जो इनके ही संग्रह (भंडार) हैं, निश्चय ही वे राष्ट्रीय सम्पत्ति के एक भाग हैं। उन्होंने ये संग्रह (भंडार) ऐसी विद्वत्ता एवं उदार दृष्टि से तैयार किये कि वहाँ धार्मिक द्वेष का कोई नामोनिशान (चिह्न) तक न था। जैसलमेर और पट्टन के भंडारों में तो कुछ ऐसी मूल बौद्ध-कृतियाँ उपलब्ध हैं, जो कि हम केवल तिब्बती अनुवाद से ही जान सके, इस सबका श्रेय इन भंडारों के संग्राहकों एवं निर्माताओं को ही है।

जैन-साहित्य का निष्पक्ष एवं समालोचनात्मक अध्ययन जैनधर्म और जीवन के सही दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में समर्थ है। जीवन की सही दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। जीवन की जैनदृष्टि से मेरा तात्पर्य उस जीवन-दर्शन से है, जिसमें जैन अध्यात्म एवं नीति (आचार) विषयक मूल-सिद्धान्तों को न्यायपूर्ण विवेचन हो और जैन उद्देश्यों की पूर्ति होती हो, आज के जैनधर्मावलंबियों की जीवन-दृष्टि से नहीं।

आध्यात्मिक दृष्टि से सभी आत्मायें अपने-अपने विकास के अनुसार (गुणस्थान रूप से) धर्म के मार्ग में अपना यथायोग्य स्थान पाती हैं। प्रत्येक की स्थिति अपने-अपने कर्मानुसार सुनिश्चित है और उनकी उन्नति अपनी-अपनी संभाव्य शक्ति पर निर्भर है। जैनियों के ईश्वर न तो विश्व के कर्त्ता हैं और न ही सुख-दु:खों के दाता। वे तो एक आध्यात्मिक मूर्ति हैं, जिन्होंने कृतकृत्यता प्राप्त कर ली है। उनकी पूजा-स्तुति केवल इसलिये की जाती है कि हम भी तदनुकूल बनकर उसी कृतकृत्यता एवं सर्वज्ञत्व की स्थिति को प्राप्त कर सकें। प्रत्येक आत्मा को अपने कर्मानुसार सुख-दु:ख का फल भोगना ही चाहिए, सच तो यह है कि हर आत्मा अपना भावी भाग्यविधाता स्वयं ही हैं। किसी आत्मा के पुण्य-पाप का दूसरे के साथ विनिमय होना बिल्कुल ही निराधार है, अत: ऐसे विचारों से कोई किसी का आश्रित या आधीन नहीं बनता है और विश्वास एवं आशापूर्वक अपन कर्त्तव्य पालन करता हुआ निरंतर प्रगतिशील बना रहता है। यदि कोई पुरुष बाह्य अथवा आंतरिक दबाव के कारण दुष्ट या हत्यारा बन जाता है, तो उसे निराश नहीं होना चाहिए; क्योंकि अन्तरंग से तो वह पवित्र ही है, अत: जब कभी काललब्धि आयेगी वह स्वानुभूति पर आत्मकल्याण कर सकेगा।

जैनधर्म में कुछ आचार-संबंधी नियम सुनिश्चित हैं, जो मनुष्य को सामाजिक प्राणी के रूप में क्रमश: विकास करने में सहायक होते हैं। जब तक वह समाज में रहता है, तब तक आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ समाजसेवा की ओर विशेष आकृष्ट रहता है; पर यदि वह सांसारिक झंझटों को छोड़ मुनिपद अंगीकार करता है, तो फिर उसका सामाजिक उत्तरदायित्व घट जाता है। जैनधर्म में श्रावकों के कर्त्तव्य मुनियों जैसे ही होते हैं; पर मात्रा (Degree) में कुछ कम होते हैं, अत: श्रावक अपनी क्रियाओं का आचरण करता हुआ क्रमश: मुनिपद प्राप्त कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा एक ऐसा सिद्धान्त है, जो जीवन में जैनदृष्टि का प्रवेश कराती है, जिसका मूल अर्थ है 'प्राणीमात्र पर अत्यधिक करुणाभाव रखना।' जैनधर्म की दृष्टि से सभी प्राणी समान हैं और हर धार्मिक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि उसके द्वारा (निमित्त से) किसी को कष्ट न पहुँचे। प्रत्येक प्राणी का अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं गौरव है और यदि कोई अपना अस्तित्व कायम रखना चाहता है, तो उसे दूसरों के अस्तित्व का भी आदर करना चाहिए। एक दयालु पुरुष अपने चारों ओर दया का वातावरण बनाये रखता है। जैनधर्म में यह सुनिश्चित है कि बिना किसी जाति, धर्म, रंग, वर्ग तथा स्थान के भेदभाव से जीवन पूर्णरूपेण पवित्र एवं सम्माननीय है। जैनधर्म की दृष्टि से हिरोशिमा और नागासाकी का निवासी उतना ही पवित्र एवं श्रेष्ठ है, जितना कि लंदन और न्यूयार्क का। उनके काले-गोरे रंग, भोजन अथवा वेष-भूषा यह सब बाह्य-विशेषणमात्र ही हैं। इसप्रकार अहिंसा की प्रक्रिया वैयक्तिक तथा सामूहिक दोनों ही रूप से एक महान् सद्गुण है और क्रोधादि कषायों से रहित एवं रागद्वेष-विहीन। यह करुणा का भाव निस्सन्देह बड़ा प्रभावक एवं शक्तिशाली होता है।

जैनाचार का दूसरा महान् गुण है 'भाईचारा' या 'मैत्रीभाव' (Neighbourliness)। प्रत्येक पुरुष को सत्य बोलना चाहिए और दूसरे के गुणों का आदर करना चाहिए, जिससे समाज में उसका मान और विश्वास बढ़े तथा साथ ही वह दूसरों के लिए सुरक्षा का वातावरण निर्माण में सहायक बन सकें। **यह बिल्कुल व्यर्थ एवं हेय है कि अपने पड़ोसी के साथ तो दुष्टता का व्यवहार करे और समुद्र-पार के विदेशियों के प्रति विश्वबन्धुत्व एवं उदारता दिखाने का ढोंग रचें। व्यक्तिगत कारुण्य पारस्परिक विश्वास एवं आपसी सुरक्षा के भाव अपने पड़ोसी से ही आरम्भ होना चाहिए।** और फिर वे क्रमशः उत्तरोत्तर स्तर पर सक्रियरूप से समाज में फैलाना चाहिए, किन्तु कोरे रूक्ष-सिद्धान्तों के रूप में नहीं। ये सद्गुण सुयोग्य नागरिकों के अनुकूल सामाजिक एवं राजनीतिक वर्ग तैयार करते हैं, जो मानवीय दृष्टि से अच्छे आदमियों के साथ शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के लिए उत्साहित करते हैं।

तीसरा विशिष्ट गुण है ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, जो धार्मिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ विभिन्न दशाओं वे विभिन्न मात्राओं में सीखा जाता है। एक आदर्श धार्मिक पुरुष जब मन-वचन-कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है, तो उसकी चिरसंचित निधि का अंतिम अवशेष उसका शरीरमात्र ही रह जाता है, जिसे स्थिर (जीवित) रखने के लिए उसकी आवश्यकतायें भी अत्यधिक सीमित रह जाती हैं और जब इनका भी धर्मसाधन में कोई योग नहीं रह जाता, तो इन्हें भी वह सहर्ष परित्याग कर देता है। सुख-शांति की खोज मानवमात्र का एक चरम लक्ष्य है। यदि वैयक्तिक प्रवृत्तियों एवं इच्छाओं को विधिवत् रूप से नियन्त्रित रखने का प्रयत्न किया जाये, तो फिर मनुष्य को मानसिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द एवं आध्यात्मिक शांति तो मिल ही जाती है। स्वेच्छापूर्वक धन की आवश्यकताओं को सीमित करना एक बहुत बड़ा सामाजिक गुण है, जिससे सामाजिक न्याय एवं उपभोग की वस्तुओं का समुचित वितरण होता रहता है। सशक्त एवं श्रीमंत लोग निर्बल एवं गरीबों को कूड़ा-करकट या उपेक्षित कदापि न समझें; अपितु वे अपनी अभिलाषाओं एवं आवश्यकताओं को स्वेच्छापूर्वक क्रमश: नियंत्रित करें, जिससे उपेक्षित वर्ग भी जीवन में अच्छी तरह जीने के सुअवसर प्राप्त कर सके। ये गुण व्यक्ति या समाज में बाहरी दबाव अथवा कानून से नहीं थोपे जा सकते, अन्यथा गुप्त पाप और छल एवं पाखण्ड की प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगेंगी। अत: बुद्धिमान पुरुष को इन गुणों का क्रमश: अभ्यास कर एक उच्च आदर्श उपस्थित करना चाहिए, जिससे एक प्रबुद्ध एवं सशक्त समाज का क्रमिक विकास हो सके।

व्यक्ति का बौद्धिक स्तर बनाने वाले बहुत से तत्त्व हैं, जैसे वंश-परम्परा, वातावरण, पालन-पोषण, अध्ययन और अनुभव इत्यादि, पर उसके विचार एवं विश्वास (दृढ़ता) का निर्माण तो बौद्धिक स्तर से ही होता है। और वह यदि बौद्धिक ईमानदारी एवं भावाभिव्यक्ति के ऐक्य में पिछड़ जाता है, तो फिर ये सब गुण दूषित हो जाते हैं और मनुष्य की व्यक्तिगत या सामूहिक भावनाओं अथवा तौर-तरीकों के अनुसार विभिन्न रूप धारण कर लेते हैं, इसीलिए विचारों की निर्द्वन्द्वता एवं दृष्टिकोण का सहयोग दुर्लभ-सा ही होता जाता है। प्राय: हम सब अपने आपको बहुत अच्छे और ठीक समझते हैं; पर किसी विषय पर आपस में सहमत होने की अपेक्षा असहमत होना आसान ही नहीं स्वाभाविक भी है। इसी स्थिति से निपटने के लिए **जैनधर्म ने विश्व को दो बड़े महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की भेंट प्रस्तुत की है, वे हैं 'नयवाद' और 'स्याद्वाद', जो किसी विषय को समझने और समझाने में बड़े साधक होते हैं।** पदार्थ के विभिन्न दृष्टिकोणों एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण 'नयवाद' से होता है। एक उलझे हुए प्रश्न के विश्लेषणात्मक परिचय का यह एक सुन्दर उपाय है। 'नय' एक ऐसा विशेष मार्ग है, जो एक सम्पूर्ण पदार्थ के किसी एक भाग अथवा दृष्टिकोण का विवेचन करता है, जिससे सम्पूर्ण पदार्थ गलत नहीं समझा जा सकता। इन विभिन्न दृष्टिकोणों के समन्वय की भी एक नितान्त आवश्यकता है, जिसमें प्रत्येक दृष्टिकोण अपनी उचित स्थिति प्राप्त कर सके और यह कार्य 'स्याद्वाद' द्वारा होता है। एक व्यक्ति अस्ति, नास्ति और उभयरूप से पदार्थ का वंर्णन कर सकता है। इन तीनों के संयोग से सात अन्य विशेषण और बन जाते हैं, जो 'स्यात्' शब्द के जुड़ने से विषय को समझने और समझाने का एक समुचित मार्ग बन जाता है। अस्ति-नास्ति के विवेचन में स्याद्वाद पृथक् नय के सत्तात्मक दृष्टिकोण को दबा देता है। प्रो० ए०बी० ध्रुव ने कहा है "स्याद्वाद काल्पनिक रुचि का सिद्धांत नहीं है, जो सत्त्व-विद्या (प्राणिविज्ञान)-सम्बन्धी समस्याओं को आसानी से सुलझा सके, अपितु यह तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य के मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक जीवन के ताल-मेल को बैठाता है।" एक दार्शनिक जब जैनधर्म के मूलतत्त्व अहिंसा एवं बौद्धिक सहयोग के साथ अन्य धार्मिक विचारों पर अपने मत व्यक्त करता है, तो उसमें स्याद्वाद से विचारों की निष्पक्षता आती है, और यह निश्चित करता है कि सत्य किसी की पैतृक-सम्पत्ति नहीं है और ना ही किसी जाति या धर्म की सीमाओं में सीमित है।

मनुष्य का ज्ञान सीमित एवं अभिव्यक्ति अपूर्ण है, अत: विभिन्न सिद्धान्त का निरूपण अपूर्ण ही है, ज्यादा से ज्यादा वे सत्य की एकतरफा दृष्टि को ही प्रस्तुत करते हैं, जो शब्द या विचारों द्वारा ठीक रूप से व्यक्त नहीं की जा सकती। धर्म सत्य का प्रतिनिधित्व करता है, अत: सहिष्णुता जैनधर्म एवं आदर्शों की मूल आधारशिला है। इस सम्बन्ध में तो जैन- शासकों और सेनापतियों तक के आदर्श अनुकरणीय है। भारत के राजनैतिक इतिहास से यह स्पष्टरूप से ज्ञात होता है कि किसी भी जैनशासक ने कभी किसी को मौत की सजा नहीं दी, जबकि जैन साधु एवं जैनियों को अन्य धर्मावलम्बियों की धर्मान्धता का कोप-भाजन बनना पड़ा। डॉ० Saletore ने ठीक ही कहा है— **"जैनधर्म के महान् सिद्धान्त अहिंसा ने हिन्दू-संस्कृति को सहिष्णुता के सम्बन्ध में बहुत कुछ दिया है तथा यह भी सुनिश्चित है कि जैनियों ने सहिष्णुता का पालन जितनी अच्छी तरह एवं सफलतापूर्वक किया, उतना भारत के अन्य किसी वर्ग से नहीं किया।"**

एक समय था जब मनुष्य प्रकृति की दया पर निर्भर था, पर आज प्रकृति के रहस्यों पर विजय पाकर वह उसका स्वामी बन बैठा है। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का तेजी से विकास हो रहा है। अणु-शक्ति एवं राकेटों के आविष्कार ऐसे आश्चर्यकारी हैं कि यदि वैज्ञानिक चाहे, तो सम्पूर्ण मानव-जाति को कुछ ही क्षणों में ध्वंस कर सारी की सारी पृथ्वी को अदल-बदल सकता है; अत: आज सम्पूर्ण मानव-जाति विपत्ति के कगार पर खड़ी है, जिससे उसका मस्तिष्क पथ-भ्रष्ट हो चकरा रहा है तथा उसकी शरण में भाग रहा है, जहाँ इस विनाश से सुरक्षा (राहत) मिल सके; अत: निश्चय ही हमें अपने प्राचीन आदर्शों का पुनरंकन करना होगा।

वैज्ञानिक प्रगति मनुष्य को अधिकाधिक सुख-शान्ति प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील है, पर दुर्भाग्यवश मनुष्य-मनुष्य रूप से नहीं समझा जा रहा है; प्राय: गोरी जातियाँ ही मनुष्यता की अधिकारिणी समझी जाती हैं। —यही दृष्टिकोण हमारे नैतिक स्तर का विध्वंसक है। यदि विश्व का कुछ भाग अधिक सुसभ्य एवं प्रगतिशील बना हुआ समझा जाता है, तो वह निश्चय ही विश्व के बाकी भाग की नादानी एवं सज्जनता के बल-बूते पर ही बना है। मानव-जाति का सहयोगात्मक सामूहिक विकास ही जातिभेद-नीति को जड़मूल से नष्ट कर सकता है। अपनी व्यक्तिगत समृद्धता एवं श्रेष्ठता की अपेक्षा मानवमात्र की श्रेष्ठता एवं पवित्रता का महत्त्व समझा जाना चाहिए। वैज्ञानिक-प्रवृत्ति एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु-प्रवृत्ति में पारस्परिक सहयोग होने पर ही मनुष्य सही ढंग से मनुष्य के रूप में परखा जा सकता है। तकनीकी रूप से संगठित इस विश्व में अब स्व-पर का भेद बहुत ही थोड़ा रह गया है। आज अपना कल्याण दूसरों के कल्याण पर ही निर्भर है। यदि इस अहिंसा के सिद्धांत को ठीक ढंग से समझा जाये एवं प्रयोग किया जाये, तो विश्व नागरिकता के मानवीय दृष्टि की यह एक आवश्यक आधारशिला बन सकती है।

मनुष्य की नियोजित एवं सुसंगठित क्रूरता से हमें निराश नहीं होना चाहिए। कर्म-सिद्धान्त के अनुसार हम अपने भाग्यविधाता स्वयं ही हैं। हम आत्मनिरीक्षण करें, अपने विचारों का विश्लेषण करें तथा अपने उद्देश्यों का वैयक्तिक व सामूहिकरूप से अनुमान लगायें और किसी भी शक्ति के आगे हीनतापूर्वक झुके बिना ही इस विश्वास और आशा के साथ स्व-कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर रहें कि मनुष्य को अपने अस्तित्व एवं भलाई के लिए उन्नति का प्रयत्न करना है। देवत्व प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है और वह धर्म के मार्ग का अनुसरण कर इस देवत्व को प्राप्त कर सकता है। विज्ञान एवं तकनीकी-बुद्धिबल से हमें निर्णय करना है कि अगर हम मानव-समाज की भलाई को आगे बढ़ाना चाहते हैं अथवा स्वयं को रेडियोधर्मी धूलि के ढेर-रूप में परिवर्तित करना चाहते हैं।

अच्छा पड़ोसीपन एवं लालसाओं पर नियन्त्रण, दोनों बड़े श्रेष्ठ सद्गुण हैं। सत्य सदा सत्य ही रहता है। उसे वैयक्तिक, सामूहिक, राजनैतिक अथवा सामाजिक किसी भी दृष्टि से देखिए, एक ही मिलेगा। जिसे स्वयं आत्मज्ञान नहीं है और ना ही दूसरों को मनुष्यरूप से जानने की इच्छा है; वह दूसरों के साथ तो क्या स्वयं भी सुख-शांति से नहीं रह सकता है। स्व-पर विवेक ही हमारे आपसी सन्देहों को मिटाकर युद्ध के लगातार भय को सन्तुलित करता है, एवं हमें शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की स्थिति में ले जाता है।

आजकल विचार एवं भाषण की स्वतन्त्रता एक विलक्षण ढंग से पंगुल हो रही है। लोगों के अपने अभिप्रायपूर्ण प्रचार यथार्थ सत्य को छिपा ही नहीं देते; अपितु उसे ऐसा तोड़-मरोड़ कर पेश करते हैं कि सारा संसार पथभ्रष्ट हो भटक रहा है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि विवेकी पुरुष स्वयं प्रबुद्ध रहे तथा अपने ज्ञान की सीमाओं को समझता हुआ नय एवं स्याद्वादरूप से दूसरों के दृष्टिकोणों का आदर करना सीखे। हम मानव में मानवता के विश्वास को न खोयें और परस्पर प्रत्येक का मानवरूप में ही आदर करना सीखें तथा मनुष्य को विश्व नागरिक के रूप से स्वस्थ एवं प्रगतिशील स्थिति में रहने देने में योग दें। **जैनधर्म के मूल सिद्धान्त (अहिंसा, व्रत, नयवाद और स्याद्वाद) यदि सही ढंग से समझे जावें तथा उनका ठीक ढंग से प्रयोग किया जाये, तो प्रत्येक व्यक्ति विश्व का सुयोग्यतम नागरिक बन सकता है।**

अनुवादक — **कुन्दनलाल जैन**

❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर जन्मकल्याणक-महोत्सव

—अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ

छब्बीस-सौवाँ जन्मकल्याणक, महामहोत्सव वीर का।
त्रिशलानन्दन सन्मतिदाता, वर्द्धमान महावीर का।।

इक्कीस-सौवीं नयी सदी में, मना रहे हम लोग हैं।
प्रथम जन्मकल्याण-महोत्सव, यह उत्तम संयोग है।।

राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा, राजकीय सम्मान से।
पूर्ण विश्व में दृढ़ श्रद्धा से, मने अनोखी शान से।।

सत्य-अहिंसा-स्याद्वाद अरु, अनेकान्त के जोर से।
पूर्णशान्ति-साम्राज्य प्रकट हो, आशा है चहुँओर से।।

नहीं रहेगा नाम कहीं पर, उग्रवाद आतंक का।
लूटपाट-अन्यायी-चोरी, भ्रष्टाचार-कलंक का।।

नहीं अशिक्षित होगा कोई, हमें पूर्ण विश्वास है।
नहीं सोयेगा भूखा कोई, रहने को आवास है।।

'जीओ अरु जीने दो' नारा, गूँजे सारे देश में।
जीने का अधिकार सभी को, हो कैसे भी वेश में।।

समताभाव जगे उर-अंतर, सबसे मैत्रीभाव हो।
ऊँच-नीच का भेद नहीं हो, सर्वधर्म-समभाव हो।।

पूर्ण अहिंसावर्ष रहे यह, कहीं नहीं उत्पात हो।
बूचड़खाने बन्द होंय सब, मांस नहीं निर्यात हो।।

सर्वसुखी हो दुःखी न कोई, पूर्ण विश्व में हर्ष हो।
ऐसा 'अनुपम' मने महोत्सव, सभी तरह उत्कर्ष हो।।

❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर के संघ की गणिनी युगप्रवर्तिका 'चन्दन बाला'

—डॉ० नीलम जैन

चन्दनबाला का जीवन सामाजिक विषधरों से घिरा साक्षात् चन्दन-वन है। तेजस्विनी, विदुषी, दृढ़ संकल्पी, शान्त, सौम्य पूर्वकृत पापों के सर्पदंश को सहने वाली आदर्श नारी चन्दना वर्तमान युग में नारियों के लिये युगादर्श है। अपहरण की मर्मान्तक व्यथा से व्यथित, रूप के बाजार में बिकती हुई चन्दना नारी-देह के सौदागरों के बीच से बच भी गई तो क्या, नारी द्वारा ही प्रताड़ना, आशंका एवं चारित्रिक भ्रष्टता के आरोपों से बच पाई थी? उस षोडशी राजकुमारी ने अल्पवय में ही स्त्रीत्व के कारण उत्पन्न उन सब कष्टों एवं समस्याओं को एक साथ झेलकर अपने व्यक्तित्व का सुपथ निश्चित किया था।

पौराणिक कथानकों में चन्दना का कथानक कुछ अधिक ही निकट लगता है। वह एक ऐसी युवती है, जो पूरे कथानक में अकेली ही दु:ख-सुख के भंवर में फंसती-निकलती है। एक पल वेश्या के अपवित्र हाथों में पड़ने का पातकी-दु:ख, दूसरी ओर सेठ जैसे धर्मपिता प्राप्त हो जाने का सहज, स्वाभाविक दिव्य-सुख। एक पल अपरिचित सर्वथा अनजान घर में पुत्री बन जाने का सुखद सौभाग्य और दूसरे ही पल पिता-पुत्री के सम्बन्ध पर उछाले जाते क्षार को आकण्ठ पीकर भी जीवित रह जाने का अकथ दुर्भाग्य। इसप्रकार जहाँ जंजीरों में जकड़ी, उबले हुए कौदों के दाने-दाने को अपने दु:खों की कालिमा से रंग हुए देख-देखकर फूट-फूटकर रोती चन्दना और कहीं बाहर जय-जयकारों के स्वरनाद के मध्य उन्हीं का दिव्य-व्यंजनों में बदल जाने के चमत्कार से विस्फारित नेत्रों में हर्षाश्रु बरस जाने का रोचक आह्लादकारी क्षण। पिछले पल ही चरित्रभ्रष्टा त्याज्य चन्दना और अगले ही पल जगत्पूज्या चन्दना ! कर्मों की जैसी धूप-छांव और अठखेली चन्दना ने देखी, वैसी अन्यत्र दिखाई नहीं पड़ती।

दोनों ही प्रकार की नारी एक साथ इस युग में देखी जा सकती हैं। एक नारी कोमलता, गहनता, सुन्दरता, उदारता, त्याग एवं तपस्या का प्रांजल कोष और पुण्य-सलिला है; तो वेश्या और सेठानी जैसी नारियां कठोरता, चपलता, लम्पटता, क्षुद्रता, प्रच्छन्न-पतका की क्षुद्र-प्रतिनिधि भी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्दना का सम्पूर्ण वृत्तान्त जीवन में मानवीय सम्बन्धों को सर्वदा उर्जस्वित करनेवाले तेजस्वीवृत्त का केन्द्र है। वह संसार में रहते हुए सबके लिए अनुरागमयी क्षणों में अमृतमयी बनकर सुख-वर्षा करती है और वैराग्य के क्षणों में समाज की विडम्बनाओं, त्रासदियों एवं संत्रासों का कालकूट विष पीनेवालों को सुधामृत-पान कराती है। उसका खुला सीधा-सपाट चारित्रिक उत्कर्ष सहज ही कर्ण-गह्वर में कह जाता है कि समाज का का रूप कितना ही क्रूर, वीभत्स एवं त्याज्य क्यों न हो; उसका ताना-बाना सद्गुणों एवं आदर्शों से ही बुना जाता है। चरित्र के बिना 'समाज' का सुन्दर महल रेत पर बने मकान जैसा होता है, जो जीवन के उहापोहों को क्षण भर भी सहन नहीं कर सकता और संकटों, उपसर्गों, संघर्षों एवं परिषहों के एक थपेड़े से ही धराशायी हो जाता है। समाज के सुस्थिर ताने-बाने में धर्म, दया, क्षमा, बुद्धि, विवेक, सदाचार, नीति, न्याय, उत्साह जैसे गुणों के रंग-बिरंगे फूलों को बुनना अनिवार्य होता है; क्योंकि वे फूल ही जीवन में रंग और सौन्दर्य भरते हैं। इस जीवन के प्रकाशयुक्त भावदीपों से ही युग को सन्देश प्राप्त होता है, आत्मोत्थान होता है; जो प्राकृतिक है, अवश्यम्भावी है। जीवन तो उसका अपवाद मात्र है। क्षण भर का सुन्दर समुज्जवल जीवन ही जीव की सर्वोत्तम उपलब्धि है। **जीवन प्रसाद की सच्ची आधार-शिला 'विवेक' और 'विनय' है, 'साधना' उस प्रासाद का अलंकरण व वैभव है, देव-शास्त्र-गुरु का मार्ग उस महल की हरियाली व समृद्धि के सूचक है।** आदर्श आगमोक्त चर्या का जीवन में रूप, रस व आनन्द देते हैं। अनागार अथवा सागार —दोनों ही मानव देह को सार्थक बनाने वाले दीपस्तम्भ हैं। सागार भी सच्चे मार्ग का अनुयायी बनकर विधि पर विजय प्राप्त कर कर्मों का नाश की भावभूमि निर्मित कर सकता है।

चंदना ने एक पल भी धर्म का साथ नहीं छोड़ा। विपरीत एवं विषम स्थिति में भी वीरबाला दीन-हीन नहीं बनी, उसके अनुसार धर्मयुक्त जीवन का एक क्षण भी, अधर्मयुक्त सैकड़ों-करोड़ों कल्पों के जीवन से श्रेयस्कर होता है। धर्म तो वह मित्र है, जो पल भर ही साथ नहीं छोड़ता है; जबकि ऐश्वर्य, भोग, धन तो यहीं साथ छोड़ जाते हैं। धर्म शाश्वत है, जो यश प्रदान करता हुआ युगों-युगों तक साक्षी रहता है।

संसार की आश्चर्यबहुल और विभिन्न छलावों से भरी वास्तविकता को चन्दना ने प्रतिपल निकट से देखा था। उसके संवेदनशील अन्त:स्तल को झकझोरती तमाम आस्था यदि टिकी थी, तो मात्र एक अव्यक्त, अदृश्य आत्मिक शक्ति पर टिकी थी। वर्तमान को तो उसने 'जैसा बोया, वैसा पाया' के अनुरूप जिया और कर्म-सिद्धान्त को समझा। पूर्व-कर्म ही जीवों के कर्ता व दाता है। कर्मफल को तो विधाता भी नहीं बदल सकता। भाग्य की असम्भावित चेष्टाओं के सम्मुख कभी-कभी पुरुषार्थ भी विवश हो जाता है। जीव के लिये जो कर्मों ने निश्चित किया है, वह होकर रहता है। वह उससे बचने के लिये इधर-उधर जहाँ भी दौड़े, उसके पद-चिह्न पीछा करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेटक की पुत्री, रानी त्रिशला की छोटी बहिन चन्दना कौशाम्बी के एक तलघर में बैठी अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहा रही थी, बेड़ियों में पांव कसे हुए थे। चन्दना का सौन्दर्य ही उसका शत्रु बन गया था। वह सोच रही थी 'नारी कितनी विवश है, उसका रूप स्वयं उसकी बेड़ी है।' विद्याधर द्वारा अपहरण, कौशाम्बी की मण्डी में उसकी सार्वजनिक नीलामी, सेठ कृषभानु द्वारा उसकी ख़रीददारी, सेठानी का द्वेष, तलघर में जंजीरों को जकड़कर डाल देना, मात्र उबले उड़दों पर गुजर उसे रह-रह कर चुनौती देने लगे और एक दिव्य तेज उसे प्रबोधित करने लगा। उसे विश्वास हो गया कि यह मेरी नियति नहीं है, उसका जीवन प्रकाशित होगा और सदा-सदा के लिये इस नारी जन्म की कर्म वर्ण को भस्मसात् कर देगी। कृषभानु का तलधर उसके अन्तस्तल को स्पर्श कर गया।

उसके मन में सम्यक्त्व स्पन्दित हो उठा। उसे आत्मशमन का बोध हुआ, रत्नत्रय का उपहार मिला। वह उबले हुए कौंदों का आहार दे रही थी और सम्यक्ज्ञान का आहार पा रही थी। दृश्य इतना दिव्य था कि मध्याह्न का सूर्य भी उस तलघर में अनाहूत उतर आया था और चन्दना को दीप्त कर रहा था। इस पल नारीत्व और चन्दना का सतीत्व अमर हो गया था। नारी के कीर्ति-ग्रन्थ में एक उज्ज्वल पृष्ठ और बढ़ गया।

सारा विष एक साथ पान करके लौकिक पगडंडी को छोड़कर आत्मकल्याण के राजमार्ग पर भगवान् महावीर के पीछे-पीछे चल देने वाली चौबीसवें तीर्थंकर, त्रिकालज्ञ, सर्व सक्षम की मौसी ने भी कर्मों के भोग तो भोगे ही; परन्तु अपने चरित्र में कठोर तपश्चरण की तूलिका से विभिन्न छटाओं को भरकर कलात्मक कृति बना दिया। जिसका रसास्वादन आज भी नारी यदि करे; तो विषयाभिभूत भौतिकता की प्रतिस्पर्धा में दौड़ते समस्त जगत् को स्वकेन्द्रित कर सकती है। चन्दना का चरित्र अनुभूतियों का दर्पण है, जो आदर्श के साथ-साथ प्रेरणा भी देता है— **अबला नारी को सबलता प्रदान करने में पूर्णत: सक्षम चन्दना का चरित्र युगादर्श है। दृढ़ चारित्रिक बल एवं साहस का सार्थक परिचय देने वाली चन्दना ने सचमुच युग ही बदल डाला था।** चन्दना ने अब त्राण पा लिया था, जैसे जीवन का कोई निष्णात शिल्पी अमरत्व की पूज्य प्रतिमा को उत्कीर्ण करने लगा हो। व्यर्थता घिस-घिस कर गिर रही थी और सार्थकता आकार ले रही थी, कर्मबन्ध टूट रहे थे। ज्ञान की ज्योति प्रखर थी। ज्ञानरूपी सूर्य अपनी अरुण लालिमा सहित पृथ्वी से उग रहा था। भाषातीत चन्दना की उस दिव्यता ने नारीत्व को धन्य कर दिया, इससे सुन्दर श्रृंगार आज तक किसी नारी का नहीं हुआ — सब नम्रीभूत थे। चन्दना लीन थी अलौकिक शोध में और सेठानी-सहित सब प्रायश्चित के टप-टप बहते अश्रु से उसके चरण पखाल रहे थे; उसकी कठोर तपश्चर्या से नारी पर्याय तिरोहित हो रही थी। मुक्ति के पदचाप कदम बढ़ा रहे थे। आत्मा की अनन्त तेजस्विता ने झांकना प्रारम्भ कर दिया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तन और ज्ञान की आगार वह बाला विचारने लगी— **"निशि-दिवा-सी घूमती सर्वत्र विपदा सम्पदा।"** ममत्व के इस नीड़ में अब मुझे प्रश्रय नहीं मिलेगा। मोह की निशा अब विघटित हो गई, अतएव नवीन प्रकाश के इस अनन्त नभ में अब स्वतन्त्र विचरण कर सकूँगी। अब सम्पूर्ण विश्व ही मेरा परिवार होगा। संसार श्रृंखला की कड़ियाँ तडातड़ टूटने लगी। इन्द्रियों के बंधन अब खुलने लगे, स्पर्श-रस-गन्ध-स्वर के द्वार उद्घाटित होने लगे और ज्ञान-ज्योति भीतर ही भीतर प्रज्ज्वलित होने लगी।

भगवान् महावीर के चरण ही उसने सच्ची शरण माने और देखते ही देखते वह सदा-सदा के लिये भौतिक श्रृंगारहीना होकर आत्मिक श्रृंगार से सज्जित हो गई। धवल शाटिका में वह चन्द्रिका (चन्दना) अपने हृदय का कोना-कोना आलोकित करने लगी। अब भीतर बाहर किसी तलघर में अंधेरा नहीं था। ज्ञानदीप की लौ बुझाने में प्रत्यनशील सभी शक्तियाँ बुझ चुकी थी, मार्ग के शूल फूल बन गये।

चन्दना को अब पूर्णाभास हो गया कि जैनधर्म ही सत्य और कल्याणकारी है। अब विधिवत् जैनधर्म में दीक्षित हो जाना ही मेरे लिये मंगलप्रद होगा। वीतरागी, हितोपदेशी और सर्वज्ञदेव ही शरण हो सकते हैं। उनकी वाणी ही संसाररूपी मरुभूमि में विविध तापों से संतप्त जीवों को शांति दे सकती है। अतएव चन्दना ने दीक्षान्वय क्रियापूर्वक तत्काल आर्यिका-दीक्षा ग्रहण की। चन्दना के चरित्र में पर्याप्त सहृदयता, सहिष्णुता और करुणा की त्रिवेणी के साथ आदर्श के कगारों का समन्वय भी है। सौम्य व गम्भीर नारी के इस शब्दकोश में ऐसे शब्दों का अतलस्पर्शी सागर लहराता है, जो प्रत्येक भावभिव्यंजना को साथ मर्मस्थल को छूने की क्षमता रखते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि चन्दना के चरित्र में दिक्-छटा है, कौंधती ज्योति-रेखाओं का समवाय है। यह वह दिव्य नारी है, जिसके गौरव की किताब खुली पड़ी है। आगम के अक्षर-अक्षर में एक बार फिर चन्दना की करुण गाथा के खण्डहरों की बरसाती आंखों में डाल आँख रो लेती है। यह वह दीपशिखा है, जो इस पानी से दीप्त हो उठती है। चन्दना का कल्पना चित्र एक टूटी आह पर झूलने लगता है और कहानी का अंचल सज जाता है आंसू के फूलों से, करुणा की वल्लरी से। ❖❖

निरोगी कौन?

निशान्ते यो पिबेत् वारि, दिनान्ते यो पिबेत् पय:।
भोजनान्ते पिबेत् तक्रं, वैद्यस्य किं प्रयोजनम्।।

अर्थ :— प्रात:काल जो पानी पीता है, सायंकाल जो दूध पीता है और भोजन के बाद जो तक्र (छांछ-मट्ठा) पीता है, उसे वैद्य से क्या काम? अर्थात् वह बीमार नहीं पड़ता और उसे वैद्य के पास नहीं जाना पड़ता है। **

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वइसालीए कुमार-वड्ढमाणो

—डॉ० उदयचन्द्र जैन

जंबूदीवे भरहखेत्ते बहुविहदेसा, रज्जा, गणरज्जा णयर-उवणयराणि अहेसी। बहुगणे गणरज्जेसु वइसालीगणरज्जो वि। सो अदिसमिद्धो वइहवसंपण्णो विसालो वित्थिण्णो वि। ईसापुव्वे पंच-सद-णिण्णाणवे भरहिज्ज-विविह गणरज्जेसुं वइसालीए णामा विक्खादा पासिद्धा।

विदेहदेसस्स पमुहरज्जो — वइसाली विदेहदेसस्स पमुहरज्जो पमुहकेंदो, पमुहठाणो रायधाणीइ णामेण समलंकिदा। सा वित्थिण्णा गंडगी-णदिं पेरंत चंपारण्णंतगं। तस्स पएसो विदेहो वा तिण्णि भुत्तो/तिरहुतो।

सत्ति संगम-तंते वण्णणं

गंडगी-तीरभारंभं चंपारण्णंदगं सिवे।
विदेहभू समक्खादा तीरभुत्ताहिवो मणू।।

बवदेहगणसंघो — णाणाविहसंघो गणो गणरज्जो य महावीरस्स पुव्वे विक्खादा। पच्छा सव्वगणरज्जाणं एगसुत्ते समाहिदूण रायतंतादु पुधु 'विदेह गणसंघो' इदि णाम किदो। विदेहगणसंघो वि गणरज्जो विसालो। अण्णे वज्जी, लिच्छवीसंघो वेसालीसंघो वि। वज्जीदेसस्स रज्जो 'वेसाली गणतंत' णामेण पासिद्धो। अस्सिं च विदेहो, णत्तिगो लिच्छवी वज्जि-उग्गो भोगो इक्खागू-कौरवा य।

वइसाली गणतंतो — वइसाली विसालो गणतंतो। अस्सिं णाणा णिगमा जणवदा गामा रज्जा संघा गणा समाहिदा। **सुत्तसंगहे** वेसालीविसए उत्तो वेसाली रमणीया। तस्सिं चेतियं रमणीयं। वेसालीगणतंते लिच्छवीणं वासो आसी। ते राजपुरिसा वीरा धीरा धम्मपवीणा वि। ते लिच्छवी णीला होंति, णीलवण्णा णीलवत्था णीलालंकारा। एकच्चे लिच्छवी पीता होंति पीतवण्णा पीतवत्था पीतालंकारा। इच्चाई। (सुत्तसंगह 134-135) वइसालीए अंबपाली-वणं वि। अंबपालीए लिच्छवीपुत्तो गोदमो आगच्छदि। अंबपाली गणिगा वि वइसालीए परिवसदि। दिग्घ निकाए वि वइसाली गणतंतस्स उल्लेहो। वइसालीए वज्जिदेसस्स वज्जिपुत्तगो वत्तिपुत्तगो वाहिदो। वज्जिपुत्तगाणं विरोह-संतकरणट्ठं वइसालीए वीअसंगीदी जादा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंगा-हिमवदे मज्झे णईपंचदसंतरे।
तीरभुतित्ति विक्खादो देस परम-पावणो।।

कोसिगी दु समारंभो गंडगीमहिगच्छदे।
जोजणाणि चदुविंसिं वायामपरिकित्तिदो।।

गंगप्पवाहमारंभं जाव हेमवदं वणं।
वित्थरो सोलहो वुत्तो देसस्स कुलणंदणो।।

विण्हुपुराणम्हि मिहिलाखंडे जो विदेहो अत्थि, तेसु विसालो वित्थरो वइसाली वि। सा गंगा-हिमवंत-पेरंत-मज्झे आसि। तस्सिं तीरहुत्तदेसो पंचदसंतर-धवहमाण-णदीजुत्तो अत्थि। तस्सिं पुव्वम्हि कोसिगी (कोसी), पच्छिमम्हि गंडगी, उत्तरम्हि हिमगिरी, दाहिणम्हि य गंगाणई। एसो तीरहुत्त-देसो पुव्व-पच्छिम-पेरंतं चदुविंसजोयणाणि तध दाहिणं च सोलह जोयणाणि वित्थरो। विमलपुराणे उत्तरपुराणे वण्णणं अत्थि-सिंधु-अडविसण्णिगडे वेसाली।

वइसालि-अहिवदी — वइसाली गणतंतस्स मूलणायगो महाराया चेडगो। लिच्छवीण खईण पहाणो वि। लिच्छवी-खत्तियाणं पमुहवंसो। विदेहाणं णरवईणं लिच्छवीसराणं च पुधु पुधु रज्जो। तेसिं संजुत्त-रूवं कादूण एग गणरज्जस्स ठाविदो। पुव्वे वज्जी वज्जिगण-णामसंघ रूवे विक्खादो। संपुण्ण-वज्जिगण-संघस्स रायधाणी वइसाली। सो लिच्छवीवंसस्स पमुहो इमस्स गणतंतस्स अज्झक्खो।

वइसालि-गणरज्जस्स गणाहिवदी — एस णिव्वादो अत्थि वइसाली विसालो गणतंतो। तस्स महाहिराया चेडगो, लिच्छवीणं पमुहो वि। सव्वेसुं गणतंतेसुं वइसाली पमुहो गणतंतो। जादग-अट्ठकधाणुसारेणं अस्सिं समग्गगणरज्जे सदसहस्स-सद-सदा राया रज्जसत्तं संचालेंति पुधु पुधु रज्जाणं। अणेग-राया, अवराया सेणावदी-भंडारिगा वि अत्थि। सव्वे रायाणो णिय-णिय-खेत्ताण रायाहियारी। तेसिं मूलाहिवदी गणाहिवदी य चेडगो।

उवएसमालाए चेडगस्स वइसाली-पुरीए सासगो जिणभत्त-सावगो भासेज्ज। तस्सिं एव हेहय-कुल-संभूओ चेडग णाम णिवो आसि त्ति वुत्तो। बुद्धागमेसु पिडगेसुं च चेडगस्स उल्लेहो णत्थि, किण्णु वइसालीए गणरज्जस्स पिडगेसुं उल्लेहो आसी।

चेडगस्स कुल-परंपरा — चेडगो धम्मणिट्ठो सुसावगो अत्थि। सो कत्तव्व-णिट्ठो कम्मपरायणो वियारगो उदारचेदा परक्कमी जिणिंदभत्तो, दाणी, णाणजणाणं माणी सम्माणी विणीदो रायणेइण्णो वि। तस्स पिदू वि सावग-गुणाहि विहूसगो णामेणं च कोसिगों मादुसिरी सोहणमदी सोहण-सदवियारसंपुण्णा।

धम्मपरायणा पदिपरायणा धम्मसीला सुभद्दा तस्स भज्जा, भद्दपरिणामी विदुसी। ताए दसकुलपुत्ता सत्तपुत्तीओ जादा। धणदत्तो, धणभद्दो, उविंदो, सुदत्तो, सिंहभद्दो, सुलंभोजो, अकंपणो, पतंगगो, पहंजणो, पहासो य दसपुत्ता। पियकारिणी (तिसला), सुपपहा, पहावदी, मिगावदी, चेलणी, जेट्ठा, चंदणा य सत्ततणया णाणाविहकला-समावण्णा। सहावेणं सरला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धीरा गहीरा, सीलेणं सेट्ठा चरित्तणिट्ठा। चदुछट्ठकला-कल-कमणिज्जा, लज्जाए पडिमुत्तीओ।

विदेहकुंडो — विदेह-देसत्थे कुंडपुरं णयरं आसी। जिणसत्थेसुं पुराणेसुं आगमेसुं विविहणामा-कुंडग्गामो कुंडगामो कुंडलपुरं कुंडपुरु कंडला इच्चादि। विदेहदेसस्स कुंडपुर-वासी राया सिद्धत्थो सो णाद-णाह-णाधवंसी वेसालीगणतंते वि लोयप्पियो। वइसाली-गणतंते कुंडगामो वि तस्स परिणयो चेडगाहिवदिणो जेट्ठपुत्ती-पियकारिणीए सह जादो। सा अणण्णप्पियक्कारिणी सव्वप्पिया जिणेसरी णयरी-वइसालीए वि पियकारिणी। तिसला-महिसी जणाणं तिसं-अभयं देदि। णंदं णंदेदि अणंदं उप्पज्जेदि। सव्वत्थपियप्पियो होदि। राया सिद्धत्थो वि पियो सा अणेगविध-बहुमाणेणं समारदरं पत्ता समादरं कुव्वदे। धम्मकलाए धमाणु सासणं जणएदि।

तिसलाए अण्णा पिअकारिणी भगिणीओ खत्तिय-कुमारेहिं परिणीदा। सुप्पहा दसारणदेसत्थस्स हेमकक्खस्स णयरस्स सुज्जवंसीराया-दसरहं, कच्छणयरस्स रोरुगणयरस्स उदयण-रण्णा पहावदीए। सा पहावदीए सीलव्वदेणं च सीलवदी वि जादा। वच्छदेसस्स सोम्मवंसी राय-सदणीगेणं च मिगावदीए विवाहो जादो।

गंधारदेसस्स महापुर-णयरस्स महिसी जेट्ठा जायणा किज्जा। राय-सच्चगेणं सह ण परिणदा। सा परिणयं विणा जिण-धम्माणुगामिणी जादा। ताए एव भगिणी चेलणाए विवाहो राय-बिंवसारेणं सह होदि। जेट्ठा चंदणा दु जिणधम्माणुरागिणी आसी।

वइसाली-कुमार-वड्ढमाणो — वइसाली गणतंते णाणाविध संघा, गणा, रज्जा समाहिदा। तस्स संघाणं गणाणं रज्जाणं रज्ज-रक्खगा रायाणो वि विविधा णिय-णियखेत्तस्स संचालगा। विदेहा, णत्तिगा, लिच्छवी, वज्जी, उग्गा, भोगा, इक्खागु-कुला, कोरवा वि गणा विसाल-गणरज्जस्स वइसालीए गोरवसालीवंसा। सिद्धत्थराया कुंडगामस्स अहिवदी। जेणं सह पिअगारिणी (तिसला) पमुह-महिसीरूवे समवचिट्ठिदा। तस्स कुमारो वड्ढमाणो।

वइसाली-गणतंते अण्णे कुमारा रायपुत्ता, रायवरेजेट्ठा पुत्तगा वि। कुमार-गोदमो बुद्धो वि वइसालीए गणतंतस्स कुमारो। तं कुमारं वइसालीकुमारो भासदे। वइसालीए लिच्छवी वेसालीए वज्जी, वइजाली मल्ली वइसालीए कोसला अण्णे बहुरायपुत्ता रायकुमारा।

वइसाली-कुमार-वड्ढमाणो — वइसालीए कुंडपुरस्स कुमारो। तस्स सासगो सिद्धत्थो। महिसी पिअकारिणी तिसला। सा पिअकारिणी एगं पुत्तं जणएदि। मासो चेत्तमासो तिही तेरसी। समयो छव्वीस-सदेव अज्जेव पुव्वो। पुराणेसुं वुत्तो

सिद्धत्थ णिवदिंतणय-अरहवस्से विदेहकुंडे।
दिव्वा पियकारिणी सुसिविणा संपदिस्स-विहू।।
चेत्तसिदपक्ख-फग्गुणि-ससंग-जोगे-दिणे।

कुंडउरस्स महिमा अदिपासिद्धा। सो गामो वि कुंडगामो। कुंडगामे सव्वे जादी-जणजादी रज्जपरिवारा वि अवट्ठिंसे। जत्थ-वइसाली मंगलकारिणी दिव्वा रम्मगा धण-धण्णेहिं सामिद्धा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थेव कुंडपुरो/कुंडगामो वि। सत्तत्थ वणसंपदा हरिद-तिण-लदा-गुम्म-गुच्छ-संछिण्णा जण-मणमोदिणी। जलरासिणो रासदि रासदि भासदि भासदि कल-कलकण्णपुण्णसद्देहिं।

कुमार-वड्ढमाणो — मादु-तिसला जधेव गब्भं धारदि, तधेव पुव्वे सा सोलह-मंगल-कारी-सिविणं अवलोयदि।

गजिंद इंदस्स दंसं, गविंद-सिद-णोम्मगं।
सिंहं चंदं सरिच्छं च, कमलासणि-लच्छिं च।।
दु-पुप्फ-सुंदिरंमालं, पुण्णचंद सुमंडलं।
उदयाचल-सुज्जं च, कमलाछण्ण-कुंभं दो।।
दो कीलंतयमच्छं, दिव्वं सरोवरं णीरं।
वेलातडागदोदधिं, उच्चसिंहासणं रम्मं।।
सग्गागद-विमाणं च, णागिंदभवणं वरं।
देदिपरयणाकलिं, णिद्धूमअग्गि-जालं च।।

मंगलोग्गीदेणं सह पिअकारिणी जग्गदि। जग्गिदूणं च सव्वंकिरियं किदमंगल-णेहं वत्थालंकरणं च जुत्ता होदूण णिवठाणं पत्तेदि। तत्थ सा सुहासणम्हि आसीण-भूदा सोलह-सिविणाणि णंद-णंदेणं च परिधोलेदि। राया सिद्धत्थो पसण्णो भूदो परिभासदि अदिमंगलकारिणी-सिविणाणिं। तुट्ठो संतुट्ठा भूदा तुमं णियठाणं पत्तोति।

गब्भे समागद कुमारादु धरा वि रयणगब्भा हासजुत्ता समलंकिदा छम्मासपेरंतं च रयण-रासि-सग्गादु सुरोत्तमेहिं परिसिंचेंति। ते दिव्व-देवा णाणाविहुच्छवं कुव्वंति। जणणीए सेवाए सिरी-हिरी-धिदी-बुद्धी-लच्छी एदाओ छक्कुमारीओ सोहाए संचारं कुव्वेंति। सिरी सोहं, हिरी लज्जं वड्ढेदि। धिदी धिज्जं/धीरत्तं, कित्ती थुदिं परिवड्ढेदि। बुद्धी बोहं णिम्मएणं कुव्वेदि तध लच्छीविहूदिं च। जहिवि सा मादू सहावेणं च आणंदं हरिसं मुदं णंदं विसुद्ध-परिणामं छारिदूणं च णिच्चं णिअंगणं सुसोहज्जदि।

णव-मांसतर-सण्णिगडे आगदे देव-देवंगाओ कलं परिलंकिदं च कव्वकला-जुत्त-कलणं कुव्वेंति। मुहिंदुणा जिदं पोम्म सा पिअकारिणी सव्वत्थ वड्ढमाण-गुणेणं च पभाद-काल सुज्जव्व चेदसिद-तेरस-सुह-दिवे पुत्तं जणेदि।

तिबोह-किरणेहिं उब्भासिदो एस बालो जगस्स अपुव्व-सुज्जो वि। मदि-सुद-ओहि-णाणेहि समलंकिदो वड्ढमाणो सव्वत्थ विद्धिं च कुव्वेदि। तत्तो कारणादो णिमित्तणाणी णिमित्त-जोग-रासि-जोगादि-पुव्वेणं च णाम कुव्वेंति वड्ढमाणो वड्ढेदि कला-कलाए। णम्मीभूदा सुरासुरा देव-देविंदा अपुव्वुच्छवं कुव्वेंति। अहिसेग-समए दंसिद-लच्छेण सिंहो लच्छणं कुव्वेंति ते।

अधिवदी-राया-सिद्धत्थस्स कुंडगामे सव्वत्थ उच्छवो हि उच्छवो। महुच्छवो वइसाली गणरज्जे, लिच्छवी-गण-णायगेसुं, इक्खागुवंस-पडि-पालगेसुं, वज्जिसु विदेहकुंडे उग्गकुलेसुं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगकुलेसुं कोरवेसुं च वि।

कुंडपुरम्हि महुच्छवो — वइसालीगणरज्जस्स कुंडपुरम्हि सव्वत्थ उच्छवो महाजणेहिं पण्णजणेहि खत्तिगेहिं अण्णेहिं च सव्वेहिं जणेहिं किदो चदुपधम्हि तिमग्गम्हि रज्ज-महपंथम्हि गामे वा णयरे वा उवणयरे खेडे कव्वडे मंडवे मंडले वा पट्टणे दोणमुहे घोसे आसमे साला-सण्णिवेसे पडिवेसे वि।

वड्ढमाणस्स बालचेट्ठा — णाणाविध-बालचेट्ठा-समलंकिदो कुमारो अदिपंससणिज्जो वि होदि। सुउमाल-पाद-कर-पल्लवेहिं मोहदि जणाणं णेहं पत्तेदि अप्पाण-कुडुंबिगेहिं। ति-णाण-वंतो वि विज्ज-विहूसणं पादुं णिच्चं अग्गणीभूदो णिय-वयस्साणं णंदेदि।

तस्स पियमित्ताणि — सो कुमारो दुजचंदोव्व चंददुतिं धारंतो सव्वेसिं णंद-णंदगो वि। जदि वि सो णाणाविध-लक्खणेहिं संजुत्तो पियप्पिओ पाणप्पिओ जणप्पिओ सेट्ठप्पिओ रज्जप्पिओ सो संख-चक्क-पोम्म-जव-धणु-धजादि इगसहस्स-अट्ठ-लक्खणेहिं विहूसिदो किंध-किंध णंदं ण पदेज्जा। जे वि तं छवि-पासंति, ते सव्वे पियमित्ताणि।

किण्णु तस्स कुमारवड्ढमाणो कुमारचलधरो कुमारकाकधरो कुमारपक्खधरो एदाणि चदुमित्ताणि पारंभेणं च तेणं सह सुसोहिदा णाणाविध-बालसुलह-कीलं कुव्वेंति। उववणे आरामे वि परिकीलंति सहेव।

कुमार-वुड्ढि-गोरवो — जो तित्थयरो होदि सो तिण्णाणं जम्भादो वि लहेदि। किण्णु लहुबालो बालो हि जायदे। जदो सो अट्ठवयं पत्तो, तदो सो विलक्खण-मदि-वंतो असाहरण-पडिभावंतो पण्णावंतो सोम्मो वि। तं असाहरणं पडिभा-णाणं कुद्धि-विलक्खणं पण्ण-महिमं सुणेंति संजयंत-विजयंत-चारणरिद्धिजुदमुणिणो। ते आयार-पूदा पण्णवंता वि सव्वे जाणेंति। तेसुं च ण संका, तध वि ते तच्च-विसयत्थं संकं णेदूण आच्छंति। समाहाणत्थं च तं समीवं पत्तेति। किण्णु ते परम-जुदि-वंत-कुमार-वड्ढमाणसदंसणं कादूण तं मिट्ठ-वत्तालावं मुद-सुद-पुण्ण-ववहारं जाणिदूण दंसण-मेत्तेव तच्चलाहं पत्तेंति सम-समयं सम-सुदणाणं च जाणेंति। ते रिद्धि-णाण-बलजुत्ता मुणिवरा णो केवलं सयमेव समाहेज्जा अवि दु अप्पहिदत्थं पदक्खिणं कुव्वेंति।

सम्मदी कुमारो — जो सव्वं सम्मदि देदि सो सम्मदी होदि। सम्मं मदीए सम्मणाणेणं च सो अट्ठवय-बालो कुमारवड्ढमाण-कुमारचलधर-कुमारकागधर-कुमारपक्खधरेसुं च कुमारो वि बालो। ते वि तं मदिं विसालत्थं जाणिदूण णिच्चेव तस्स अग्गगामी-परममित्त-रूवं धारिदूणं च सह-सहेव कीलंति पढेंति तच्च-णाणं च समीहिज्जेंते।

जण-जणेहिं दिव्वपुरिसेहिं मित्तगणेहिं च सो वड्ढमाणो सम्मदी। उवहिदजणा दिव्वगणा जण-जणवदवासिणो णर-णारी वि तस्स णाणस्स पुण पुण पसंसेज्ज। सो कुमारो लहुबालो बालाणं मज्झे अहेसि। सो कुंडपुरस्साहिरामो।

कुमार-वीरो — बालो दु बालो हवेदि। सो कीलंगणे कीलं कदेदि मित्तेहिं सह आराम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उववणे वि गच्छदि। जलकीडं वणकीडं णाणाविधदिव्वुच्छवं वसंतुच्छवं आदिं च मण्णेदि। तस्सिं समयम्हि कुमारकालम्हि उच्छव-पुण्णो हि।

एस वेसालिय-कुमरो कुमरेहि रायकुमरेहिं मित्तवरेहिं च सह उज्जाणं पडिगच्छदि। गच्छित्ता णाणाविध-कीलं करेदि। साहा साहे आरोहदि, आरोहेंति ते समागद-समवयस्सगा कुमारा। रुक्खेसुं आरोहिदूणं णंदेंति णो तेसिं संरक्खणत्थं चिंतदि। कुमारा चवला हुंति बालचवलत्तेणं च इत्थ तत्थ अहिगच्छेंति। वाणरव्व उच्छलणं कुव्वेंति। कुमारेहिं सह एगो दिव्वकुमारो वि आगच्छदि।

सो दिव्वकुमारो देवो संगमहिणामो कुमारो। तेहिं सह परिकीलदि। णाणाविध-कीलं करेदि। णागदेवाणं कुमारो संगमो संगच्छेदि संकीलेदि। णिब्भीदो कुमारो वड्ढमाणो वि धावंतो लुक्कदि परिदिस्सदि आरोहदि वि। णागकुमारो तं भयमुत्तकुमारं परिदंसिदूण मणे चिंतेदि किं एस कुमरो जहेट्ठभयमुत्तो। तं परिक्खणत्थं च सो णागरूवं धारेदि। रुक्खं परिवेढएदि।

कुमारा वड्ढमाणं अणवेसएंता रुक्खे मूले आगच्छंति। पासेंति ते सव्वे णागं/सप्पं/किण्हसप्पं जो दिव्वो विसालो वइसालीए कत्थ वि परिदंसिदो।

"णागो-णागो, सप्पो-सप्पो, कालो, भुजंगो, विसहरो, फुक्कारवंतो णिच्छयमेव कुमारं डंसिस्सदि" उच्चसरेहिं भासंति "कुमारा वड्ढमाणो अणुगच्छेंज्ज बहिं, अणुगच्छेंज्ज वहिं विसहरो विकरालो कालो णागो।" सव्वे विरमेंति जत्थ तत्थ अणुधावेंति वदंता विसहरादु दूरो होदु वड्ढमाणो।

कुमार-वड्ढमाणो वड्ढमाणेणं गुणेणं जण-णयणाहिरामो णिय-पादं अणुचरेंति भुजंगरायं पडि मंद-मंद हास-समण्णिदो समभाव-जुत्तो। अप्प सोंम्मदिहिं कादूण अणुदंसेदि पुण पुण अवलोएहि मित्तव्व। सो विअसंतो संतो जादो। बालाणं अणुपासंता अणुपेंक्खंता एस कुमारो पुच्छं घेत्तूण बहिं कुव्वेदि। णागकुमारो णागरूवं परिचइदूणं दिव्वरूवं धारेदि अणुपस्सेदि वि पुणु पुणु कुमारं बालकुमारं च। जध सुणेंज्जा तध सो बालो अत्थि। वीरो अत्थि, साहसी परक्कमी वि। अण्णबालेसुं वीरो। तस्स मित्ताणि कुमारा अत्थि सुउमाला वि।

उम्मत्त-हत्थिं वसंकरेणं सो अदिवीरो। वीरो बालो, अदिवीरो बालो। बालरूवं पच्छा सव्वकला-पारंगदो जुवराजो वि।

जुवराजो वड्ढमाणो — अस्सिं समए वड्ढमाणं पुरदो सव्व-वइसाली-गणतंतस्स ठिदि-संठिदा। विविध-गणरज्जस्स ठिदी गामाणं परिट्ठिदी उवगामाणं वि सव्व-चेदणा। चेदणाए अप्पचेदणाए अणुरत्तो जुवराजो किं कुव्वे, किं बोहेंज्ज। जत्थेव गच्छदि तत्थेव कम्म-कंडेसुं आरंभा समारंभा हि समारंभा। समियाए विप्पमुत्ता मुत्तिं जाणणं अग्गेसरा वि आराजगदाए अच्चाचारादो वध-बंधण णीदीए किं कुणेंज्जा। सव्वे आतंकिदा।

जुवराजो समग्ग-जण-भावणं अणुचिंतेदि। चिंतेदि वि तं णिवारणत्थं अणुप्पासो कुव्वेदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जुवराज-पदे पचिट्ठिदम्हि किं होंज्जा। सव्वत्थ एगो हि वियारो—

जा जा वच्चइ रयणी ण सा पडिणिइत्तइ। अधम्मिगा हि अधम्मिगा। संति-इच्छुगा अणेगा वि संति-मग्गं पत्तुं पजण्णसीला। असंतीए असंतीए सव्वत्थ असंतीए को अग्गगामी होदूण संति-दीवं पज्जतेस्सदि। जे वि अग्गे अणुगच्छेंति ते किंचि समयं पच्छा विरमेंति। कुमारा अग्गेसरा बलेण जुत्ता बलेंति। किण्णु धम्मं घेत्तूणं च जदि गमिस्सदि, सो एव भत्ति धम्म-चेदणं जग्गिस्सदि।

कहेंति कुमारा मंतिकुमारा सत्थवाह-कुमारा रज्जरायकुमारा वि। अस्सिं गणरज्जे एगमेत्त कुमारो वड्ढमाणो, सो एव धम्मणीदीए संतिं कत्तुं समत्थो होहिदि। सो जाणेदि सव्वं तिसला-अणुरागं पिदु-रज्जभारं च जण-जणेसुं च अदिवित्थिण्ण-हिंसगं वि। हिंसगेसु अहिंसगो जुवराज-पदेण ण संभवो। मादुप्पियो हं मादु-ममत्तं जाणिदूण कुलगिहे कुलगेहिं वि इच्छदि।

वीरो महावीरो — वीरो वीरो, अदिवीरो गेहे रमे रज्जे रमे असार-संसारं सरेंज्ज महावीहिं च। सो **सव्वं जगं** तु समयाणुपेही सुत्तो वि अणुदिट्ठीए समागदो। पढमं णाणं तओ दया अप्पं हिदं सव्वुवरिं मण्णेदि। 'अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पा हु खलु दुद्दमो' परेहिं बंधणेहिं बहेहिं च पमोक्खं कादूण दुक्खादु विमुंचदि। जोंव्वण-जोग-जुवराजो अप्पाणमेव जुज्झाहि। तेणमेव अप्पाणमेव अप्पाणं सुहमेहए। सव्वत्थ आद-विण्णाणाहिंतो अप्पप्पगासो होंज्जदि। वए तिंस-वास-गदे हि सो जुवराजो जुवराजपदादु विप्पमुत्तो महापधाणुगामी होंज्जदि। सो अज्ज दोसहस्स-एगे वि महावीरो महावीरत्तं पदादुं संबोहेंज्जदि आगम-सुत्त-सिद्धंत-वयणेहिं।

> **"जयदु जयदु जयदु जयदु**
> **वीरो जयदु, अदिवीरो जयदु**
> **वड्ढमाणो जयदु, तिसलासुदो जयदु...**
> **सिद्धत्थतणयो जयदु...**
> **महावीरो जयदु, वीदरागो जयदु**
> **वइसाली-कुमारो जयदु, गणगणप्पियो जयदु।।"**

❖❖

मंगलपाठ

> **"मंगलं भगवदो वीरो, मंगलं गोदमो गणी**
> **मंगलं कुंदकुंदादि, जेंण्ह धम्मोंत्थु मंगलं।।"**

अर्थ :— तीर्थंकर वर्धमान-महावीर मंगलस्वरूप हैं। गौतम गणधर (दिव्यध्वनि के सन्देश-वाहक तथा द्वादशांग परमागम के रचयिता) मंगलात्मक हैं। कुन्दकुन्दादि आचार्य परम्परा (अध्यात्म विद्यावंश) मंगलमय है। एतावता विश्व के सम्पूर्ण भव्य आत्माओं को अहिंसा परमोधर्म जैनधर्म मंगलकारक है। **

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्या चन्दनाष्टक

—*विद्यावारिधि डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया*

कुल कुलीन में जन्म ले, धरे धरणि पर पाँव।
हर्षित सारे हो उठे, बाखर-बाखर गाँव।।

दास-प्रथा के ब्याज से, पाया कारावास।
रही जूझती चन्दना, रखकर शुभ विश्वास।।

करे चन्दना पाठ नित, भक्ति-भाव नवकार।
अडिग रही माँ चन्दना, जगे शील-संस्कार।।

चन्दन-सा चारित्र ले, सुरभित किया समाज।
मातु चन्दना बन गई, पूजनीय सरताज।।

नवधा भक्ती-भाव से, माँ ने दिया अहार।
पड़ग गए प्रभु वीर जी, करने को उद्धार।।

दास-प्रथा को भंग कर, किया नारि-सम्मान।
वीर-प्रभू का हो उठा, अग-जग में जयगान।।

भोग-भाव से विरत हो, पूजे चरण-पखार।
वंदनीय हर हाल में, नारी का संसार।।

उत्तम परिणति आर्या, है नारी का रूप।
मातु-वंदना से जगे, निज में आत्म-स्वरूप।।

❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैशालिक महावीर

—श्रीमती रंजना जैन

जैन परम्परा और महावीर:— भारतभूमि पर जैन-संस्कृति एक अतिप्राचीन संस्कृति रही है। इसका प्रभाव वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पर भी पड़ा है। वर्तमान युग में इसके प्रवर्तक **प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ-ऋषभदेव** थे, जिनके ज्येष्ठपुत्र **चक्रवर्ती भरत** के नाम पर इस देश का नाम '**भारतवर्ष**' जाना जाता है। इनकी परम्परा में बाद में **तेईस (23) तीर्थंकर** और हुये हैं, जिनमें **अंतिम-चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान-महावीर** थे। इस बात का समर्थन करते हुये **महर्षि व्यास** द्वारा रचित 'वैदिक पद्मपुराण' में लिखा है— **"अस्मिन्वै भारते वर्षे जन्म वै श्रावके कुले, तपसा युक्तमात्मानं केशोत्पाटनपूर्वकम्।**

तीर्थंकराश्चतुर्विंशत्तथा तैस्तु पुरस्कृतम्, छायाकृतं फणीन्द्रेण ध्यानमात्र-प्रदेशिकम्।।

—(5/14/389-390)

इसमें कहा गया है कि इस भारतवर्ष में चौबीस तीर्थंकर श्रावक (क्षत्रिय) कुल में उत्पन्न हुये, जिन्होंने केशलुंचनपूर्वक अपने आपको तपस्या में समर्पित किया। उनके द्वारा यह निर्ग्रन्थ जैन-परम्परा चली है।

वेदों, पुराणों तथा 'महाभारत', 'श्रीमद्भागवत्' आदि ग्रन्थों में अनेकत्र इन चौबीस तीर्थंकरों के नाम भी उल्लिखित मिले हैं, तथा वहाँ इनकी जीवनचर्या का यशोगान भी अनेक स्थानों पर किया गया है। बौद्धदर्शन के प्रसिद्ध **आचार्य धर्मकीर्ति** भी लिखते हैं— **"ऋषभो वर्धमानश्च तावादौ यस्य स ऋषभवर्धमानादि: दिगम्बराणां शास्ता सर्वज्ञ आप्तश्चेति।"** —*(न्यायबिन्दु, 3/131, पृष्ठ 126)*

अर्थ :— प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं अंतिम तीर्थंकर वर्धमान-पर्यंत चौबीस तीर्थंकर हुए, जो कि स्वयं नग्न दिगम्बर सर्वज्ञ आप्तपुरुष थे।

यह जैन-संस्कृति एवं परम्परा इतिहास के पृष्ठों से कहीं अतिप्राचीन है। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक 'सिन्धु घाटी की सभ्यता' में प्राप्त पुरावशेषों के विस्तृत अध्ययन के उपरान्त अनेकों विद्वानों ने यह सत्यापित किया है कि **यह सभ्यता जैन-तीर्थंकरों के उपासकों की थी।** इसमें प्राप्त सीलों पर जो 'कायोत्सर्ग मुद्रा' में ध्यानस्थ मूर्तियाँ मिलीं हैं, वे इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। इसके अनुसार ईसापूर्व 2500

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से 3000 में जैन-संस्कृति का उल्लेखनीय प्रभाव सिद्ध हो जाता है। अन्य पुरातात्त्विक प्रमाणों से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसापूर्व काल में भी जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों का निर्माण एवं उनकी पूजा होती थी। प्रख्यात विद्वान् श्री **रायकृष्णदास** ने लिखा है कि "ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी में जैन मूर्तियाँ बनतीं थीं।" इसीप्रकार **डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल** के अनुसार "कलिंगाधिपति खारवेल के हाथीगुफा-शिलालेख से भी ज्ञात होता है कि **'कुमारी पर्वत' पर जिन-प्रतिमा का पूजन होता था।"**

इसी जैन-संस्कृति की सुदीर्घ परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान-महावीर थे, जिनके बारे में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान् प्रोफेसर **टी०एन० रामचन्द्रन्** लिखते हैं कि "महावीर ने एक ऐसी साधु-संस्था का निर्माण किया, जिसकी भित्ति पूर्ण अहिंसा पर आधारित थी। उनका 'अहिंसा परमो धर्म:' का सिद्धान्त सारे संसार में अग्नि की तरह व्याप्त हो गया। बाद में इसने आधुनिक भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को अपनी ओर आकर्षित किया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि **अहिंसा के सिद्धान्त पर ही महात्मा गाँधी ने नवीन भारत का निर्माण किया।"**

'वैशाली' और महावीर :— 'वैशाली' भारत का आद्य-गणतन्त्र था। इसमें 'विदेह' का 'वज्जिसंघ' एवं 'वैशाली' का लिच्छिवि संघ' सम्मिलित थे। ये दोनों संघ एक पारस्परिक राजनीतिक-सन्धि के अन्तर्गत एकीकृत हुये थे। इस सन्धि के अनुसार **'विदेह' के गणप्रमुख 'चेटक'** को इस एकीकृत-संघ का प्रमुख चुना गया (चेटकेनाऽप्यष्टा-दशगणराजानो मिलिता:) और इसकी राजधानी बनी 'वैशाली-नगरी।'

उस समय में यह वैशाली नगरी शोभा एवं समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर थी। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार "उस समय वैशाली के भवनों के **तीन वर्ग** थे। इनमें **सात हजार** (7,000) भवन स्वर्णकलशों से सुसज्जित थे, **चौदह हजार** (14,000) मकान रजतकलशों से सुशोभित थे तथा **इक्कीस हजार** (21,000) भवनों पर ताम्रकलश लगे हुये थे। इनमें उच्च, मध्यम और सामान्यवर्ग के लोग अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार रहते थे। उस समय 'वैशाली' की **कुल जनसंख्या** एक लाख अड़सठ हजार थी; तथा सभी नागरिक हर तरह से सुखी व सम्पन्न थे। इस वैशाली नगरी की शोभा एवं समृद्धि को देखकर स्वयं **महात्मा बुद्ध** आश्चर्यचकित हो देखते रह गये थे। उन्होंने 'महापरिनिव्वाण-सुत्त' में लिखा है कि—"हे भिक्षुओ ! लिच्छिवियों की इस 'वैशाली' नगरी को देखो, यह साक्षात् देवताओं की परिषद् के समान दिखाई दे रही है।"

वैशाली चूँकि गणतन्त्र था, अत: वहाँ के लिच्छविगण अपने आपको राजा के समान ही मानते थे— **"एकैक एवं मन्यते अहं राजा अहं राजेति।"** —*(ललितविस्तर 3/23)*

लगभग ऐसी ही स्थिति 'महाभारत युग' में भी रही होगी, अतएव महाभारतकार को लिखना पड़ा—**"गृहे-गृहे हि राजान: स्वस्य स्वस्य प्रियंकरा:।"** —*(महाभारत, सभापर्व, अ०14/2)*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वैशाली' के इसी गौरव के प्रति श्रद्धावनत होते हुये राष्ट्रकवि **रामधारी सिंह 'दिनकर'** ने लिखा है—

"वैशाली 'जन' का प्रतिपालक, 'गण' का आदि-विधाता।
जिसे ढूँढ़ता देश आज, उस 'प्रजातन्त्र' की माता।।
रुको एक क्षण पथिक ! यहाँ मिट्टी को शीश चढ़ाओ।
राज-सिद्धियों की समाधि पर फूल चढ़ाते जाओ।।"

इस समृद्ध वैशाली नगरी में उस समय **आठ प्रकार की परिषदें** थीं — श्रमण परिषद्, क्षत्रिय परिषद, ब्राह्मण परिषद्, गृहपति परिषद्, चातुर्महाराजिक परिषद्, त्रायस्त्रिंश परिषद्, मार परिषद् और ब्रह्म परिषद्।

'वैशाली' गणतन्त्र के संयुक्त संघ में **आठ गण** सम्मिलित थे — भोगवंशी, इक्ष्वाकुवंशी, ज्ञातृवंशी, कौरववंशी, लिच्छविवंशी, उग्रवंशी, विदेह कुल और वज्जिकुल। —ये सभी 'लिच्छवि' थे तथा इनमें 'ज्ञातृवंशी' सर्वप्रमुख थे। 'लच्छवि' होने के कारण ही ये आठों कुल परस्पर संगठित रहे। वैदिक साहित्य एवं बौद्ध-साहित्य में 'लिच्छवियों' को बड़े सम्मानपूर्वक स्मृत किया गया है। 'मनुस्मृति' में लिखा है—

"झल्लो मल्लश्च राजन्याद्, व्रात्याल्लिच्छविरेव च।
नरश्च करणश्चापि, खसो द्रविड़ एव च।। *—(10/12)*

अर्थ :— 'झल्ल' एवं 'मल्ल' सामान्य क्षत्रियों से उत्पन्न हुये; तथा लिच्छवि, नर, करण, खस तथा द्रविड़ —ये 'व्रात्यों' (उच्चकुलीन क्षत्रियों) से उत्पन्न हुये हैं।

'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में 'व्रात्य' की परिभाषा करते हुये लिखा है—

"यस्य पिता-पितामहादि सुरां न पिबेत्, स व्रात्यः।"

अर्थात् जिसके पिता एवं पितामह आदि भी शराब नहीं पीते, वह 'व्रात्य' है।

ऐसे उच्चकुलीन व्रात्यवंशी लिच्छवि क्षत्रियों के गणनायक राजा **चेटक** की राजधानी वैशाली नगरी के निकटस्थ क्षत्रिय 'कुण्डग्राम' नामक नगर था, जो कि वैशाली गणतंत्र का अंग था। वैशाली से उत्खनन से प्राप्त एक मुहर में **'वेसाली नाम कुंडे'** अंकित मिला है। इसी कुण्डग्राम के अधिपति ज्ञातृवंश-शिरोमणि **राजा सिद्धार्थ** की सहधर्मिणी **रानी प्रियकारिणी त्रिशला** ने एक रात्रि के अंतिम प्रहर में सोलह स्वप्न देखे। उन्हें देखकर वे अत्यन्त प्रमुदित हुईं तथा उनका फल जानने की जिज्ञासा अत्यन्त प्रबल हुई। नृप सिद्धार्थ से निवेदन करने पर निमित्तज्ञानी राजा बोले कि "प्रिये ! तुम धन्य हो। वैशाली की धरती एवं तुम्हारे मातृत्व को परमपावन करने तीर्थंकर बालक का तुम्हारी कुक्षि में अवतरण हो चुका है।" यह शुभ घड़ी थी **आषाढ़ शुक्ल षष्ठी, शुक्रवार, 17 जून 599 ईसापूर्व।**

नौ मास, सात दिन एवं बारह घंटे का गर्भवासकाल पूर्ण करने पर **चैत्रशुक्ल**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयोदशी, सोमवार, 27 मार्च 598 ईसापूर्व को वैशाली धन्य हो गयी, जब कुण्डग्राम के 'नन्द्यावर्त' राजप्रासाद में बाल तीर्थंकर का जन्म हुआ। अट्ठारह गणराज्यों के संघ 'वैशाली गणतन्त्र' में सर्वत्र हर्षोल्लास का वातावरण था, तथा उसके अध्यक्ष **राजा चेटक** के भी हर्ष का पारावार न था। भला हो भी क्यों न; वे 'नाना' जो बने थे। इसप्रकार सम्पूर्ण वैशाली के दुलारे इस बालक की 'वैशालिक' संज्ञा अन्वर्थक हुई—

"विशाला जननी यस्य, विशालं कुलमेव च।
विशालं वचनं चास्य, तेन वैशालिको जिन:।।"

उनके जन्म लेते ही वैशाली की सर्वविध ऐश्वर्यवृद्धि होने लगी थी, अत: **जन्म के दसवें दिन** इनके पिताश्री राजा सिद्धार्थ ने अत्यन्त चाव से इनका नामकरण किया— **'वर्द्धमान'**। इनका कुल **नाथ**, जाति-**लिच्छवि**, वंश-**इक्ष्वाकु** एवं गोत्र-**कश्यप** था।

दूज के चन्द्रमा की भाँति वृद्धिंगत बालक वर्द्धमान अपने बालसखा मित्रों **चलधर, काकधर** और **पक्षधर** के साथ नानाविध खेल खेलते हुये क्रमश: आठ वर्ष के हुये। इसी सुकुमार अवस्था में ही उन्होंने पाँच अणुव्रतों को अंगीकार किया। इनके अन्य नामान्तर भी प्रसिद्ध हुये; यथा—**'वीर'**, विषधर-रूपधारी देव को क्रीड़ा-मात्र में निर्मद कर देने से **'अतिवीर'**, **संजयंत** और **विजयंत** नामक दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों की तात्त्विक जिज्ञासा का इनकी प्रशान्त-मुद्रा के अवलोकन-मात्र से समाधान होने से **'सन्मति'** तथा दुर्निवार कामविकार को कुमारावस्था में ही जीतने से 'महावीर' कहलाये।

इनके जन्म के समय 'नन्द्यावर्त राजप्रासाद' पर 'सिंह' चिह्नांकित ध्वजा फहरा रही थी, अत: इनका चिह्न 'सिंह' प्रसिद्ध हुआ।

युवा राजकुमार वर्द्धमान का चिंतन एवं संभाषण उनके पद की प्रतिष्ठा के अनुरूप था। 'वैशाली अभिनंदन-ग्रंथ' (पृ०113) पर मुद्रित यह संवाद मननीय है—

वर्द्धमान — "सेनापति सिंह ! आजकल तुम बहुत व्यस्त रहते हो।"

सिंह — "हे निगण्ठनातपुत्त ! मैं कितना भी व्यस्त रहूँ, आपके उपदेश मुझे चिंता से मुक्त करते रहेंगे।"

वर्द्धमान — "सेनापति सिंह ! सुनो, मैं नहीं, तुम्हारी आंतरिक शक्ति ही तुम्हें मुक्त करेगी। जीव स्वावलम्बी और स्वतंत्र है। वह अनन्त चतुष्टय से परिपूर्ण है और अनंत सामर्थ्यवान् है। परंतु वह अपनी इस अनंत सामर्थ्य को स्वयं ही नहीं पहिचानता है। जिस दिन पहिचान जाता है, उसी दिन से क्लेशमय बंधनों से विमुक्त हो जाता है। इसे पहिचानो।"

माता-पिता ने राजकुमार वर्द्धमान के युवा होने पर उनके विवाह के उपक्रम प्रारंभ किये, किन्तु वर्द्धमान का मन वैराग्यपथ पर अनुरक्त था; अत: उन्होंने एक दिन अपने पूर्व-भवों का स्मरण करते हुये वैराग्य अंगीकार कर लिया तथा **569 ईसापूर्व की मंगसिर**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्णदशमी, सोमवार, 29 दिसम्बर के दिन 'हस्त' एवं 'उत्तरा' नक्षत्रों के मध्यवर्ती समय में उन्होंने संसार त्यागकर निर्ग्रन्थ मुनि-दीक्षा अंगीकार की। और फिर वे **बारह वर्ष पाँच माह, पन्द्रह दिनों** तक घोर तपश्चर्या करते रहे। तदुपरान्त उन्हें **26 अप्रैल, 557 ईसापूर्व को बैसाख शुक्ल दसमी, रविवार के दिन उत्तरहस्ता नक्षत्र** में कैवल्य की प्राप्ति हुई, और वे 'अरिहन्त' (जीवन्मुक्त सकल परमात्मा) बन गये।

इसके बाद **इन्द्रभूति गौतम** नामक प्रकाण्ड ब्राह्मण विद्वान् को प्रभु महावीर के प्रधान शिष्य (गणधर) बनने का सौभाग्य मिला। फिर महावीर स्वामी ने 29 वर्ष, 5 माह, 20 दिनों तक काशी, कश्मीर, कुरु, मगध, कोसल, भद्र, चेदि, दशार्ण, बंग, अंग, आंध्र, उशीनर, मलय, विदर्भ एवं गौड़ आदि देशों में संघ-सहित धर्मोपदेश किया और अनेकों जीवों को कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

अन्त में आत्मकल्याणपूर्वक विश्व-कल्याण का मांगलिक कार्य अत्यन्त गरिमापूर्वक सम्पादित करते हुये वे **527 ईसापूर्व को कार्तिक मास की अमावस्या को 15 अक्तूबर मंगलवार** के दिन विदेहमुक्त होकर परिनिर्वाण को प्राप्त हुये।

उनका निर्वाणोत्सव वैशाली के प्रजातंत्रों ने दीपोत्सव करके मनाया था, अत: सभी से 'दीपावली' का पर्व प्रचलित हुआ।

'भगवान् महावीर महात्मा बुद्ध के समक्ष थे' —यह बात स्वयं महात्मा बुद्ध ने 'दीघनिकाय' (प्रथम भाग, पृ० 48) नामक ग्रंथ में स्वीकार की है। वे लिखते हैं कि "निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र तीर्थंकर महावीर संघ के नेता हैं, गणी हैं, गणाचार्य हैं, सर्वज्ञ हैं, तीर्थंकर हैं, साधुजनों के द्वारा पूजनीय हैं, अनुभवशील हैं, बहुत दिनों से साधु चर्या करते हैं और अधिक वय: (उम्र) वाले हैं।"

इस कथन से स्पष्ट है कि **भगवान् महावीर महात्मा बुद्ध से गुणों एवं आयु दोनों में श्रेष्ठ थे।**

सन्देश

भगवान् महावीर ने जैनधर्म के चिरन्तन-सिद्धान्तों को सरलतापूर्वक लोकभाषा में समझाया। उन्होंने पारस्परिक सौहार्द एवं सहअस्तित्व की भावना से 'अहिंसा' सिद्धान्त को सर्वाधिक गरिमा के साथ प्रस्तुत किया, तो वैचारिक सहिष्णुता को सिखाने के लिए 'अनेकान्त' जैसे सिद्धान्त का प्रवर्तन किया। वाणी की सहिष्णुता का पाठ उन्होंने 'स्याद्वाद' सिद्धान्त के द्वारा समझाया, तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से अनुप्राणित होकर उन्होंने 'अपरिग्रहवाद' का सिद्धान्त दिया।

लोकतंत्र का मूलमंत्र महावीर के संदेश का प्रधानतत्त्व था कि "प्रत्येक आत्मा समान है, कोई छोटी या बड़ी नहीं है। जो भी पुरुषार्थ करके अपने आत्मिक गुणों का पूर्ण विकास कर ले, 'परमात्मा' बन सकता है। उनकी 'अहिंसा' की पराकाष्ठा को तो सारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व ने स्वीकार किया है; तथा आज भारत यदि स्वतन्त्र है, तो महावीर के इसी सिद्धान्त के आधार पर हो सका है। भारत गणराज्य के **संविधान के मुखपृष्ठ पर** तीर्थंकर महावीर का चित्र अंकित है और उसके नीचे लिखा है कि **"भगवान् महावीर के अहिंसा सिद्धान्त के आधार पर ही इस देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है।"** आज वैशाली के वर्द्धमान के जीवन के आदर्शों एवं सन्देशों को व्यक्तित्व-निर्माण एवं राष्ट्र-हित के लिए जीवन में उतारने की अपेक्षा है।

महावीर के बारे में यह भ्रम फैलाया गया कि वे ब्राह्मणों या वैदिक धर्म के विरोधी थे। जबकि महावीर के प्रधान शिष्य का पद 'इन्द्रभूति गौतम' नामक ब्राह्मण वैदिक विद्वान् को मिला था। तथा महावीर के उपदेशों में जैन होते हुए भी आम्नाय-विरुद्ध उपदेश करनेवाले 'मस्करी' जैसे साधुओं की उन्होंने निंदा नहीं की थी। महावीर व्यक्तिवादी या जातिविरोधी नहीं थे। वे सिद्धान्तवादी एवं अनाचार-विरोधी थे। तथा उन्होंने उपदेश के पूर्व अपने जीवन में उन सिद्धान्तों को उतारा था। इसी लोकोत्तर दृष्टि ने उन्हें 'नर' से 'नारायण' (तीर्थंकर) की गरिमा तक पहुँचाया।

'वैशालिक' वर्द्धमान महावीर के सन्देशों एवं आदर्शों की अनुकृति बनने की पावन प्रेरणा एवं संकल्प के साथ उनकी 2600वीं पावन जन्म-जयन्ती पर उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए कृतज्ञ विनयांजलि अर्पित है। ❖❖

आप्त भगवान् महावीर

"यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहित।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटनपरो भानुरिव यो,
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।"

—*(कविवर भागचन्द्र जी विरचित 'महावीराष्टकस्तोत्र', पद्य 1)*

अर्थ :— जिनके चैतन्य में दर्पण की भाँति समस्त चेतन एवं अचेतन द्रव्य पर्यायों-सहित उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से शोभायमान निरन्तर युगपत् प्रतिभासित होते हैं। जो लोक के साक्षीभूत हैं (सर्वज्ञ) तथा जैसे सूर्य के प्रकाश में लोगों को जगत् के चराचर पदार्थ प्रकट ज्ञात होते हैं, उसी तरह जिनके ज्ञानरूपी प्रकाश में लोग के समस्त पदार्थ प्रकटित होते हैं —ऐसे श्री महावीर स्वामी मेरे नयनपथगामी हों अर्थात् मुझे साक्षात् दृष्टिगोचर हों।

चूँकि वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशिता —ये तीनों गुण आप्त के माने गये हैं, अतः कविवर भागचन्द्र जी ने यहाँ भगवान् महावीर की आप्त के रूप में वन्दना की है, यह स्पष्ट है। **

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासती चन्दना

—श्रीमती नीतू जैन

"निर्वर्ण्य तूर्णमागत्य प्रणिपत्य जिनेश्वरम्।
चन्दना राजकन्यानां षष्ठादीक्षामुपेयुषी।।"

—(आचार्य दामनन्दि, पुराणसारसंग्रह 2/5/25, पृ० 202)

अर्थ :— चेटक राजा की छठवीं पुत्री राजकन्या चन्दना ने भगवान् महावीर को प्रणाम कर तथा शीघ्र ही संसार से विरक्त होकर दीक्षा ले ली और वह श्रमणा बन गई।

घर-घर में चन्दना की कथा, अन्यथा सब व्यथा ही व्यथा।
चन्दना की करो वन्दना, छूटेंगे भव-बन्धना।।

आज से लगभग 2600 वर्ष पुरानी बात है। उस समय वैशाली के गणप्रमुख राजा चेटक थे। उनकी पट्टरानी का नाम श्रीमती सुभद्रा था। राजा चेटक और महारानी सुभद्रा दोनों ही अत्यन्त गुणवान थे। वे प्रशंसनीय राजभक्त होने के साथ ही उत्तम जिनेन्द्र-भक्त भी थे।[1]

एक बार की बात है कि उनकी सबसे छोटी पुत्री चन्दनबाला —जिसे प्यार से चन्दना भी कहते थे — अपनी सखियों के साथ राजोद्यान में विहार करने गई। वह अत्यन्त रूपवती थी। उसी समय एक विद्याधर अपने विमान में बैठकर उद्यान के ऊपर से गुजर रहा था। वह चन्दना के अनिन्द्य सौन्दर्य पर मोहित हो गया और उसने अत्यन्त कामविह्वल होकर उसका अपहरण कर लिया। वह उसे लेकर वहाँ से भाग निकला।

असहाय चन्दना ने कामी विद्याधर के चंगुल में फँसकर करुण-क्रन्दन तो बहुत किया, पर वह अपने शीलधर्म पर भी अत्यन्त दृढ़ थी। बस, अब क्या था? विद्याधर का थोथा पौरुष तुरन्त हवा में उड़ गया और वह कामातुर से चिन्तातुर बन गया। उसने चन्दना को वहीं भयानक वन में उतार दिया और स्वयं अपने प्राण बचाकर वहाँ से भाग गया।

महासती चन्दना उस भयानक वन में भी धैर्यपूर्वक पंचपरमेष्ठी का स्मरण करती हुई अपने अशुभ कर्मों को काट रही थी। किन्तु उसी समय वहाँ कहीं से एक भील आ निकला। उसने इस अकेली सुन्दरी को देखकर सोचा— "यदि इसे मैं अपने सरदार को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेंट कर दूँ, तो मुझे बहुत सारा पुरस्कार प्राप्त होगा।" और वह इसे अपने सरदार को भेंट में देने के लिए ले गया।

भील सरदार ने ऐसी सर्वांगसुन्दरी कन्या कभी न देखी थी। वह इसे पाकर अपने मन में फूला नहीं समा रहा था और नानाप्रकार की कल्पनाओं में तैरता जा रहा था। उसने अनेकानेक उपायों से चन्दना के मन को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता, पर चन्दना तो पंचपरमेष्ठी के स्मरणपूर्वक अपने शीलधर्म पर अत्यन्त अडिग थी। वह जानती थी कि शरीर तो नाशवान ही है और एक दिन नष्ट होगा ही, पर शीलधर्म की प्राप्ति महादुर्लभ है। अत: वह बाह्य कष्टों से चिन्तित नहीं थी, अपितु शीलधर्म की रक्षा-सुरक्षा में ही सतत संलग्न थी। परिणामस्वरूप भीलराज भी सभी उपाय करके हार गया और उसने चन्दना को दासों के एक व्यापारी को बेच दिया।

वह व्यापारी दासों के झुण्ड के साथ चन्दना को कौशाम्बी के बाजार में बेचने के लिए ले गया। उसे आशा थी कि इस अतीव सुकुमारी नवयुवती का बाजार में बहुत अधिक मूल्य मिलेगा। महासती धर्मात्मा चन्दना इन सभी कष्टों को अपना पूर्वकृत अशुभकर्म समझकर धैर्यपूर्वक सहन कर रही थी। उसके हृदय में निरन्तर पंचपरमेष्ठी का स्मरण बना रहता था।

संयोग की बात, जिस समय चन्दना कौशाम्बी के बाजार में बिकने के लिये उपस्थित थी, उसी समय उधर से धर्मानुरागी सेठ श्री वृषभदत्त गुजरे। वे जिनालय से जिनेन्द्रदेव की पूजा करके लौट रहे थे। उनकी दृष्टि जैसे ही चन्दना पर पड़ी, वे सोचने लगे— "अवश्य ही यह कन्या किसी सम्भ्रान्त कुल की है, पर दुर्दैव से इन नरपिशाचों के हाथों में पड़ गई है।" और वे व्यापारी को यथेच्छ धन देकर उसे अपने साथ ले आये। उन्होंने उसे अपनी धर्मपुत्री मान लिया।

घर पहुँचकर सेठ वृषभदत्त ने अपनी पत्नी सुभद्रा से कहा—"हे प्रिये ! दुर्भाग्यवश हमारे कोई सन्तान नहीं थी, परन्तु आज हमारे भाग्योदय से यह सुलक्षणा कन्या हमको प्राप्त हो गई है। इसे अपनी पुत्री ही समझो और इसे किसी प्रकार का कष्ट न हो — इसका पूरा ध्यान रखो।"

सेठ वृषभदत्त चन्दना से पुत्रीवत् व्यवहार करते थे, परन्तु सेठानी सुभद्रा उनके इस व्यवहार को कपट-व्यवहार समझती थी। वह सोचती थी कि सेठजी इस युवती को अपनी पत्नी बनाने के लिए लाये हैं। इसके रहते मेरी स्थिति दयनीय हो जाएगी और मेरा पद, मान, अधिकार आदि सब कुछ इसको मिल जाएगा। मेरे साथ दासीवत् व्यवहार होने लगेगा, इत्यादि। अत: वह ईर्ष्या के कारण चन्दना से दिन-रात जलने लगी और उसको दु:खी करने की चेष्टा करने लगी।

एक बार सेठ वृषभदत्त अपने किसी व्यापारिक कार्यवश परदेश गये। यद्यपि वे जाते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय भी चन्दना का ध्यान रखने के लिए कहकर गये थे, परन्तु सेठानी सुभद्रा को तो मानों सौतिया डाह ही निकालने का सुन्दर अवसर मिल गया। उसने कैंची से चन्दना के केश काट दिये और उसे मिट्टी के सकोरे में कांजीमिश्रित कोदों का भात खाने के लिए देना प्रारम्भ कर दिया। वह चन्दना का सदैव लोहे की साँकल से भी बाँधकर रखने लगी।

चन्दना तो चन्दना ही थी। इतने अपार कष्टों को भी वह अपने अशुभ कर्मों का अनिवार्य फल मानकर शान्ति एवं धैर्य से सहन किया करती थी।

एक दिन इसी कौशाम्बी नगरी में तीर्थंकर वर्धमान महावीर — जो उस समय मुनि-अवस्था में थे — आहार के लिए पधारे। जब वे सेठ वृषभदत्त के घर के सामने आये, तो आदर्श श्राविका चन्दना का रोम-रोम हर्ष से भर उठा। वह सब-कुछ भूल गई और भक्ति-विभोर होकर आहार-हेतु वर्धमान महावीर के पड़गाहन के लिए आगे बढ़ गई।

देखो भक्ति की शक्ति ! चन्दना का मुखमण्डल नूतन कमल-पुष्प के समान खिल उठा, लोहे की बेड़ियाँ स्वयंमेव टूटकर दूर जा पड़ी, केशविहीन सिर पर भ्रमर-सदृश काले केश लहराने लगे, मिट्टी का सकोरा स्वर्णपात्र बन गया और कोदों का भात सुरभित शालि-चावलों का भात बन गया। चन्दना के जीर्ण-शीर्ण वस्त्र भी बहुमूल्य वस्त्र बन गये।

आदर्श श्राविका महासती चन्दना ने [2]**नवधाभक्तिपूर्वक** वर्धमान महावीर को पड़गाह लिया और विधिपूर्वक निरन्तराय आहार दे दिया। चारों ओर जय-जयकार होने लगी। देवों ने भी चन्दना के इस महान् पुण्यदान की सराहना की। आकाश में देवदुन्दुभि बजने लगी। शीतल मन्द सुगन्धित वायु प्रवाहित हुई। सुगन्धित-जल की वृष्टि भी हुई।

चन्दना अब न हतभाग्य थी और न ही दासी। उसके महान् भाग्य की गाथा आज सम्पूर्ण कौशाम्बी में घर-घर में गाई जा रही थी। देखो, वर्धमान महावीर ने राजमहलों के राजसी आहार को छोड़कर इस पवित्रात्मा श्राविका के हाथों आहार ग्रहण किया। धन्य है चन्दना ! धन्य है चन्दना !! चन्दना की वन्दना ! चन्दना की वन्दना!!

चन्दना की यह गौरव-गाथा कौशाम्बी की पटरानी मृगावती के कानों तक पहुँच गई। वह अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक उस महाभाग्यवती महिला से मिलने सेठ वृषभदत्त के घर आई। मिलने पर वह आश्चर्य और हर्ष से भर उठी, क्योंकि उसने देखा कि अरे ! यह तो उसकी छोटी बहिन चन्दनबाला है। दोनों बहिनें गले लगकर मिलीं और बड़ी देर तक अपने दुःख-सुख के आँसू बहाती रहीं। अन्त में मृगावती उसे अपने साथ ले गई। उसे माता-पिता (महारानी सुभद्रा और महाराजा चेटक) के पास भी भेज दिया, परन्तु उसका मन भोगों से विरक्त हो चुका था; अत: उसने थोड़े दिन बाद ही तीर्थंकर वर्धमान महावीर के समवशरण में आर्यिका दीक्षा ले ली।

चन्दना का जीवन अब चन्दन की भाँति सुरभित हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ-सूची

1. (क) "सिन्ध्वाढ्यविषये भूभृद् वैशालीनगरेऽभवत्।
चेटकाख्योऽतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः।।"

—(आचार्य गुणभद्र, उत्तरपुराण 75/3)

अर्थ :— सिन्ध्वाढ्य (नदियों से घिरा हुआ प्रदेश) वैशाली राजधानी नगर में महारानी श्री सुभद्रा पट्टरानी सहित महाराजा गणतंत्र का अध्यक्ष श्रीमान् चेटक अतिशय सुप्रसिद्ध, विनीत एवं राजभक्त ही नहीं, अपितु जिनेन्द्रभक्त भी था।

(ख) "सिन्धुदेशे विशालाख्यपत्तने चेटको नृपः।
श्रीमज्जिनेन्द्रपादाब्जसेवनैकमधुव्रतः।।" *—(आराधनाकथाकोष 4, पृ० 228)*

अर्थ :— सिन्धु (नदियों से घिरा हुआ) देश के वैशाली नगर में चेटक नाम का राजा था, जो निश्चल भाव से श्री जिनेन्द्र के चरणकमलों का अनन्य सेवक था।

2. "पडिगहमुच्चट्ठाणं पादोदयमच्चणं पणामं च।
मण-वयण-कायसुद्धी एसणसुद्धि णवविहं पुण्णं।।"

अर्थात् 1. पड़गाहना, 2. उच्चस्थान देना, 3. पाद-प्रक्षालन करना, 4. पूजन, 5. प्रणाम, 6. मनशुद्धि, 7. वचनशुद्धि, 8. कायशुद्धि, 9. एषण/आहारशुद्धि —ये नवपुण्य कहलाते हैं। ❖❖

धर्म का मंगलमय स्वरूप

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।"

—(क्रियाकलाप, प्रतिक्रमणसूत्र, पृष्ठ 260)

भावार्थ :— धर्म परममंगल एवं उत्कृष्ट है, कौन-सा धर्म? अहिंसा परमधर्म ! संयम धर्म ! तप धर्म ! (इच्छा-निरोधस्तपः) जिस भव्यात्मा का मन उक्त धर्म में सदा तल्लीन रहता है, उसे देवता (उत्कृष्ट मनुष्य) भी नमस्कार करते हैं।

जैन अहिंसा के लिये 'समता धर्म' को आवश्यक समझते हैं, 'समता' वह धर्म है जिसका कोई सीमा बंध नहीं है। अतः अहिंसावाद धर्म का प्रवेशद्वार है। **

बुद्ध-उवाच

महात्मा बुद्ध ने कहा था— "भिक्षुओ ! मैंने एक प्राचीन राह देखी है, एक ऐसा प्राचीन मार्ग जो कि प्राचीन काल के अरिहन्तों द्वारा आचरण किया गया था। मैं उसी पर चला और चलते हुए मुझे कई तत्त्वों का रहस्य मिला। भिक्षुओ ! प्राचीनकाल में जो भी अर्हन्त तथा बुद्ध हुए थे, उनके भी ऐसे ही दो मुख्य अनुयायी थे, जैसे मेरे अनुयायी सारिपुत्र और मोग्गलायन हैं।" **

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वैशाली' और 'राजगृह'

—*डॉ० सुदीप जैन*

गणतन्त्र की जन्मस्थली 'वैशाली' और भगवान् महावीर

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की इस कालजयी कविता में एक चिरन्तन ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन हुआ है कि इस देश में गणतन्त्र की प्रणाली का जन्म वैशाली नगरी में हुआ था—

"वैशाली 'जन' का प्रतिपालक, 'गण' का आदि-विधाता।
जिसे ढूँढ़ता देश आज उस, प्रजातन्त्र की माता।।"

इससे स्पष्ट है कि कविवर दिनकर जी की दृष्टि में वैशाली 'प्रजातन्त्र की माता' थी, और उसी की कोख में गणतन्त्र का जन्म इस भारतवर्ष में हुआ था। वस्तुत: इस गणतन्त्र का नाम 'वज्जिसंघ' या 'वज्जि गणतन्त्र' था, और इसकी राजधानी वैशाली नगरी थी। वैशाली की प्रधानता के कारण ही इसे 'वैशाली गणतन्त्र' भी कहा जाने लगा।

'वज्जिरट्ठ' या 'वज्जिगणतन्त्र' के अन्तर्गत तत्कालीन बंगप्रदेश, मगधप्रदेश एवं चेरपाद प्रदेश आते थे; जिन्हें आज हम बंग्लादेश, पश्चिमी बंगाल प्रदेश, उत्तरी उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार प्रदेश के रूप में जानते हैं। काव्यशिक्षाकार ने 'वज्जि' शब्द का परिचय **'वृजिनं जिन:'** *(काव्यशिक्षा, 29)* कहकर दिया है। 'वृ' वर्जने धातु से निष्पन्न इस 'वज्जि' शब्द का अर्थ है कि जो अंतत: शरीर का भी स्वयं त्याग कर देते थे, ऐसे लोग। इसप्रकार 'वज्जि' शब्द 'वृजिन:' का रूपान्तर सिद्ध होता है। 'चेर' या 'चेल' धातु भी गतिसूचक है, इससे इससे 'चेरपाद' शब्द की 'वृजिन:' का प्राय: समानार्थक सिद्ध होता है।

इन वज्जियों के सात अपरिहार्य नियम थे, जिनका उल्लेख बौद्ध-ग्रंथों में निम्नानुसार प्राप्त होता है— **'वज्जिनं सत्त अपरिहानिया धम्मा।'**

वे हैं—

1. वज्जी बार-बार बैठक करते हैं।
2. वज्जी एक होकर बैठक करते हैं, एक होकर उत्थान करते हैं, एक होकर कर्त्तव्य करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. वज्जी अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त नहीं करते और प्रज्ञप्त का उच्छेद नहीं करते हैं।
4. वज्जियों के जो वयोवृद्ध हैं, उनका वे सत्कार करते हैं, गुरुकार करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं, उनकी सुनने योग्य बात मानते हैं।
5. जो कुल-स्त्रियाँ हैं, कुल-कुमारियाँ हैं, उन्हें वे जबरदस्ती नहीं रोकते हैं, न छीनते, न बसाते हैं।
6. वज्जियों के भीतर-बाहर जो चैत्य हैं, वे उनका सत्कार करते हैं, उनके लिये किये दान का, पहले की गई धर्मानुसार पूजा का लोप नहीं करते।
7. वज्जी लोग अर्हतों की अच्छी तरह धर्मानुसार रक्षा करते हैं, ताकि भविष्य में अर्हत राज्य में आयें और सुखपूर्वक विहार करें।

'वज्जि गणतन्त्र' की राजधानी 'वैशाली' नगरी में विद्यमान गणतान्त्रिक प्रणाली के वातावरण में 'क्षत्रियकुण्डग्राम' में जैन-परम्परा के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म आज से 2600वर्ष पूर्व हुआ था। यहाँ के क्षत्रिय इक्ष्वाकुवंशीय थे। इन्हीं के पूर्वजों ने इस 'वैशाली' नगरी का निर्माण अतिप्राचीन काल में कराया था। 'बाल्मीकि रामायण' के अनुसार राजा 'इक्ष्वाकु' के पुत्र 'विशाल' ने इस नगरी का निर्माण कराया था। वहाँ इसका उल्लेख 'विशाला' या 'उत्तमपुरी' के रूप में प्राप्त होता है—

"इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः।
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः।।
... तेन चासीदिहस्थाने विशालेति पुरी कृता।।"

—(बाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग 47, श्लोक 11-12)

अर्थ :— 'इक्ष्वाकु' नामक राजा के परमप्रतापी एवं परमधार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ। 'अलम्बुषा' नामक रानी की कुक्षि उत्पन्न यह पुत्र 'विशाल' नाम से विख्यात हुआ। उसी के द्वारा इस स्थान पर 'विशाला' नाम की पुरी (नगरी) का निर्माण कराया गया।

भागवतकार ने भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है—

"विशालो वंशकृद् राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम्।" *—(भागवत, 9/2/33)*

उक्त विवरण के अनुसार यह नगरी श्रीराम से भी प्राचीन है, जिसे आज के तथाकथित इतिहासवेत्ता चौथी-पाँचवीं शती ईसापूर्व में निर्मित बताते हैं।

पाँच वर्षों तक निरन्तर वैशाली के बारे में अध्ययन-अनुसंधान करनेवाले आई०सी०एस० अधिकारी श्री **जगदीश चन्द्र माथुर** लिखते हैं—

"बाल्मीकि रामायण में ही उल्लेख मिलता है कि ऋषि विश्वामित्र के साथ जनकपुरी (मिथिला) जाते समय राम और लक्ष्मण ने दूर से वैशाली के उन्नत शिखरों और भव्य भवनों को देखा था।" *—(वैशाली दिग्दर्शन, होम एज टू वैशाली, पृष्ठ 290)*

उन्होंने यह भी लिखा है कि "लिच्छिवि एक तेजस्वी क्षत्रिय जाति थी, जिसने वैशाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में ईसा से लगभग 700-800 वर्ष पूर्व जनतन्त्र-प्रणाली को चलाया (जन्म दिया) था।"

—(वही)

ऐतिहासिक महापुरुषों के रूप में निर्विवादरूप से मान्य तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के काल में भी 'वैशाली' नगरी का अस्तित्व उल्लिखित है—!

"वइसालीए पुरीए सिरिपासजिणेस-सासणणाहो।
हेहयकुलसंभूदो चेडगणामा णिवो आसि।।"

—*(उपदेशमाला, श्लोक 92)*

अर्थ :— शासननायक पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के प्रचारक्षेत्र की केन्द्रभूत 'वैशाली' नामक नगरी में क्षत्रियकुलोत्पन्न 'चेटक' नामक राजा था।

इसी तथ्य को आचार्य गुणभद्र ने निम्नानुसार व्यक्त किया है—

"सिन्ध्वाढ्यविषये भूभृद् वैशालीनगरेऽभवत्।
चेटकाख्योऽतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः।।"

—*(आचार्य गुणभद्र, उत्तरपुराण 75/3)*

अर्थ :— सिन्ध्वाढ्य (नदियों से घिरे हुये क्षेत्र) प्रदेश की राजधानी वैशाली नगर में महारानी श्री सुभद्रा पट्टरानी सहित गणतंत्र के अध्यक्ष श्रीमान् चेटक नामक महाराजा अतिशय सुप्रसिद्ध, विनीत एवं राजभक्त ही नहीं, अपितु जिनेन्द्र का भी परमभक्त राजा रहता था।

वैशाली के बाहर कुण्डग्राम नामक नगर था। इसी में ज्ञातृकुल-प्रमुख राजा सिद्धार्थ के घर वर्द्धमान महावीर का जन्म हुआ था। आचार्य पूज्यपाद देवनंदि इस विषय में लिखते है:— **'सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे।'**

—*(आचार्य पूज्यपाद, निर्वाणभक्ति, पृ० 4)*

"इतश्च वसुधावध्वा मौलिमाणिक्य-सन्निभा।
वैशालीति श्रीविशालानगरी स्वर्गगरीयसी।।
आखण्डल इवाखण्ड-शासनः पृथिवीपतिः।
चेटीकृतारिभूपालस्तत्र चेटक इत्यभूत्।।"

—*(त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित्र 10/184-185)*

अर्थ :— वैशाली नगरी पृथ्वीरूपी वधु के मुकुट में लगे हुए माणिक्य के जैसी श्री-सम्पन्न थी। स्वर्ग से भी अधिक उसकी महत्ता थी। वहाँ का राजा **चेटक** था। उसकी आज्ञा इन्द्र की आज्ञा के समान प्रजानन मानते थे और शत्रुजन जिसके प्रताप से **चेटी** अर्थात् **दास** के जैसे बने हुए अभिभूत रहते थे।

इसी तथ्य की पुष्टि इस पुराणवचन से भी होती है—

"सधुक्ते सिन्धवाढ्यदेशे वै विशाला नगरी मता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेटकाख्य: पतिस्तस्य सुभद्रा महिषी मता।।" —*(विमलपुराण)*

अर्थ :— नदियों से घिर हुए देश में 'विशाला' नामकी नगरी थी, उसमें 'चेटक' नामका राजा था तथा उसकी पटरानी का नाम 'सुभद्रा' था।

सिद्धार्थ भरतक्षेत्र में स्थित विदेह प्रदेश के अन्तर्गत 'क्षत्रिय कुण्डपुर' नामक नगर में राज्य करते थे। उनकी सहधर्मिणी प्रियकारिणी त्रिशला के गर्भ में वर्द्धमान आये।

इस 'वैशाली' में उत्पन्न होने के कारण भगवान् महावीर का एक नाम 'वैशालिक' भी पड़ गया था।

'वैशाली' की महत्ता और भगवान महावीर के सम्बन्ध पूर्व राष्ट्रपति **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद** के वचन मननीय हैं—

"वैशाली का इतिहास केवल राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है। **यह चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की जन्मस्थली भी है।"**

"वैशाली के इतिहास और वैधानिक कार्य-प्रणाली से हम बहुत सीख सकते हैं, पर हमारी जानकारी इतनी कम है कि उस ओर ध्यान तक नहीं जाता।"

—**डॉ० राजेन्द्रप्रसाद** *(भूतपूर्व राष्ट्रपति)*

भारत के पुरातत्त्व विभाग के द्वारा वैशाली (आधुनिक बसाढ़ — जिला मुजफ्फरपुर) की गई खुदाई में एक मोहर प्राप्त हुई है, जिसमें **'वैशाली'** के साथ **'कुण्ड'** शब्द भी जुड़ा है— **'वेसाली' नाम कुंडे कुमारामात्याधिकरणस्स"** —*(होम टू वैशाली, पृष्ठ 249)*

वैशाली नगर अतीव सुन्दर और सुव्यवस्थित था। बौद्ध-ग्रंथों में इसका वर्णन इसप्रकार मिलता है :— **"वेसालिनगरं गावुत गावुतंतरे तीहि पकारेहि परिक्खित्तं तीसु ठानेसु गोपुरट्टालकोट्ठक-युत्तं।"** —*(जातकट्ठकथा पण्णजातक, पृ० 366)*

वैशाली नगर में दो-दो मील पर (गावुत-गव्यूति) एक-एक परकोटा बना था और उसमें तीन स्थानों पर अट्टालिकाओं-सहित प्रवेशद्वार बने हुए थे।

वैशाली नगर का वर्णन प्राचीन ग्रंथों में जैसा प्राप्त होता है, उसके अनुसार इस नगर के तीन भाग थे। पहिले भाग में सोने के गुम्बदवाले 7000 प्रासाद थे, द्वितीय भाग में चाँदी के गुम्बदवाले 14000 भवन थे तथा तृतीय भाग में ताँबे के गुम्बदवाले 21000 मकान थे। इनमें अपनी-अपनी स्थिति (स्तर) के अनुरूप लोग रहते थे। इन 42000 भवनों वाले वैशाली नगर की जनसंख्या 1,68,000 थी। इसमें 7707 व्यक्ति संसद-सदस्य थे। संसद की आठ प्रकार की परिषदें थीं—

अट्ठ खो इमा आनंद ! परिसा........... ।

अर्थ:— हे आनन्द ! परिषद् आठ प्रकार की होती है :—

1. क्षत्रिय-परिषद्, 2. श्रमण-परिषद्, 3. ब्राह्मण-परिषद्, 4. गृहपति-परिषद्, 5. चातुर्महाराजिक-परिषद्, 6. त्रायस्त्रिंश-परिषद्, 7. मार-परिषद्, 8. ब्रह्म-परिषद्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस नगर में रहनेवाले सभी लोग अपने को राजा-तुल्य मानते थे :—

"एकैक एवं मन्यते अहं राजा अहं राजेति।"

—*(ललितविस्तर, 3/23, पृष्ठ 15)*

बौद्ध-ग्रंथों में वैशाली को 'महानगर' कहा गया है—

'वैशालीं महानगरीमनुप्राप्तोऽभूत्।'

—*(ललितविस्तर, 16/15, पृ० 174)*

वैशालिक महावीर की बौद्ध-ग्रंथों में बहुत महिमा गायी गई है—

"अयं देव निगंठो नातपुत्तो संघी चेव गणी च गणाचारियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसंमतो बहुजनस्स रत्तस्सू चिरपव्वजितो अद्धगत वयो अनुपत्ताति।"

—*(दीघनिकाय, भाग 1, पृ० 48-49)*

अजातशत्रु के सम्मुख उसके अमात्य ने महावीर के संबंध में महात्मा बुद्ध से कहा है — हे देव! यह निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र संघ और गण के स्वामी हैं। गण के आचार्य, ज्ञानी और यशस्वी तीर्थंकर हैं। साधुजनों के पूज्य और बहुत लोगों के श्रद्धास्पद हैं। ये चिरदीक्षित और अवस्था में प्रौढ़ हैं।

इतिहास-विख्यात 'लिच्छवि वंश'

वर्द्धमान महावीर का वंश 'लिच्छिवी वंश' था। इस वंश के बारे में वैदिक ग्रंथों में निम्नानुसार उल्लेख मिलता है—

"झल्लो मल्लश्च राजन्याद् व्रात्या लिच्छविरेव च।
नरश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च।।"

—*(मनुस्मृति, 10/22)*

अर्थ :— 'झल्ल' व 'मल्ल' सामान्य क्षत्रियों से उत्पन्न हुये तथा लिच्छवि, नर, करण, खस एवं द्रविड़ —ये 'व्रात्य' (एक विशेष उच्च कुलीन) क्षत्रियों से उत्पन्न हुये हैं।

महात्मा बुद्ध ने लिच्छवियों को 'स्वर्ग के देवता' कहा है—

"ये सं भिक्खवे ! भिक्खुनं देवा तावतिंसा अदिट्ठा ओलोकेथ भिक्खवे ! लिच्छवनी परिसं, अपलोकेथ भिक्खवे ! लिच्छवी-परिसरं ! उपसंहरथ भिक्खवे ! लिच्छवे ! लिच्छवी-परिसरं तावतिंसा सदसन्ति।" —*(महापरिनिव्वाणसुत्त, 66)*

अर्थ :— देखो भिक्खुओ ! लिच्छवियों की परिषद् को, भिक्खुओ ! देखो लिच्छवियों की परिषद् को। भिक्खुओ ! लिच्छवियों की परिषद् को देखो। भिक्खुओ ! लिच्छवियों की परिषद् को देव-परिषद् (त्रयस्त्रिंश) समझो।

देवताओं की परिषद्-सी दिखाई पड़ने वाली लिच्छवी-परिषद् को देखकर महात्मा गौतम बुद्ध पुलकित और आनन्द-विभोर हो गये। उन्होंने देव-परिषद् की तरह उसे दिव्य-दर्शन कहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारत के इतिहास में लिच्छिवियों की यशस्वी परम्परा रही है। कई सम्राट् अपने आपको लिच्छिवी-कुल का कहने में गौरव अनुभव करते थे।

"समुद्रगुप्त प्रयाग की प्रशस्ति तथा अन्य सभी गुप्त-लेखों में 'लिच्छवी-दौहित्र' कहा गया है। वह लिच्छवी-राजकुमारी कुमारदेवी का पुत्र था, इसलिए **"लिच्छवी-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्न"** उल्लिखित है। इसकी पुष्टि चन्द्रगुप्त-प्रथम के मुद्रा-लेख से की जाती है। राजा द्वारा प्रचलित **स्वर्ण-सिक्के** के अधोभाग पर **'कुमारदेवीश्री'** तथा **'चन्द्रगुप्त'** का नाम खुदा है तथा पृष्ठ-भाग पर 'लिच्छवय:' उत्कीर्ण है। इससे तथ्य का पता लग जाता है कि चन्द्रगुप्त का विवाह **लिच्छवी-वंशजा कुमारदेवी** से हुआ था। समुद्रगुप्त को इसी कारण 'लिच्छवी-दौहित्र' कहा गया है। इसप्रकार के अन्य दृष्टान्त भी दिये जा सकते हैं। गुप्तवंश की एक मुहर पर प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् **पुरुगुप्त** नाम मिलता है और दूसरे अभिलेखों में स्कन्दगुप्त प्रथम को कुमारगुप्त का पुत्र या उत्तराधिकारी कहा गया है।" *—(डॉ० वासुदेव उपाध्याय, 'प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन', पृ० 37)*

"श्रीकुण्डनाख्ये नगरे विशाले, कृतावतारो नृसुरैश्च पूज्य: ।
कामेभसिंह: शुभसिंहचिह्न: वंद्योस्ति वीरो जिनवर्द्धमान: ।।"

—(बृहद् गणधरवलय विधान)

अर्थ :— श्रीकुण्डन नामक विशाल नगर में देवताओं एवं मनुष्यों के द्वारा पूज्य सिंह के समान पराक्रमी, सिंह के शुभचिह्न वाले वंदनीय वर्द्धमान महावीर जिनेन्द्र ने अवतार (जन्म) लिया था।

प्राचीन वृहत्तर भारतवर्ष के 'मध्यदेश' का मण्डन 'वैशाली नगर' को माना गया है—

"अत्थि इह भरहवासे मज्झिमदेसस्स मण्डणं परमं ।
सिरिकुण्डगाम-णयरं वसुमइरमणी तिलयभूयं ।।"

—(नेमिचन्द्र सूरिकृत महावीरचरियं, पत्र 26)

अर्थ :— भारतवर्ष के मध्य देश में 'कुण्डग्राम' नाम का नगर है, जो कि परम-अलंकार स्वरूप है, तथा पृथ्वी-रूपी रमणी के तिलक के समान सौभाग्य का प्रतीक है।

बिहार प्रांत में गंगा के उत्तर का प्रदेश 'बृजि' कहलाता था, जहाँ विदेह लिच्छिवियों का राज्य था।

चीनी यात्री ह्वेनसांग के समय भी **वैशाली** में बहुत से **निर्ग्रन्थ** (जैन साधु) रहते थे। पालयुग में वहाँ तीर्थंकरों की मूर्तियाँ भी बनती थीं।

इसप्रकार वैशाली नगरी न केवल अतिप्राचीन नगरी है, अपितु तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की जन्मस्थली भी मानी गयी है। इसके महत्त्व को सभी लोगों ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजसमृद्धियों का ऐतिहासिक केन्द्र 'राजगृह'

भगवान् महावीर के समय में 'राजगृह' एक अतिप्रतिष्ठित, समृद्धिशाली एवं गरिमापूर्ण ऐतिहासिक नगर था। स्वयं महावीर का भी इस नगर से घनिष्ट सम्बन्ध रहा। राजगृह के निकटवर्ती 'विपुलाचल' पर्वत पर उनकी प्रथम दिव्यदेशना हुई थी। अत: यह स्थान 'वीरशासन जयन्ती' का पवन-स्मृति-स्थल भी है। भगवान् महावीर के समकालीन महात्मा बुद्ध का भी इस नगर से अच्छा सम्पर्क रहा और वे स्वयं भी इसके प्रशंसकों में रहे हैं।

महात्मा बुद्ध ने 'राजगृह' के बारे में लिखा है—

"एकेमिदाहं महानाम समयं **राजगहे** विहरामि गिज्झकूटे पव्वते। तेन खोपन समयेन संबहुला निगंठा इसिगिलियस्से कालसिलायं उब्भत्थका होंति आसनं परिक्खित्ता, ओपक्कमिका दुक्खातिप्पा कटुका वेदना वेदयंति। अथ खोहं महानाम सायण्ह-समयं पटिसल्लाण बुड्डितो, येन इसिगिलि पस्सय काण सिला, येन ते निग्गंठा तेन उपसंकमिमम उपसंकमिता ते निग्गंठे एतदवोचम:। किन्हु तुम्हे आवुसो निग्गंठा उब्भट्टका आसन-पटिक्खित्ता, ओक्कमिका दुक्खा तिप्पा कटुका वेदना वेदिययाति। एवं बुत्ते महानाम ते निग्गंठा मं एतदवोचुं "निग्गंठो ! आबु सो नाठपुत्तो सव्वणु सव्वदस्सावी अपरिसेसं ज्ञानदस्सनं परिजानाति चरतो च, तिट्ठतो च, सुत्तस्स च सततं समितं ज्ञानदस्सनं पक्खुपट्ठितंति; सो एवं आह—अत्थि खो वो निग्गंठा पुव्वे पापं कम्मं कलं, तं इमाय कटुकाय दुक्करि-कारिकाय निज्जेरथ यं पतेत्य एतरिह कायेन संवुता, वाचा य संवुता, मनसा संवुता; तं आयतिं पापस्स कम्मस्स अकरणं —इति पुराणानं कम्मानं तपसा कंतिमाभा, नवानं कम्मानं अकारण आयति अनवस्सवो आयति अनवस्सवा कम्मक्खयो, कम्मक्खया दुक्खक्खयो, दुक्खक्खया वेदनाक्खयो, वेदनाक्खया सव्वं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सति। त च पन अम्हाकं रुच्चति चेव खमति च ते च अम्हा अत्ति मनाति।"

अर्थ :— (महात्मा बुद्ध कहते हैं कि) हे महानाम ! मैं एक समय **राजगृह** के 'गृद्धकूट पर्वत' पर घूम रहा था। तब 'ऋषिगिरि' के समीप कालशिला पर बहुत से निर्ग्रन्थ (जैन साधु) आसन छोड़कर उपक्रम कर रहे थे और तीव्र तपस्या में लगे हुए थे। मैं सायंकाल उनके पास गया और उनसे कहा कि "अरे निर्ग्रन्थो ! तुम आसन छोड़कर उपक्रम कर ऐसी कठिन तपस्या की वेदना का अनुभव क्यों कर रहे हो?" (अर्थात् ऐसे कठोर तप का कष्ट क्यों सह रहे हो?) जब मैंने उनसे ऐसा कहा, तब वे साधु इस तरह बोले कि "निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र भगवान् महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, वे सब कुछ जानते और देखते हैं। चलते, ठहरते, सोते, जागते —सब स्थितियों में सदा उनका ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। उन्होंने कहा है कि निर्ग्रन्थो ! तुमने पहिले पापकर्म किये हैं, उनकी इस कठिन तपस्या से निर्जरा कर डालो। मन-वचन-काय को रोकने (संयमित करने)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से पाप नहीं बंधता है और तप करने से सारे पुराने पाप दूर हो जाते हैं। इसप्रकार नये पापों के न होने से पापकर्मों का क्षय होता है, कर्मों का क्षय होने से दु:ख दूर होते हैं, दु:खों के नाश से वेदना नष्ट होती है और वेदना के नष्ट होने से सभी (दैहिक, दैविक, भौतिक आदि) दु:ख दूर हो जाते हैं।" (तब बुद्ध कहते हैं) — "यह बात मुझे अच्छी लगी है और यह मेरे मन को भी ठीक प्रतीत होती है।" —*(मज्झिमनिकाय, पृ० 192-193)*

बौद्धग्रंथ 'मज्झिमनिकाय' के ये वाक्य इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि महात्मा बुद्ध भगवान् महावीर के उपदेश को ठीक समझते थे और भगवान् महावीर की सर्वज्ञता का भी उन्हें ज्ञान था।

'दीघनिकाय' (प्रथम भाग, पृष्ठ 48) में महात्मा बुद्ध के ये वचन इस तथ्य को और पुष्ट करते हैं— **"निगंठो नातपुत्तो संघी चेव गणी चेव गणाचार्यो च ज्ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स रत्तस्सू चिरपव्वजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्ता।"**

अर्थ :— निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र (भगवान् महावीर) संघ (चतुर्विध संघ) के नेता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शनविशेष के प्रभावक हैं, विशेषत: विख्यात हैं, तीर्थंकर हैं, बहुत मनुष्यों द्वारा पूजित हैं, अनुभवी हैं। वे बहुत समय से साधुचर्या करनेवाले (चिरप्रव्रजित) हैं और (मुझसे) अधिक उम्रवाले हैं।

महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर के जीवन से सम्पृक्त रहे इस ऐतिहासिक राजगृह नगर का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है—

रजवाड़ों का निवास रहा 'राजगृह' तीर्थस्थल

जरासंध के प्राचीन नगर गिरिव्रज को बारह ईसापूर्व बारहवीं सदी के आसपास राजगृह नामक जिस नगर को बसाया था, वह एक सुन्दर एवं सुरम्य तीर्थस्थल के रूप में भी प्रसिद्ध है। यह नगर तीन मील के घेरे में बसाया गया था। राजगीर का वास्तविक नाम 'राजगृह' है। 'राजगृह' का अर्थ होता है, वह स्थान जहाँ राजा-महाराजा निवास करते हैं। पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि जब कभी मलमास का महीना होता है, इस माह में देवतागण राजगृह को ही अपना निवास बनाते हैं।

पौराणिक आख्यानों के अनुसार वसु ब्रह्मा के पुत्र थे, जिन्होंने वसुमती नामक नगर बसाया था। पुराणों में इसका नाम 'वृहद्खंडपुर' भी आया है। राजा 'बृहद्रथ' प्रसिद्ध राजा जरासंध के पूर्वज थे। राजगीर का एक और नाम 'कुशाग्रपुर' भी है। बौद्ध एवं जैन-ग्रंथों में यह चर्चा आयी है कि इस नगर के चारों तरफ सुगंधित कुश अर्थात् 'खस' का विशाल वन था। यह धार्मिक एवं रमणीक स्थान पटना से 102 कि०मी० दक्षिण-पूर्व कोने में नालंदा जिले में है। 'बख्तियारपुर' रेलवे स्टेशन से 54 कि०मी० तथा 'बिहार शरीफ' से 24 कि०मी० पर है। यहाँ जाने के लिये पक्की सड़कें और रेलमार्ग सुलभ है। यहाँ की प्राकृतिक शोभा निराली है। तरह-तरह के वृक्ष, झरने, पहाड़ियाँ, स्वदेशी तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदेशी पर्यटकों के झुण्ड आपके मन को सहज ही मोह लेंगे।

जाड़े के मौसम में यहाँ अधिक भीड़ रहती है। प्राय: बड़े दिनों की छुट्टी एवं मलमास मेले के अवसर पर राजगृह एक चहल-पहल का स्थान बन जाता है। यहाँ गर्म जल के झरने हैं, जो लोहा, गंधक और रेडियमयुक्त है। पेट की बीमारी एवं गठिया आदि रोगों से मुक्ति पाने के लिये बड़ी संख्या में लोग यहाँ आते हैं।

महात्मा बुद्ध एवं भगवान् महावीर को यह स्थान बड़ा प्रिय था। यह प्रसिद्ध रम्य स्थल सात पहाड़ियों से घिरा हुआ है। वैभरा, विपुल्ला, छाता, शैला, रत्न, उदय और सोना —इन सात पहाड़ियों की छटा यहाँ देखते बनती है। बड़े-बड़े महात्मा और सुधारक यहाँ इसीकारण आये। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी धर्मों के अनुयायी आते हैं। मुसलमान फकीर मखदूमशाह ने भी इस स्थान को तपस्या और साधना के लिये उत्तम समझा था। यही पर उनका स्मारक भी है तथा उन्हीं के नाम पर गर्म झरने का नाम 'मखदूम कुंड' है। प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसांग ने तो कई बार यहाँ की यात्रा की थी। उसने अपनी यात्रा पुस्तकों में 'राजगृह' के बारे में लिखा है।

प्राकृतिक सुंदरता के अलावा यहाँ प्राचीनकाल की कुछ ऐसी यादें भी हैं, जो देश-विदेश के घुमक्कड़ों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती हैं। इनमें वेणुवन, गर्म झरने, विप्पक्षा गुफा, सप्तपर्णी गुफा, मनियार मठ, स्वर्ण-भंडार गुफा, राणा भूहिम, बिंबिसार का कारागार, जीवक का आम्रवन, रथों का चिह्न, भीमकाय दीवारें, विश्वशांति-स्तूप उल्लेखनीय है। इनके बिना राजगृह का वर्णन पूर्ण हो ही नहीं सकता।

राजगृह में पर्यटकों के ठहरने के लिये सरकार की ओर से डाक-बंगले और विश्रामगृह बने हुए हैं। इसके अलावा यात्रियों के ठहरने के लिये यहाँ कई धर्मशालायें भी हैं। पर्यटन विभाग का एक रेस्ट हाउस भी यहाँ है। यह एक रमणीय तीर्थस्थान है, जो पर्यटन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

वेणुवन :— वेणुवन को 'बांस का उद्यान' भी कहते हैं। इतिहास में बताया गया है कि इसे राजा बिंबिसार ने महात्मा बुद्ध के ठहरने के लिये बनवाया था और वास्तव में यहाँ महात्मा बुद्ध की काफी दिनों तक ठहरे भी थे। पास ही 'करंद सरोवर' भी है। यहाँ झिलमिल करते जल का सुन्दर तालाब है, जो वेणुवन से सटा है। कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध इसमें स्नान करते थे। यहाँ सात झरनों का एक समूह है, जिसे 'सतधारा' भी कहते हैं। सातों झरने गर्म जल के हैं। जाड़े के दिनों में हजारों लोग यहाँ आते हैं और इन झरनों में स्नान करते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इन गर्म झरनों के जल में कुछ ऐसे खनिज पदार्थों का मिश्रण है, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी सिद्ध होते हैं। जाड़े के मौसम में यहाँ अधिक भीड़ रहती है। ये गर्म जल के झरने लोहा, गंधक और रेडियम-युक्त हैं। पेट की बीमारी और गठिया आदि रोगों से मुक्ति पाने के लिये बड़ी संख्या में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोग यहाँ आते हैं।

विप्यक्षा गुफा :— जब आप इस गुफा के द्वार पर खड़े होंगे, तो बड़ा ही आनंद आयेगा। यह पत्थरों की बनी हुई है। इसे 'राजा जरासंध की बैठक' भी कहा जाता है। कहते हैं कि यहाँ राजा जरासंध अपने दरबारियों के साथ बैठकर अपने राजकाल के बारे में सलाह किया करता था।

सप्तपर्णी गुफा :— यह वही गुफा है जहाँ महात्मा बुद्ध के देहान्त के बाद बौद्ध भिक्षुओं की पहली सभा हुई थी, जिसमें विचार किया गया कि आगे बौद्ध-धर्म का प्रचार कैसे किया जाये, कौन-कौन से नियम बनाये जायें, ताकि इस धर्म को कोई हानि न पहुँचे।

मनियार मठ :— यह मठ ईटों और लोहे ही चादरों से बना हुआ है। यहाँ से जो विशाल मार्ग प्रारंभ होता है, वह राजगृह और बोधगया को आपस में मिलाता है।

स्वर्ण-भंडार गुफा :— यह भी हजारों साल पुरानी गुफा है। यह 'मनियार मठ' से उत्तर-पश्चिम की ओर है। इस स्थान को ज्यादातर लोग 'सोना-भंडार' कहा करते हैं। इसका निर्माण-काल 1700-1800 वर्ष पूर्व का है। इसमें जैन साधु रहा करते थे।

राणा भूमि :— यह स्थान स्वर्ण-भंडार गुफा से पश्चिम की ओर एक मील पर है। यहाँ लोग प्राय: पैदल ही बड़े मजे से पहुँच जाते हैं। लोगों का कहना है कि यह प्राचीनकाल में जरासंध का अखाड़ा था और यह भी कहा जाता है कि इसी स्थान पर जरासंध और बलशाली भीम का प्रसिद्ध मल्लयुद्ध हुआ था, जो 28 दिनों तक चलता रहा; जिसमें जरासंध बुरी तरह हार गया और भीम के बलिष्ठ घूंसों की मार बर्दाश्त न कर सकने के कारण वह असहाय हो गया।

बिंबिसार का कारागार :— राजा बिंबिसार यद्यपि आस्था की दृष्टि से एक जैनधर्मानुयायी सम्राट् था, साथ ही वह एक दृढ़चरित्र प्रशासक भी था। अपराधियों को वह तुरन्त दंड देता। उसके समय के कारागार के अवशेष आज भी विद्यमान हैं।

गृध्रकूट :— यहाँ महात्मा बुद्ध ने बहुत दिनों तक वास किया था और शांति, अहिंसा तथा प्रेम का उपदेश देकर लोगों को अपना शिष्य बनाया। इस शिष्यों में बहुत से लोग बौद्ध सिद्ध और सन्यासी बने और बौद्धधर्म के प्रचार के लिये देश-विदेश की यात्रायें की।

जीवकवन-आम्रवन :— राजा बिंबिसार के समय में राजगृह में 'जीवक' नाम का एक प्रसिद्ध वैद्य था। बताया जाता है कि वह गहरे से गहरे घाव को मात्र चूर्ण खिलाकर ठीक कर देता था। जीवन से निराश रोगियों को वह पाँच दिन की औषधि खिलाकर एकदम स्वस्थ कर देता था। राजा बिंबिसार ने उसे अपना राजवैद्य इसीलिये बनाया था, जीवक इतना प्रसिद्ध वैद्य था कि राजस्थान तक के राजा-महाराजा उसे अपनी चिकित्सा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिये बुलाते थे।

रथों के चिह्न :— इतिहासकारों का ऐसा अनुमान है कि ऊँची पहाड़ी के ऊपर दुर्ग बनाने के लिये जिन सवारियों से सामान ऊपर पहुँचाये जाते होंगे, यह चिह्न उन्हीं रथों, गाड़ियों के पहिओं के हैं। इन चिह्नों को देखने से इस बात का अनुमान भी लगाया जा सकता है कि ईसा की प्रथम से पाँचवीं शताब्दी तक किस आकार-प्रकार और वजन के वाहनों का पूर्वी भारत में उपयोग किया जाता था।

भीमकाय दीवारें :— राजगृह की पुरानी दीवारों की लम्बाई का अनुमान किया गया है कि वे पच्चीस से तीस मील रही होंगी। इसीलिये इन्हें भीमकाय दीवारें या (साइक्लोपियन वाल्स) कहा गया है। इन दीवारों के पत्थर आपस में इसप्रकार जुड़े हैं कि आज के बड़े-बड़े भवन-निर्माण-विशेषज्ञ उन्हें देखकर दातों तले उंगली दबाते हैं।

विश्वशांति-स्तूप :— शांति, प्रेम और अहिंसा का संदेश देनेवाला मंदिर या स्तूप 'रत्नगिरी पर्वत' से ऊपर 1,147 फीट की ऊंचाई पर बना हुआ है। इस स्थान पर पहुँचने के लिये रज्जु-मार्ग बनाया गया है। दर्शनार्थी रस्सी से झुलती हुई कुर्सीयान (रोप वे) पर बैठकर जाते हैं और यह रस्सी बिजली के यंत्रों से खिचती हुई ऊपर जाती है और फिर पलटकर नीचे आ जाती है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह है कि इतनी ऊँची चढ़ाई देखते-देखते पार कर ली जाती है। इस रज्जुपथ में 120 कुर्सियाँ हैं। राजगृह में पर्यटकों के ठहरने के लिये सरकार की ओर से डाकबंगले और विश्रामगृह बने हुये हैं।

❖❖

कर्तृत्व का कष्ट

"करिष्यामीदं कृतमिदमिदं कृत्यमधुना।
करोमीति व्यग्रं नयसि सकलं कालमफलम्।।
सदा राग-द्वेष-प्रचयनपरं स्वार्थविमुखे।
न जैनेऽविकृत्त्वे वचसि रमते निर्वृत्तिकरे।।"

—*(प्रवचनसार टीका, 57)*

भावार्थ :— "मैं ऐसा करूँगा, मैंने ऐसा किया है, अब ऐसा करता हूँ" —इसतरह आकुलता में ही पड़ा हुआ तू अपना सर्वजीवनकाल निष्फल खोता फिरता है तथा सदा अपने आत्मा के कल्याण से विमुख होकर राग-द्वेष के आग के भीतर पड़ा-खड़ा रहता है और मुक्ति के कारण विकाररहित वीतराग जिनेन्द्र के वचनों में रमण नहीं करता है।

ऐसा कर्त्ताभाव वास्तव में मनुष्य को आत्मसाधना के मार्ग पर अग्रसर नहीं होने देता है। अत: कर्त्ताभाव के अहंकार से अपने परिणामों को बचाना चाहिये। **

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी शक्ति कैसी प्रभु-भक्ति में

—*प्रभाकिरण जैन*

खुल गई बेड़ियाँ अकस्मात्,
था उसके जीवन का प्रभात।
सुनते ही 'वीर प्रभु आए'
दौड़ी, भूली वो बन्दीद्वार।
भूली अपना दासत्व-बोध,
भूली पीड़ा थी जो अपार।।

"आहार प्रभु को मैं दूँगी"
बस यह ही जपती थी मन में।
कोदों के मुट्ठी-भर दाने
बिखरे तारे बन जीवन में।।

थी शक्ति कैसी प्रभु-भक्ति में,
प्रभु के शुभ-चरण वहीं ठहरे।
नवधा-भक्ति चंदनबाला की,
तोड़ गई सारे पहरे।।

लेकर आहार चन्दना से,
खोला प्रभु ने मुक्ति का द्वार।
दासत्व-प्रथा का किया अन्त,
समता-भावों का कर प्रचार।।

श्री वीर प्रभु की घर-घर में,
कहनी है फिर से आज कथा।।
गर वीर प्रभु को भुला दिया,
तो होगी चारों ओर व्यथा।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था विधि का कैसा अमिट लेख?
हर सुख से वंचित थी चन्दन।
थी राजपुत्री और बनी दासी,
कैसी करुणा कैसा क्रन्दन?
पर धन्य-धन्य श्री वीर प्रभु,
जिनका शुभ ध्यान लगाने से।
खुल जाती अन्तर की बेड़ी,
हर बन्धन जिनको भाने से।।

और धन्य-धन्य चन्दनबाला,
जो कारागृह में रहते भी।
जपती थी प्रभु का नाम अटल,
सारे कष्टों को सहते भी।।

चन्दनबाला की घर-घर में,
कहनी फिर से आज कथा।
गर उस बाला को भुला दिया,
तो होगी चारों ओर व्यथा।।

हैं धन्य हमारे मुनिवर श्री,
विद्या-नन्दन मुनि विद्यानन्द।
जो अमृत बरसाते नित ही,
अरु बिखराते चहुँओर अनंद।।

यह शुभ अध्याय शुरू इनसे,
अब हो इसकी हर ओर कथा।
श्री वीर प्रभु की जय-जय हो,
मिट जाये सारी पीड़ा-व्यथा।। ❖❖

हीनता के कारण

बालसखित्वमकारणहास्यं, स्त्रीषु विवादमसज्जनसेवा।
गर्दभयानमसंस्कृतवाणी षट्सु नरो लघुतामुपयाति।।

अर्थ :— जो बच्चों (अज्ञानीजनों) की मित्रता करता है, बिना प्रयोजन के ही हँसता है, स्त्रियों से विवाद (बहस) करता है, दुर्जनों की सेवा करता है, गधे की सवारी करता है तथा संस्कारविहीन (असभ्य) वचन बोलता है —इन छह कार्यों को करने से व्यक्ति क्षुद्रता/हीनता को प्राप्त होता है। **

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तिलोयपण्णत्ती' में भगवान् महावीर और उनका सर्वोदयी दर्शन

—*डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल*

आचार्य यतिवृषभ द्वारा विरचित 'तिलोयपण्णत्ती' नामक ग्रन्थ जैन आगम-परम्परा में ज्ञान-विज्ञान का अद्भुत भण्डार माना जाता है। इसमें धर्म, दर्शन, तत्त्वज्ञान, इतिहास, खगोल, भूगोल एवं अन्य बहुआयामी प्ररूपण प्राप्त होते हैं। भगवान् महावीर के मांगलिक उपदेशों के विचार-बिन्दुओं का जैसा प्रासंगिक प्ररूपण इस ग्रन्थ में आचार्यप्रवर ने किया है, विद्वान् लेखक ने उनका श्रमपूर्वक संकलन करके व्यवस्थित लिपिबद्धीकरण इस आलेख में किया है। —**सम्पादक**

'तिलोयपण्णत्ती' जैनधर्म के करणानुयोग का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसकी रचना प्राकृतभाषा में आचार्य यतिवृषभ ने ईसा की 5वीं शताब्दी में की थी। इस महाग्रंथ में 5746 प्राकृत गाथायें हैं, जो नौ महाधिकारों में निबद्ध हैं। इसमें जैन भूगोल, खगोल, इतिहास, महापुरुषों का जीवन और सिद्धत्व-प्राप्ति के कारणों आदि का वर्णन है। आचार्य यतिवृषभ ने इस ग्रंथ के अतिरिक्त जैन-साहित्य के आद्य-ग्रंथ 'कसायपाहुड' पर चूर्णिसूत्रों की रचना की थी। प्रस्तुत आलेख में 'तिलोयपण्णत्ती' में वर्णित भगवान् महावीर और उनके दर्शन का वर्णन किया है।

'तिलोयपण्णत्ती' में भगवान् महावीर

विद्यमान अवसर्पिणी-काल में नाभिराय कुलकर के पश्चात् भरतक्षेत्र में पुण्योदय से मानवों में श्रेष्ठ और सम्पूर्ण लोक में प्रसिद्ध 63 शलाकापुरुष उत्पन्न हुए।[1] चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण —इसप्रकार 63 महापुरुष होते हैं।[2] भरतक्षेत्र में वंदन करने योग्य ऋषभदेव से लेकर महावीर-पर्यंत चौबीस तीर्थंकर हुये। तीर्थंकर भव्य जीवों के संसाररूपी वृक्ष को ज्ञानरूपी फरसे से छेदते हैं।[3] इसप्रकार आत्मज्ञान के द्वारा जगत् के जीवों को मुक्ति का मार्ग दर्शाकर धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करना ही तीर्थंकरों की सहज प्रवृत्ति होती है।

चतुर्थ काल के 75 वर्ष 8½ माह शेष रहने पर चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पुष्पोत्तर विमान' से अवतरित हुए थे।[4] उनका जन्म भगवान् पार्श्वनाथ की उत्पत्ति के पश्चात 278 वर्ष व्यतीत हो जाने पर हुआ।[5] महावीर का जन्म वैशाली-कुण्डग्राम में पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला से चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को 'उत्तरफाल्गुनी' नक्षत्र में हुआ।[6] उनका वंश नाथ-वंश था।[7] उनकी आयु 72 वर्ष प्रमाण थी।[8] उनका कुमारकाल 30 वर्ष[9] और शरीर का प्रमाण सात हाथ था।[10]

महावीर स्वर्ण-समान वर्ण के थे।[11] उनका चिह्न सिंह था।[12] जाति-स्मरण के कारण उन्होंने कुमारावस्था में कुण्डलपुर में अकेले ही 'जिनेश्वरी दीक्षा' ली।[13] उन्हें बारह वर्ष बाद केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।[14] यह काल 'छद्मस्थ काल' कहलाता है।

महावीर को ऋजकूला नदी के किनारे वैशाख शुक्ल दसमी अपराह्न में हस्त नक्षत्र में केवलज्ञान हुआ।[15] इसके साथ ही सौधर्मादिक इन्द्रों के आसन कम्पायमान हुए।[16] केवलज्ञान की उत्पत्ति पर इन्द्र, अहमिन्द्र एवं चारों जाति के देवों ने सात कदम आगे चलकर महावीर जिनेन्द्र देव को प्रणाम किया।[17] भगवान् पार्श्वनाथ के 289 वर्ष, 8 माह बाद महावीर को केवलज्ञान हुआ।[18]

महावीर को केवलज्ञान होने पर सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने विक्रिया ऋद्धि से समवसरण रूपी धर्मसभा की अद्भुत रचना की।[19] उनके समवसरण की रक्षा करने वाले गुह्य यक्ष और सिद्धायनी यक्षिणी थी।[20] महावीर का केवली-काल तीस वर्ष का था अर्थात् तीस वर्ष तक उन्होंने धर्मोपदेश दिया।[21] महावीर के इन्द्रभूति गौतम आदि ग्यारह गणधर थे।[22] ये सभी ब्राह्मण-मूल के थे।

महावीर के धर्मतीर्थ में 300 पूर्वधर, 1100 शिक्षक, 1300 अवधिज्ञानी, 700 केवली, 900 विक्रिया ऋद्धिधारी, 500 विपुलमति एवं 400 वादी थे।[23] उनके धर्मतीर्थ में 36000 आर्यिकायें थी,[24] उनकी प्रमुखा चन्दना थी।[25] महावीर के अनुयायी श्रावक-श्राविकाओं की संख्या क्रमश: एक लाख और तीन लाख थी।[26]

चतुर्थ काल में तीन वर्ष आठ माह और एक पक्ष शेष रहने पर महावीर कार्तिककृष्ण अमावस्या के प्रत्यूष काल में स्वाति नक्षत्र में 'कायोत्सर्ग आसन' में पावापुरी से अकेले ही सिद्ध हुए।[27] महावीर के बाद तीन अननुबद्ध केवली हुए। उनकी मुक्ति के पश्चात् 6 वर्ष में 4400 मुनि-शिष्यों ने मुक्ति प्राप्त की।[28] आठ सौ मुनि सौधर्म स्वर्ग से ऊर्ध्व ग्रैवेयक तक गये।[29] आठ हजार आठ सौ मुनि अनुत्तर विमानों में गये।[30] भगवान् पार्श्वनाथ के 250 वर्ष व्यतीत होने पर महावीर मोक्ष गये।[31] महावीर का तीर्थकाल 21042 वर्ष प्रमाण है।[32] भगवान् महावीर के निर्वाण-महोत्सव के उपलक्ष में प्रतिवर्ष दीपावली-पर्व उल्लासपूर्वक मनाया जाता है। इसप्रकार पूर्व पर्याय में सिंह की अवस्था में आत्मबोध करनेवाला महावीर का जीव 10वीं पर्याय में अत्मोन्नति/शुद्धता में वृद्धि करता हुआ पशु से परमात्मा हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर का दर्शन और आत्मविज्ञान के सिद्धान्त

'तिलोयपण्णत्ति' के नवमें महाधिकार की 82 गाथाओं में सिद्ध-लोक-प्रज्ञप्ति का वर्णन है। इसमें भगवान् महावीर के दर्शन के अनुसार सिद्धों का निवास, सिद्धों का सुख एवं सिद्धत्व-साधना के सिद्धान्तों/सूत्रों का दिशाबोधक वर्णन है, जो मननीय हैं। आधुनिक संदर्भ में भगवान् महावीर का दर्शन 'आत्म-विज्ञान'का सर्वोदयी दर्शन कहा जाता है।

स्वतंत्रता का स्व-समय का सिद्धान्त

महावीर का सर्वोदयी दर्शन प्रत्येक प्राणी को परमात्मा होने का मार्ग बताता है। स्वभाव से प्रत्येक जीव शुद्ध है, सिद्ध समान है। अज्ञान के कारण वर्तमान अवस्था विकारी है, अशुद्ध है। अशुद्धता विकार से मुक्ति पाने का सूत्र है :— स्व-समय के सिद्धान्त का ज्ञान। 'समय' शब्द का प्रयोग काल, पदार्थ और जीवात्मा[33] के रूप में किया है, जो एकत्व रूप से एकसमय में जानता और परिणमन करता है। आत्मा अपने ज्ञानदर्शन स्वभाव का श्रद्धान, ज्ञान कर उसी में स्थित-लीन रहे, यही उसका सौन्दर्य और सिद्धत्व है। इसे ही स्व-समय शुद्धात्मा समयसार कहा है। इसके विपरीत मिथ्यात्व, राग-द्वेष रूप पर्याय में परिणमित होना पर-समय या बहिरात्मा है, जो दु:खरूप है। 'तिलोयपण्णत्ती' में आत्मा के स्व-समय (स्व-चारित्र) का सिद्धान्त बताते हुए कहा है कि— 'जो (अन्तरंग-बहिरंग) सर्वसंग से रहित ओर अनन्यमन (एकाग्रचित्त) होता हुआ अपने चैतन्य-स्वभाव से आत्मा को जानता और देखता है, वह जीव स्व-चारित्ररूप स्व-समय है।[34] ज्ञान, दर्शन और चारित्र की भावना करना चाहिये, यह तीनों आत्मस्वरूप हैं; अत: आत्मा की भावना करो।[35] स्व-समय में प्रवृत्ति शुद्धनय से होती है।

शुद्धनय से स्व-समय की सिद्धि : अशुद्धनय से पर-समय की पुष्टि

सिद्ध-स्वरूप शुद्धात्मा की प्राप्ति शुद्धनय (दृष्टि) से होती है। इसकी पुष्टि करते हुए कहा है— 'न मैं पर-पदार्थों का हूँ और न पर-पदार्थ मेरे हैं, मैं तो अकेला (केवल) ज्ञान ही हूँ; इसप्रकार जो ध्यान में चिंतन करता है, वह आठ कर्मों से मुक्त होता है।[36] 'मैं दूसरों का नहीं हूँ, पर मेरे नहीं हैं, इसप्रकार लोक में मेरा कुछ भी नहीं है, —ऐसी जो भावना भाता है, उसका कल्याण होता है।[37] इसप्रकार शुद्धनय से स्व-समय की सिद्धि होती है। ठीक इसके विपरीत जो जीव देह में 'अहम्' (अहंबुद्धि) और धनादिक में ममेदं (यह मेरा) इसप्रकार के ममत्व को नहीं छोड़ता, वह अज्ञानी दुष्टकर्मों से बंधता है।[38] इस दृष्टि से अशुद्धनय से पर-समय रूप प्रवृत्ति होती है। अत: साधक को शुद्धनय उपादेय है।

स्वावलम्बन का शुद्धोपयोग का सिद्धान्त

आत्मा सदा से एक शुद्ध दर्शन-ज्ञानात्मक और अरूपी है; परमाणुमात्र भी अन्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थ उसका नहीं है।[39] आत्मा का ज्ञानदर्शन का व्यापार या प्रवृत्ति 'उपयोग' कहलाता है। भाव-अनुष्ठान की दृष्टि से उपयोग तीन प्रकार का है— शुभ, अशुभ और शुद्ध। जीव जब शुभ या अशुभ भाव से परिणमता है, तब शुभ या अशुभ रूप होता है और जब शुद्धभाव से परिणमित होता है, तब शुद्ध होता है।[40] शुद्धभाव से उपयोग शुद्ध होता है। शुद्धोपयोग से निष्पन्न सिद्धों को अतिशय, आत्मीक, विषयातीत, अनुपम, अनंत, अविच्छिन्न सुख मिलता है।[41] धर्मपरिणत आत्मा के शुद्धोपयोग से निर्वाण, शुभोपयोग से स्वर्गादिक-सुख और अशुभोपयोग से कुमानुष, तिर्यंच और नरकगति का अनंत दुःखरूप संसार-भ्रमण होता है।[42] शुद्धोपयोग आत्मा की स्वाबलम्बी ज्ञान-परिणति है; जबकि शुभ-अशुभ-उपयोग पर-द्रव्याश्रित अज्ञान-परिणति है। अतः जिन्हें संसार-मुक्त होना है, उन्हें स्वावलम्बी शुद्धोपयोगी परिणति को समझना और जीवन में प्रयुक्त करना आवश्यक है।

स्व-समय-प्रवृत्ति का आधार 'भेद-विज्ञान'

जीव अनादिकाल से अज्ञानवश शुभ-अशुभरूप पर-समय की प्रवृत्ति दिन-रात करता है, जो अंनत दुःख का कारण है। इसकी निवृत्ति एवं शुद्धोपयोगरूप प्रवृत्ति का आधार 'स्व' और 'पर' को पृथक्-पृथक् जानने रूप भेद-विज्ञान है। इससे स्वभाव-विभाव, आत्मा-अनात्मा का ज्ञान होता है? इसी को रेखांकित करते हुए कहा है कि 'जब तक जीव आत्मा और आस्रव (शुभाशुभ रूप भाव) का विशेष नहीं जानता, तब तक वह अज्ञानी विषयों में प्रवृत्त रहता है। तथा जो बंध के स्वभाव और आत्मा के स्वभाव को जानकर, बंध के प्रति विरक्त होता है, वह कर्मों से मुक्त होता है।[43] जो भेद-विज्ञान द्वारा सर्व परिग्रहों से रहित अपने आत्मा का आत्मा द्वारा ध्यान करता है, वह अल्पकाल में ही समस्त दुःखों से छुटकारा पा लेता है। इसप्रकार जो गहरे संसार-समुद्र से निकलना चाहता है, वह शुद्धात्मा का ध्यान करता है। भेद-विज्ञान से मोहग्रंथी का क्षय और सुख-दुःख में समत्वभाव आता है।[44]

कर्मक्षय हेतु आत्म-ध्यान का सिद्धान्त

ध्यानरूपी अग्नि बहुत भारी कर्मरूपी ईंधन को क्षणमात्र में जला देती है। रागादि परिग्रह से रहित मुनि शुक्लध्यान द्वारा अनेक भवों के संचित कर्मों को शीघ्र जला देता है।[45] ध्यान निर्जरा का कारण है।[46] अतः रत्नत्रयादि गुणों से युक्त अविनश्वर, अखंड-प्रदेशी शुद्ध इन्द्रियातीत निजात्मा का ध्यान करना चाहिये।[47]

ध्यान में राग और पुण्यभाव के दुष्परिणाम

जिसके देहादिक में अल्पराग भी है, वह समस्त शास्त्रों का ज्ञाता होकर भी अपने समय (आत्मा) को नहीं जानता।[48] परमार्थ से बाहर मोक्ष का हेतु न जाननेवाले अज्ञानी पुरुष पुण्य की इच्छा करते हैं। पुण्य से वैभव-मद-मतिमोह और पाप होता है; अतः पुण्य छोड़ना चाहिये। जो पुण्य और पाप में भेद मानता है, वह मोही अपार संसार का भ्रमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है।[49]

भगवान् महावीर आत्मा के स्वावलम्बन से स्वतंत्रता का उद्घोष कर सर्वोदयी तीर्थ की स्थापना करते हैं। जगत् के जीव अपने को जान-पहिचान एवं रमणता द्वारा संसार-मुक्त हों —यही भावना है।

संदर्भग्रंथ-सूची

1. तिलोयपण्णत्ती, भाग 2, चतुर्थ महाधिकार, गाथा 517। **2.** वही, गाथा 518। **3.** वही, गाथा 521। **4.** वही, गाथा 531। **5.** वही, गाथा 584। **6.** वही, गाथा 556। **7.** वही, गाथा 557। **8.** वही, गाथा 583। **9.** वही, गाथा 591। **10.** वही, गाथा 594। **11.** वही, गाथा 596। **12.** वही, गाथा 612। **13.** वही, गाथा 675-677। **14.** वही, गाथा 585। **15.** वही, गाथा 709। **16.** वही, गाथा 714। **17.** वही, गाथा 715-717। **18.** वही, गाथा 711। **19.** वही, गाथा 718। **20.** वही, गाथा 943-948। **21.** वही, गाथा 969। **22.** वही, गाथा 972-975। **23.** वही, गाथा 1171-1172। **24.** वही, गाथा 1187। **25.** वही, गाथा 1191। **26.** वही, गाथा 1193-1194। **27.** वही, गाथा 1250-1219। **28.** वही, गाथा 1240-1242। **29.** वही, गाथा 1248। **30.** वही, गाथा 1228। **31.** वही, गाथा 1260। **32.** वही, गाथा 1285। **33.** समयसार-आचार्य कुन्दकुन्द, गाथा 2 टीका। **34.** तिलोयपण्णत्ती, भाग 3, नवम महाधिकार (सिद्धलोक प्रज्ञप्ति), गाथा 26 (एवं पंचास्तिकाय संग्रह, गाथा 158 एवं 154)। **35.** वही (तिलोयपण्णत्ति), गाथा 27। **36.** वही, गाथा 30, 36, 29। **37.** वही, गाथा 38-39। **38.** वही, गाथा 55-47। **39.** वही, गाथा 28। **40.** वही, गाथा 60। **41.** वही, गाथा 63। **42.** वही, गाथा 61-62। **43.** वही, गाथा 67-66। **44.** वही, गाथा 51-52-54। **45.** वही, गाथा 22-64। **46.** वही, गाथा 25। **47.** वही, गाथा 45-43। **48.** वही, गाथा 41। **49.** वही, गाथा 57, 56, 58।

❖❖

महावीर के प्रति विश्रुत विद्वानों के विचार

भारत में महावीर ने मुक्ति का संदेश दिया और बताया कि धर्म एक वास्तविकता है, वह मात्र परम्परा नहीं है और मुक्ति आत्मसाधना से, धर्माचरण से प्राप्त होती है, बाह्याडम्बरों अथवा कर्मकाण्डों में लिप्त होने से नहीं। धर्म कभी भी आदमी-आदमी में भेद नहीं करता। महावीर की यह विचारधारा आश्चर्यजनक रूप से व्यापक रूप से प्रसारित हो गई और जातिभेद की दीवारों को तोड़ उसने सारे देश को जीत लिया।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

भगवान् महावीर पुन: जैनधर्म के सिद्धांत को प्रकाश में लाये। भारत में यह धर्म बौद्धधर्म से पहले मौजूद था। प्राचीनकाल में असंख्य पशुओं की बलि दे दी जाती थी। इस बलि-प्रथा को समाप्त कराने का श्रेय जैनधर्म को है। *—बाल गंगाधर तिलक*

**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकतान्त्रिक दृष्टि और भगवान् महावीर

—प्रभात कुमार दास

वर्तमान में भारतवर्ष में लोकतान्त्रिक प्रणाली लागू है और हम सभी इसी लोकतन्त्र के वातावरण में जीवनयापन कर रहे हैं। 'लोकतन्त्र' की परिभाषा यूनानी दार्शनिक बलीयान ने निम्नानुसार दी है— **"जो जनता का हो, जनता के लिये हो एवं जनता के द्वारा हो।"** इसीलिये इसका नामान्तर 'जनतन्त्र' भी है। यही लोकतन्त्र या जनतन्त्र जब सुविचारित रीति से 'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय' की कामना के साथ संवैधानिक नियमों की मर्यादाओं में आबद्ध हो जाता है, तो इसे ही 'गणतन्त्र' की संज्ञा प्राप्त होती है। इसीलिये जब 15 अगस्त सन् 1947 में भारत को स्वतन्त्रता मिली, तो वह जनतन्त्र के रूप में था, तथा 26 जनवरी 1950 को जब इसका अपना संविधान बनकर लागू हुआ, तब भारतवर्ष 'गणतन्त्र' कहलाया।

किन्तु गणतन्त्र की प्रणाली का प्रचलन कोई अभी 20वीं शताब्दी की देन नहीं है। इतिहास साक्षी है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व भी इस देश में गणतान्त्रिक प्रणाली का आदर्शरूप लोकजीवन में प्रचलित था। सर्वप्रथम हमें 'वैशाली गणतन्त्र' का उल्लेख मिलता है। संभवत: इसीलिये वैशाली को राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने 'जनतन्त्र का प्रतिपालक' एवं 'गणतन्त्र का आदिविधाता' या प्रवर्तक कहा है—

"वैशाली 'जन' का प्रतिपालक 'गण' का आदिविधाता।
जिसे ढूँढ़ता लोक आज उस प्रजातन्त्र की माता।।
रुको एक क्षण पथिक यहाँ मिट्टी को शीश नवाओ।
राजसिद्धियों की समाधि पर फूल चढ़ाते जाओ।।"

—(होम एज टू वैशाली)

इसके अध्यक्ष लिच्छवी-संघनायक महाराजा चेटक थे। इन्हीं महाराजा चेटक की ज्येष्ठ पुत्री का नाम 'प्रियकारिणी त्रिशला' था, जिनका मंगल-परिणय वैशाली गणतन्त्र के सदस्य एवं 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' के अधिपति 'महाराजा सिद्धार्थ' के साथ हुआ था। इन्हीं महाराज सिद्धार्थ एवं महारानी प्रियकारिणी त्रिशला के आँगन में 'अहिंसा के अग्रदूत' जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का जन्म हुआ था। इसप्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर के जन्म के समय उनके मातृकुल एवं पितृकुल —दोनों में ही गणतन्त्रीय लोकतन्त्र का वातावरण था, जिसका प्रभाव उनके चिंतन एवं जीवन पर बाल्यावस्था से ही होना स्वाभाविक था।

जैन-परम्परा में यह वैशिष्ट्य है कि वीतरागता एवं सर्वज्ञता की प्राप्ति पर 'अर्हत्' पद को प्राप्त करनेवाले सभी आत्मा में 'परमात्मा' होते हैं, उन्हें 'भगवान्' भी कहा जाता है; किन्तु जो 'अर्हत्' या 'भगवान्' इस अवस्था की प्राप्ति से पूर्व ही लोकहित की भावना से ओतप्रोत होते हैं, प्राणीमात्र तक आत्महित का सन्देश पहुँचाने की प्रबल भावना रखते हैं, उन्हें 'तीर्थंकर नामकर्म' नाम उत्कृष्टतम कर्मप्रकृति का बंध होता है। इसके फलस्वरूप वे 'अर्हत्' और 'भगवान्' होने के साथ-साथ 'तीर्थंकर' भी कहलाते हैं तथा उनकी दिव्य-देशना या उपदेश से अनेकों जीवों के आत्मकल्याण का मार्गप्रशस्त होता है। इसप्रकार आत्महित एवं लोकहित —दोनों के अनुविधाता 'तीर्थंकर' कहलाते हैं। जैन-मान्यतानुसार एक कालखण्ड में भारतवर्ष में कुल 24 तीर्थंकर ही हो सकते है, जिनमें इस कालखण्ड के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर थे।

'तीर्थंकर' होने के कारण उनसे लोकहित भी होना अवश्यंभावी था। किन्तु वर्द्धमान महावीर के साथ एक और वैशिष्ट्य जुड़ा हुआ था, और वह था गणतांत्रिक एवं लोकतांत्रिक वातावरण में जन्मतः रहना। इसीलिये उनका चिंतन मनुष्यमात्र के हित के लिये सीमित न होकर प्राणीमात्र के हित के लिये व्यापक हुआ। भारतवर्ष में प्रचलित गणतांत्रिक विचारधारा के लिये यह एक नई दिशा थी। इसका व्यापक परिणाम सामने आया, और हर वर्ग के लोग इस उदात्त चिंतन से अनुप्राणित होकर उनके अनुगामी बने।

भगवान् महावीर ने बाल्यावस्था से ही लोकतांत्रिक मर्यादाओं को अपनाया। चाहे वे बाल्य-क्रीड़ायें हों, या फिर अन्य क्रिया-कलाप; बालक वर्द्धमान से लेकर राजकुमार वर्द्धमान तक की यात्रा में वे इन चिंतनों को साथ लेकर चले। अजमुखी संगमदेव के साथ बाल-क्रीड़ा हो अथवा मदोन्मत्त हाथी को निर्मद करना, —इन सभी घटनाओं के पीछे वैयक्तिक प्रतिष्ठा की कामना न होकर जनता को निर्भय और सुरक्षित वातावरण प्रदान करना उनका मुख्य उद्देश्य था। यहाँ यह बात विशेषरूप से मननीय है कि उन्होंने प्रजाजनों का संरक्षण तो किया ही; किन्तु विषधर के रूप में आनेवाले संगमदेव या मदोन्मत्त हाथी —इनमें से किसी को भी किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचाई, मात्र उनके निरंकुश एवं लोकविघातक आचरण को ही मर्यादित एवं नियंत्रित किया। बाल्यकाल से ही प्राणीमात्र के प्रति अहिंसक आचरण की यह लोकतांत्रिक दृष्टि अपने आप में एक अनुपम निदर्शन है।

युवावस्था में भी जब वह चिंतन-मग्न होते, तो उनके चिंतन का विषय आत्महित एवं लोकहित —दोनों ही रहते थे। साथ ही उस चिंतन में इतनी व्यापकता होती थी कि यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणीमात्र उसे अपनाना चाहे, तो वह प्राणीमात्र के लिये न केवल उपयोगी होता था; अपितु व्यावहारिक भी होता था। ऐसे ही एक घटनाक्रम में जब युवराज वर्द्धमान के पास एक देव अपनी आकुलता का समाधान पूछने आये, तो युवराज वर्द्धमान ने कहा कि "हे देव! मैं अतीत के बारे में अनावश्यक चिंता नहीं करता, और अनागत की कल्पनाओं में परेशान होकर व्यर्थ के जल्प नहीं करता हूँ; मात्र वर्तमान को शांत और संतुष्ट मन से जीता हूँ, इसीलिये मेरे चेहरे पर शांति और निश्चिंतता रहती है।" दीक्षा लेने के पूर्व ही उनकी ऐसी प्रशान्त मन:स्थिति हो गयी थी कि सजंयत और विजयंत नामक निर्ग्रंथ मुनिराजों की जिज्ञासाओं का निरसन भी आपकी प्रशान्त-मुखमुद्रा देखने मात्र से ही हो गया था।

प्राणीमात्र के कल्याण की भावना भगवान् महावीर के मन में इतनी प्रगाढ़ थी कि वे अपनी अपेक्षाकृत सीमित आयु जानकर गृहस्थी के चक्र में नहीं फँसे, और कुमार-अवस्था से ही सीधे निर्ग्रंथ-श्रमण की प्रव्रज्या अंगीकार कर ली। क्योंकि उन्हें जन्मत: प्राप्त अवधिज्ञान से यह विदित था कि उनकी आयु मात्र बहत्तर वर्ष है। तथा लोककल्याण के लिये यह आयु बहुत कम है और भारत का क्षेत्रविस्तार बहुत व्यापक है। इतने बड़े कार्य के लिये संसार के प्रपंच में फंसना एक बहुत बड़ी भूल होती। इसका सुफल यह आया कि जहाँ आत्महित के लिये वे बारह वर्षों तक निर्ग्रंथ मुनि की चर्या में तपस्यारत रहे; वहीं लोकहित के निमित्त 30 वर्षों तक देश भर में अपने दिव्य उपदेशों के द्वारा प्राणीमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते रहे।

इतना ही नहीं, उस समय के समाज में नारी के प्रति पुरुष की अपेक्षाकृत जो हीनदृष्टि थी, उसके निवारण के लिये मुनि-अवस्था में उन्होंने बन्दनी चन्दना के हाथों से नीरस आहार लेकर सम्पूर्ण समाज को नारी सम्मान की भावना का उदात्त-संदेश प्रदान किया। इसके साथ ही उन्होंने सामान्यजन के लिये सुलभ आहार लेकर सामान्यजनों की भावनाओं का प्रकारान्तर से सम्मान किया।

लोकतन्त्र में सूचना की स्वतन्त्रता, तथ्यपरकता एवं निष्पक्षता को चतुर्थ एवं सर्वाधिक उपयोगी स्तम्भ माना जाता है। भगवान् महावीर की धर्मसभा (समवसरण) में न केवल मनुष्यमात्र, अपितु उपदेश सुनने व समझने की सामान्य पात्रता (संज्ञी पंचेन्द्रियत्व या समनस्कता) वाले प्राणीमात्र के लिये बिना किसी बाधा या भेदभाव के प्रवेश एवं 'उपदेशश्रवण' की स्वतन्त्रता थी। यह उनकी लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों का अनन्य समर्थन माना जा सकता है। तथा उपदेश में यह कहना कि "स्वरूपत: सभी आत्मायें समान हैं, कोई छोटी-बड़ी नहीं है। तथा प्रत्येक आत्मा पुरुषार्थ करके परमात्मपद प्राप्त कर सकता है।" यह सन्देश लोकतान्त्रिक-व्यवस्था का उत्कृष्टतम आदर्श है। इसप्रकार भगवान् महावीर का चिन्तन एवं दर्शन लोकतन्त्र एवं गणतन्त्र के पूर्णत: अनुरूप है।

भगवान् महावीर ने तीर्थंकर के रूप में जब दिव्यदेशना द्वारा लोककल्याण का पुनीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्य प्रारम्भ किया, तो उन्होंने लोकतांत्रिक दृष्टि को ही प्रमुख रखा, और उसके अनुरूप लोकभाषा प्राकृत को अपने उपदेशों का माध्यम बनाया। यद्यपि उनके उपदेशों का स्वरूप ओंकारमयी दिव्यध्वनि थी, किन्तु उसकी भाषा प्राकृत सभी आचार्यों ने बतायी है। उस समय प्राकृतभाषा सामान्य जनता की भाषा थी, तथा सम्राट् आदि भी अपने आदेश और राजाज्ञायें प्राकृतभाषा में ही प्रसारित करवाते थे। महावीर के द्वारा प्राकृतभाषा को अपनाने से इस भाषा की प्रतिष्ठा और अधिक बढ़ी, जिसके परिणामस्वरूप शताब्दियों बाद होने वाले सम्राट् अशोक और सम्राट् खारवेल जैसे प्रतापी राजाओं ने भी अपने संदेश प्राकृतभाषा में ही उत्कीर्ण करवाये। भगवान् महावीर की इस युक्ति के पीछे लोकतांत्रिक प्रवेश का प्रभाव ही मूलकारण था; क्योंकि लोकतंत्र लोक की भाषा को अपने विचारों के सम्प्रेषण का माध्यम बनाने का निर्देश देता है। इसीलिये आज हमारी सरकारी तौर पर राष्ट्रभाषा हिन्दी है, न कि अंग्रेजी।

भगवान् महावीर के द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, अनेकान्त, स्याद्वाद एव अपरिग्रह जैसे सिद्धांतों के पीछे भी लोकतांत्रिक एवं गणतांत्रिक दृष्टि ही मूल थी। वे चाहते थे कि हम लोक को अपनायें तो; किन्तु उसे मात्र 'जन' के रूप में न छोड़ दें, अपितु उसे अहिंसा आदि के संस्कारों से संस्कारित कर 'गण' के रूप में प्रतिष्ठित करें। जनतंत्र से गणतंत्र तक की शिक्षा सम्पूर्ण प्राणीमात्र को देने के लिये बिना किसी सरकारी आदेश या लौकिक अधिकारों के मात्र आध्यात्मिक जागृति के संदेशों को माध्यम बनाकर जो प्रयोग भगवान् महावीर ने किये और उनका जितना व्यापक सुपरिणाम आया, उससे यह भारतवर्ष आज तक अनुप्राणित है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी स्पष्टरूप से कहा है कि "उन्होंने भारतवर्ष को स्वतंत्र कराने में भगवान् महावीर के जीवन और दर्शन से व्यापक प्रेरणा ली है, क्योंकि उनका जीवन-दर्शन लोकतंत्र एवं गणतंत्र के मूलभूत आदर्शों का अनुपम निदर्शन था।"

आधुनिक गवेषी विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है कि स्वतन्त्र भारत का संविधान बनाते समय हमारे संविधान-निर्माताओं ने जो पाश्चात्य देशों के संविधानों का अनुकरण किया है, उसी से आज हमारे देश का संवैधानिक ढाँचा सुरक्षित नहीं है। क्योंकि हमारे देश की परिस्थितियाँ और संस्कार पाश्चात्य देशों के अनुरूप नहीं है; इसीलिये उनके संविधानों को अनुसरण करके बनाया गया संविधान यहाँ कैसे उपयुक्त हो सकता है? वे कहते हैं कि यदि वैशाली गणतन्त्र का संविधान और उसके नियम यदि इस देश के संविधान में लिये गये होते, तो आज की स्थिति कुछ और ही होती। ❖❖

संयम और भावशुद्धि

'सवे हि ते संयम भावसुधी च इच्छति'। —*(सम्राट् अशोक का गिरनार अभिलेख)*

अर्थ :— निश्चय से सभी मनुष्य आत्म-संयम और भावशुद्धि चाहते हैं। ✳✳

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'श्री वर्द्धमान पुराण' में वर्णित

चन्दना-चरित

—कवि श्री नवलशाह

अनु॰ : डॉ॰ सुदीप जैन

दिगम्बर जैन आम्नाय की 'गोलापूर्व जाति' के 'बड़चदेरिया वंश' एवं 'प्रजापति गोत्र' में उत्पन्न कविवर श्री नवल शाह बुन्देलखण्ड के गौरवशाली कवि थे। आपके पिता का नाम देवाराय तथा माता का नाम प्राणमती था। सोलह अधिकारों में विभक्त इस ग्रंथ की रचना विक्रम-संवत् 1825 में फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा, बुधवार के दिन सम्पन्न हुई थी। कविवर नवल शाह के अनुसार इस ग्रंथ का आधार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृतभाषा निबद्ध 'वर्द्धमानचरित' नामक ग्रंथ है। इसी के आधार पर बुन्देलखंडी भाषा में इस काव्यग्रंथ की रचना की गयी है।

—सम्पादक

वनवासा विहरत भगवान, कथा और अब सुनहु सुजान।
सिद्ध देश विशाल पुर सार, चेटक नाम नृपति गुण भार।।
तिनके सात सुता ऊपनी, प्रथमहि त्रिशला मात जिन तनी।
दूजी ज्येष्ठा रुद्रहि माय, तृतीय चेलना श्रेणिक लाय।।
चौथी मशक पूर्व जननीय, पंचमि सुता चन्द्रमा प्रीय।
रूपवंत रति तैं अधिकार, शील शिरोमणि गुण अधिकार।।
सो सब जो मैं वर्णन करौं, होय अवार पार नहिं धरौं।
एक समय वन क्रीड़ा गई, कामातुर खगपति हर लई।।
ता पीछे चिंत्यौ सब सोइ, निज त्रिय की भय कंपति होइ।
ताको छोड़ महा उद्यान, खगपति गयौ आपने थान।।
वन में सो सुन्दरि एकली, पूरब करम भजै मन रली।
मन में पंच परम गुरु आन, धरम ध्यान निहचै परवान।।
इह अवसर इक वनचर आय, अवलोकी सुंदरि को जाय।
रूपवंत लक्षण संजुत्त, ले आयो सो ताहि तुरंत।।
कौशाम्बी पुर नगर महान, वृषभसेन तहँ सेठ सुजान।
तिहि को आनि दई नर ताहि, अति प्रमोद कर लीनी वाहि।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताके गेह सुभद्रा नार, देहि चन्दना मनहिं विचार।
रूपवंत नवजीवन जान, मन में सौत शंक अतिमान।।
रूप हनन को उद्यम कियौ, कष्ट चन्दना को तिहि दियौ।
अधिक पुराने कोदौं बीज, स्वाद रहित मन में सो खीज।।
तक्र सहित मृत भाजन माहिं, सो दीनौ दुरबुद्धिनि ताहि।
खाय नहीं रोवै जब खरी, पापिन और उपाय जु करी।।
बन्धन बांधि आखननि धरी, बहुत भांति बहु संकट परी।
भुगतै पूरब करम जु धीर, धर्म्मध्यान नहि तजै शरीर।।
तिहिं अवसर वाही पुर पाय, चरजाहित आये जिनराय।
देख चन्दना प्रभु को सबै, बन्धन टूट गये वपु सबै।।
तनके सकल शोक नश गये, परम हुलास चित्तमें भये।
सन्मति प्रभु पद प्रनमैं आय, हस्त जोर भुवि शीस लगाय।।
पडगाहे विधिपूर्वक सोइ, भक्तिभाव अति उरमे ओइ।
शील महत्त्व सबै यह जान, पाये प्रभु को कृपानिधान।।
सो वह तक्र कोदवन वोद, तंदुल खीर भयौ अनुमोद।
माटी पात्र हेम मय सोय, धरम तनैं फल कहा न होय।।
वही अन्त प्रासुक विधि सार, दीनौ प्रभुको परम अहार।
भक्तिभाव ताके उर भयौ, नवप्रकार विधि पुण्य जु लयौ।।
पंचाश्चर्य किये सुर छाय, रतनादिक वरषा अधिकाय।
ले अहार प्रभु वनको गये, ध्यानारूढ़ आतमा नये।।
वृषभसेन प्रनमैं पद आय, तुम हो सती शिरोमणि माय।
अरु बहु अस्तुति कीनी सबै, मो अपराध क्षमा कर अबै।।
होइ दान सों सुख अधिकाय, संकट विकट सबै मिट जाय।
क्षणभंगुर जाने संसार, प्रभु पद लहौ महाव्रत धार।।

लहो चन्दना दान फल, जग में जस अधिकाय।
शील सहित दीक्षा लई, भई अर्जिका जाय।।

—(दशम अधिकार, पद्य 354-374)

अनुवाद :— मुनिराज वर्द्धमान वन में वास करते हुये विहार कर रहे थे, उसी प्रसंग की एक और कथा हे सज्जनो ! सुनो। विशालपुर (वैशाली) नाम का एक प्रसिद्ध और समृद्ध देश (गणतंत्र) था, जिस पर गुण-सम्पन्न राजा चेटक राज्य करता था।

इन राजा चेटक के सात पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं, जिनमें सर्वप्रथम पुत्री का नाम प्रियकारिणी त्रिशला था, वर्द्धमान महावीर की माँ बनी। दूसरी पुत्री का नाम ज्येष्ठा था,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो रुद्र की माँ थी। तीसरी पुत्री चेलना का विवाह राजा श्रेणिक के साथ हुआ था।

चौथी पुत्री मशक (अपरनाम प्रभावती थी, जिनका विवाह सिंधु-सौवीर देश के राज-परिवार में हुआ था)। इनमें सबसे छोटी पुत्री का नाम चन्दना था, जो माता-पिता की अत्यंत लाडली थी; तथा अपनी रूपराशि से रति (कामदेव की पत्नी) को भी विजित करती थी, शील की शिरोमणि थी और गुणों से सम्पन्न थी।

इसके विषय में जो कुछ भी मैं वर्णन करनेवाला हूँ, वह वर्ण्य-विषय अपार है, और मैं उसका पार नहीं पा सकता हूँ (फिर भी विशेष भक्तिवश मैं उस महासती चन्दना का चरित्र-वर्णन करने जा रहा हूँ)। एक बार वह चन्दना वनक्रीड़ा के लिये गई, वहाँ पर वह एक कामातुर यक्ष के द्वारा हरण कर ली गई।

इस घटना के बाद उस यक्ष ने चिंता की और वह अपनी पत्नी के भय से कम्पायमान हो उठा। तदुपरान्त वह यक्ष चन्दना को महाभयंकर वन में छोड़ करके अपने निवास-स्थान चला गया।

उस भयंकर जंगल में वह सुन्दरी चन्दना अकेली अपने पूर्वकर्मों को स्मरण करती हुई दु:खी हो रही थी। (इस विषम स्थिति में भी) वह मन में पंच-परमेष्ठी का स्मरण करते हुये निश्चय धर्म-ध्यान को प्राप्त करने की चेष्टा करने लगी।

इसी बीच एक वनवासी भील वहाँ आया। वह उस बियावान जंगल में उस अकेली रूपवती, सुलक्षणा सुन्दरी को देखकर उसको बलपूर्वक अपने साथ अपने घर ले गया। (वहाँ पर उस भील की पत्नी के द्वारा चन्दना के शील की रक्षा हुई, तब उस भील ने अपने कबीले के सरदार को चन्दना भेंट कर दी। कबीले के सरदार की कामवासना से वनदेवता के द्वारा चन्दना की रक्षा की गई; तब उस सरदार ने प्रतिशोध की भावना से भरकर उसे कौशाम्बी नगरी के दासी-पण्य में ले जाकर बेच दिया)।

उस महान् कौशाम्बी नगरी में वृषभसेन नामक सज्जन श्रेष्ठि रहते थे। संयोगवश वह चन्दना उस दासी-पण्य के प्रमुख के द्वारा इन्हीं वृषभसेन सेठ को दी गयी, और श्रेष्ठि वृषभसेन ने भी (अपनी पुत्री के समान जानकर) अत्यंत प्रमोदपूर्वक उसे स्वीकार किया।

उन श्रेष्ठि वृषभसेन की धर्मपत्नी का नाम सुभद्रा था, अत: अत्यंत प्रीतिपूर्वक श्रेष्ठी ने चन्दना को पत्नी सुभद्रा के हाथों में सौंप दिया। चन्दना को रूपवती और नवयौवना जानकर मन में अपनी सौत की आशंका करते हुये सेठानी सुभद्रा शंकाग्रस्त हो गई।

(श्रेष्ठि वृषभसेन के व्यापार-निमित्त प्रवास पर जाने पर) सेठानी सुभद्रा ने चन्दना को विरूप बनाने के अनेक प्रयत्न किये, और अनेकप्रकार के कष्ट दिये। वह चन्दना को ईर्ष्याभाव से ग्रस्त होकर स्वादरहित पुराने कोदों के बीज खाने को देती थी।

मट्ठे के सहित मिट्टी के बर्तन में उस दुर्बुद्धिनी सेठानी के द्वारा ऐसा भोजन चन्दना को दिया जाता था कि उसे देखकर चन्दना खाती नहीं थी और अपने दुर्भाग्य पर रोती थी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो उस पापिनी सेठानी के द्वारा उसे कष्ट देने के और भी उपाय किये जाते।

वह उसे बन्धनों में बाँधकर तलघर में बन्द कर देती, और भी अनेकप्रकार के कष्ट देती थी। सती चन्दना इन सब कष्टों को पूर्वकृत कर्मों का उदय मानकर धैर्यपूर्वक सहन करती थी, और धर्मध्यान करते हुये शरीर को धारण करती थी।

इसी प्रसंग में उस कौशाम्बी नगरी में आहारचर्या के निमित्त मुनिराज वर्द्धमान पधारे, (मुनिराज वर्द्धमान की जय-जयकार का घोष सुनकर चन्दना के मन में उन्हें आहारदान देने का प्रबल भाव जागृत हुआ, जिसके परिणामस्वरूप) उसके शरीर के सब बन्धन टूट गये; और वह निर्बन्ध हो गई।

उसके शरीर के समस्त शोक के चिह्न नष्ट हो गये, तथा उसका चित्त परम उल्लास से भर गया। उसने सन्मति प्रभु (मुनिराज वर्द्धमान) के चरणों में सविनय हाथ जोड़कर भूमि पर सिर झुकाकर पंचांग प्रणाम किया।

इसप्रकार चन्दना ने विधिपूर्वक मुनिराज वर्द्धमान को पड़गाहा और हृदय में अत्यंत भक्तिभाव से ओतप्रोत हो गई। यह सब शील की महिमा ही जानो कि (अभागी चन्दना ने) कृपानिधान प्रभु को (आहारदान देने का सौभाग्य) प्राप्त कर लिया।

शील की महिमा से ही वह नीरस मट्ठे और कोदों का समूह दूध-चावल की खीर बन गया और मिट्टी का पात्र स्वर्णमय हो गया। किसी ने ठीक ही कहा है कि धर्म के प्रभाव से क्या नहीं हो जाता? अर्थात् सभी कुछ संभव है।

प्रभु वर्द्धमान को प्रासुक-विधि से दिया गया यही उत्कृष्ट आहार था, जिसके परिणामस्वरूप चन्दना के हृदय में भक्ति का भाव जागा, और नौ प्रकार के पुण्य का उपार्जन चन्दना ने किया।

इस अवसर पर आकाश से देवताओं ने पंचाश्चर्य किये, और प्रचुर परिमाण में रत्नों की वर्षा की। चन्दना से आहार-ग्रहण करके मुनिराज वर्द्धमान पुन: जंगल में चले गये, और वहाँ ध्यानस्थ होकर बैठ गये।

(इसी समय श्रेष्ठि वृषभसेन कौशाम्बी नगर में वापस लौटे, और उन्होंने वह पूरा घटनाक्रम जाना, तो) वृषभसेन ने चन्दना के चरणों में प्रणाम किया और कहा कि हे माँ ! तुम सती नारियों में शिरोमणि हो। इसप्रकार उसने बहुत प्रकार से स्तुति की और कहा कि अब आप कृपापूर्वक मेरे और मेरे परिजनों के अपराध को क्षमा करें।

दान के परिणाम से प्राणी सुखी हो जाता है, और उसके भयंकर से भयंकर संकट दूर हो जाते हैं। संसार को क्षणभंगुर जानकर चन्दना ने प्रभु (महावीर) के चरणों में जाकर पंच-महाव्रत धारण कर दीक्षा अंगीकार की।

दान के परिणामस्वरूप चन्दना ने लोक में भरपूर यश अर्जित किया तथा शील-सहित दीक्षा लेकर वह आर्यिका बन गई। ❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर-देशना के अनुपम रत्न : अनेकान्त एवं स्याद्वाद

—डॉ० सुदीप जैन

भगवान् महावीर के दर्शन के चार आधार-स्तम्भ हैं— आचार में अहिंसा, विचार में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद एवं जीवन में अपरिग्रह। इनमें से क्रमश: चिन्तन एवं वचन के परिष्कारक दो अनमोल सिद्धान्त 'अनेकान्त' एवं 'स्याद्वाद' यहाँ संक्षेपत: विवेचित हैं—

वैचारिक सहिष्णुता का सिद्धान्त : अनेकान्त

मनुष्य के मस्तिष्क में विचारों की उत्पत्ति समनस्कता के कारण होती ही रहती है। किन्तु दिशाहीन एवं लोकहित से रहित विचारों को वस्तुत: बौद्धिक-व्यापार का चिह्न नहीं माना गया है। 'खाली दिमाग शैतान का घर' जैसी लोकोक्तियाँ ऐसे चिन्तनों को चरितार्थ करती हैं। परन्तु जो चिंतन सुव्यवस्थित, तार्किक एवं दिशाबोधक होते हुए भी पूर्वाग्रह अथवा अहंमन्यता के कारण पर विचार-असहिष्णु हो जाते हैं, उन्हें 'ऐकान्तिक चिन्तन' कहा जाता है। इसीकारण दार्शनिक जगत् में दो प्रकार के वैचारिक वर्गीकरण मिलते हैं— 1. एकान्तवादी दार्शनिक विचारधारा और 2. अनेकान्तवादी दार्शनिक विचारधारा।

भारतीय आर्य-संस्कृति की दो मूलधारायें हैं— 1. श्रमण-परम्परा और 2. वैदिक या ब्राह्मण-परम्परा। इनमें से श्रमण-परम्परा अनेकान्तवादी चिन्तन की पक्षधर रही है और वैदिक-परम्परा एकान्तवादी विचारों की पोषक रही है। क्योंकि वेदों को 'एकान्तवादी दर्शन' के रूप में माना गया है—

"एकान्तदर्शना वेदा:" —*(महाभारत, मोक्षधर्म, शांतिपर्व, 2/306/46)*

इसी वैचारिक अन्तर के कारण इन दोनों धाराओं में व्यापक मतभेद भी रहे, और इसी कारण से **"श्रमण-ब्राह्मणम् — येषां च विरोध: शाश्वतिक: इत्यवकाश:"** —*(पातंजल महाभाष्य, 1/4/911)* जैसे वाक्य भी प्रचलन में आ गये; फिर भी मनभेद न रखकर ये दोनों धारायें भारतीय संस्कृति को गतिशील बनाये हुये हैं।

वस्तुत: प्रत्येक पदार्थ का स्वरूप अनेकान्तात्मक ही है। यह अनेकान्तात्मकता स्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तु को ही इष्ट है, उसमें ही निहित है; तो उस पर आक्षेप या आपत्ति खड़ी करने का किसी भी व्यक्ति को क्या अधिकार है? **आचार्य समन्तभद्र** इसी बात को इन शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं— **"यदीदं स्वयसमर्थेभ्यो रोचते, तत्र के वयम् ।"**

तथा किसी भी पसन्द या नापसन्द के आधार पर वस्तु का स्वभाव तो बदलने से रहा; अत: हमें अपनी दृष्टि बदलनी होगी तथा वस्तु की अनन्तधर्मात्मकता या अनेकान्तात्मकता को वाचित स्वीकृति देनी होगी। तब हमारे पास 'स्याद्वाद' की कथनशैली अपनाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं बचेगा। यहाँ तक कि जिन दर्शनों एवं दार्शनिकों ने 'स्याद्वाद' की कथन-पद्धति एवं 'अनेकान्तात्मक' वस्तुस्वरूप की स्वीकृति नहीं भी की है; उन्हें भी प्रकारान्तर से इन दोनों को मानना पड़ा है। कतिपय निदर्शन द्रष्टव्य हैं—

"नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत: ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभि: ।।"

—(गीता, 2/96; योगवाशिष्ठ, 3/7/38)

भाष्य— **"एवमात्मनात्मनो: सदसतो: उभयो: अपि दृष्ट उपलब्धोऽन्त: निर्णय: सत् सदेवासदेवेति त्वनयो यथोक्तयो: तत्त्वदर्शिभि: ।"**

अर्थ *:— इसप्रकार 'सत्' आत्मा और 'असत्' अनात्मा —इन दोनों का ही यह निर्णय तत्त्वदर्शियों द्वारा देखा गया है, अर्थात् प्रत्यक्ष किया जा चुका है कि 'सत्' सत् ही है और 'असत्' असत् ही है।*

लगभग इसी तथ्य को परमपूज्य आचार्य **कुन्दकुन्द** इन शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं :— **"भावस्स णत्थि णासो, णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो ।**
एवं सदो विणासो, असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो ।।"

अर्थ *:— 'सत्' रूप पदार्थ का नाश नहीं हो सकता है तथा 'असत्' का उत्पाद नहीं हो सकता है। पदार्थ अपने गुण-पर्यायों व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप रहते हैं।*

एक अन्य निदर्शन देखें— **"नैकस्मिन्नसम्भवात्"** *—(आ० बादरायण, 'ब्रह्मसूत्र', 2/2/23)*

शांकरभाष्य— "न चैषां पदार्थानामवक्तव्यत्वं सम्भवति। अवक्तव्याश्चेन्नोचयेरन्। उच्यन्ते चावक्तव्याश्चेति विप्रतिषिद्धम्।"

अर्थ *:— ये पदार्थ सर्वथा अवक्तव्य हैं —ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि यदि वे सर्वथा अवक्तव्य हों, तो उच्चरित नहीं हो सकते। यदि उच्चारण में भी आते हैं और अवक्तव्य भी हैं —ऐसा तो विप्रतिषिद्ध (तुल्यबलविरोध) है।*

उपनिषद्कार इस विषय में लिखते हैं—**"व्यक्ताव्यक्तम् ।"** *—(श्वेताश्वतरोपनिषद्, 1/8)*

अर्थात् वस्तु 'व्यक्त' और 'अव्यक्त' —दोनों रूप है। जैसेकि मेंहदी में हरा रंग व्यक्त है तथा लाल रंग अव्यक्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसीलिए शंकराचार्य ने लिखा है कि—

"महाद्भुताऽनिर्वचनीयरूपा।" —*(विवेकचूड़ामणि, 111)*

अर्थ :— तत्त्व महान्, अद्भुत और अनिर्वचनीय है।

वस्तुतत्त्व के इस विशिष्टरूप को वस्तुस्वभाव के अनुसार ही समझा जा सकता है, 'तर्क' के व्यायाम द्वारा नहीं। **आचार्य समंतभद्र** लिखते हैं—

"स्वभावोऽतर्कगोचरः।" —*(आप्तमीमांसा, 100)*

जहाँ वेदान्तदर्शन सम्पूर्ण जगत् को अद्वैतब्रह्ममय कहता है; वहीं सांख्य, वैशेषिक आदि अन्य वैदिक-दर्शन-जगत् को भेदाभेद एवं एकानेकरूप प्रतिपादित करते हैं। यदि ब्रह्म-अद्वैत है, तो जीव की सत्ता है या नहीं? —इसका उत्तर देते हुए गीताकार लिखते हैं— **"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।"** —*(गीता, 15/7)*

*अर्थात् इस जीवलोक में समस्त जीवराशि मुझ ब्रह्म या ईश्वर का ही सनातन अंश है। इसी बात को **संत तुलसीदास** (रामचरितमानस, बालकाण्ड) लिखते हैं—*

"ईश्वर-अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखराशी।"

यह अंश-अंशी का स्वतंत्र सनातन अस्तित्व 'द्वैतवाद' का पोषक है।

'वेद' भी इस तथ्य का समर्थन करते हैं—

"एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।" —*(ऋग्वेद, 16)*

अर्थात् उस एक सत् को ही विद्वज्जन अनेक प्रकार से कहते हैं।

जैनों की 'स्याद्वाद' शैली के द्वारा वस्तु के अनेकान्तात्मक की स्वीकृति की पुष्टि **शंकराचार्य** ने भी की है—

"अपरे वेदबाह्या दिगम्बरा एकस्मिन्नेव पदार्थे भावाभावौ मन्यते।"

—*(ब्रह्मसूत्र, विज्ञानामृतभाष्य, 2/2/33)*

अर्थात् अन्य जो वेदबाह्य दिगम्बर लोग हैं, वे एक ही पदार्थ में भाव (अस्ति) और अभाव (नास्ति) धर्मों को युगपत् मानते हैं।

ऐसा नहीं है कि अनेकांत की अवधारणा जैनेतरों में नितांत अस्वीकृत रही है। वैदिक वाङ्मय ने भी अनेकांत के तत्त्व मिलते हैं, भले ही उन्होंने अनेकांत के सिद्धांत को स्वीकार न किया हो।

असति सत् प्रतिष्ठितं, सति भूतं प्रतिष्ठितम्। —*(अथर्ववेद, 17/1/19)*

अर्थात् 'असत्' में ही 'सत्' प्रतिष्ठित है, 'सत्' में भी 'असत्' प्रतिष्ठित है।

'अनेकान्तवाद' यह एक सिद्धान्त ही नहीं, अपितु एक विशिष्ट चिन्तशैली का भी परिचायक है, जो पर-विचार-सहिष्णुता का मंत्र प्रदान करता है। एकान्तवादी चिन्तन को प्रकारान्तर से 'वैचारिक हिंसा' भी विद्वानों ने माना है। 'अनेकान्तवाद' के इस पक्ष पर प्रख्यात मनीषी **डॉ० मंगलदेव शास्त्री** के विचार मननीय हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अनेकान्तवाद' का मौलिक अभिप्राय यही हो सकता है कि तत्त्व के विषय में आग्रह न होते हुए भी उसके विषय में तत्तदवस्था भेद के कारण दृष्टिभेद संभव है। इस सिद्धान्त की मौलिकता में किसको सन्देह हो सकता है? क्या हम

"श्रुतयो विभिन्ना: स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।" —*(महाभारत)*

"यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद स:।

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।।" —*(केनोपनिषत्, 2/3)*

इत्यादि वचनों को मूल में अनेकान्तवाद का ही प्रतिपादक नहीं कह सकते? दर्शन शब्द ही स्वत: दृष्टिभेद के अर्थ को प्रकट करता है। इस अभिप्राय से जैनाचार्यों ने अनेकान्तवाद के द्वारा दार्शनिक आधार पर विभिन्न दर्शनों में विरोध-भावना को हटाकर परस्पर समन्वय स्थापित करने का एक सत्प्रयत्न किया है।

अनेक अवस्थाओं से बद्ध, विभिन्न दृष्टिकोणों से पदार्थों को देखने का अभ्यासी, मनुष्य किसी पदार्थ के अखण्ड सकल-स्वरूप को कैसे जान सकता है? उन अखण्ड मूलस्वरूप को हम सच्चे अर्थ में **"गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्"** कह सकते हैं। **"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि"** (यजुर्वेद, पुरुषसूक्त) —इस वैदिकश्रुति का भी वास्तविक तात्पर्य यही है। इसमें सन्देह नहीं कि जैनदर्शन में प्रतिपादित अनेकान्तवाद के इस मौलिक अभिप्राय को समझने से दार्शनिक जगत् में परस्पर विरोध तथा कलह की भावनाओं के नाश से परस्पर सौमनस्य और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

जैनधर्म की भारतीय संस्कृति को बड़ी भारी देन अहिंसावाद है। जो कि वास्तव में दार्शनिक-भित्ति पर स्थापित अनेकान्तवाद का ही नैतिकशास्त्र की दृष्टि से अनुवाद कहा जा सकता है। धार्मिक दृष्टि से यदि अहिंसावाद को ही जैनधर्म में सर्वप्रथम स्थान देना आवश्यक हो, तो हम अनेकान्तवाद को ही उसका दार्शनिक दृष्टि से अनुवाद कह सकते हैं। 'अहिंसा' शब्द का अर्थ भी मानवीय सभ्यता के उत्कर्षानुत्कर्ष की दृष्टि से भिन्न-भिन्न किया जा सकता है। एक साधारण मनुष्य के स्थूल विचारों की दृष्टि से हिंसा किसी की जान लेने में ही हो सकती है। किसी के भावों को आघात पहुँचाने को वह हिंसा नहीं कहेगा; परन्तु एक सभ्य मनुष्य तो विरुद्ध विचारों की असहिष्णुता को भी हिंसा ही कहेगा। उनका सिद्धान्त तो यही होता है कि—

"अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन् अनर्थायोपपद्यते।।
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहत: शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्य:।।"

—*(विदुरनीति, 2/77, 80)*

सभ्य-जगत् का आदर्श विचार-स्वातन्त्र्य है। इस आदर्श की रक्षा अहिंसावाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(हिंसा-असहिष्णुता) के द्वारा ही हो सकती है। विचारों की संकीर्णता या असहिष्णुता ईर्ष्या-द्वेष की जननी है। इस असहिष्णुता को हम किसी अन्धकार से कम नहीं समझते। आज हमारे देश में जो अशान्ति है, उसका एक मुख्य कारण यही विचारों की संकीर्णता है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य में पाया जानेवाला **'आनृशंस्य'** शब्द भी इसी अहिंसावाद का द्योतक है। इसप्रकार के अहिंसावाद की आवश्यकता सारे संसार को है। जैनधर्म के द्वारा इसमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। उपर्युक्त दृष्टि से जैनदर्शन भारतीय दर्शनों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

अनेकांतवाद शब्द का प्रयोग वैदिक परम्परा के 'विष्णुपुराण' (18/10-11) में भी हुआ है। जैनदर्शन में तो अनेकांत को प्राणतत्त्व ही माना गया है—

तुहवयणं चिय साहइ णूणमणेगंतवाय वियड यहं।
तह हिदयपगासयरं सव्वण्णूत्तमप्पणो णाह।। —*(उसहदेवत्थोत्तं, 33)*

अर्थ :— हे तीर्थंकर भगवान् वृषभदेव ! आपके दिव्यध्वनि से प्रसूत वचन निश्चय से अवश्य ही 'अनेकांतवाद' के विकट पथ को सिद्ध करते हैं, तथा हे वृषभनाथ ! आपश्री का स्वयं का सर्वज्ञत्व भव्य-मानव के हृदयरूपी कमल को प्रकाशित करनेवाले सूर्य के समान है।

आचार्य सिद्धसेन ने अनेकांत को इस लोक का अद्वितीय गुरु संभवत: इसी चिंतन के कारण प्रतिपादित किया है कि इसके बिना वस्तुस्वरूप का ज्ञान एवं प्रतिपादन दोनों ही संभव नहीं है।

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वहदि।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स।।

—*(आचार्य सिद्धसेन, सन्मतिसूत्र, 3/69)*

अर्थ :— जिसके बिना लोक का भी व्यवहार कदापि नहीं हो सकता है, ऐसे उस विश्व के एक अद्वितीय गुरु 'अनेकांतवाद' के लिये नमस्कार है।

जैनाचार्यों ने अनेकांत को 'पारमेश्वरी विद्या' *(पारमेश्वरीमनेकान्तवाद विद्यामुपगम्य, प्रवचनसार, पृष्ठ 2)* एवं 'विरोध का नाशक' *(विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्, पुरुषार्थसिद्धियुपाय, 1/2)* कहा है। आचार्य सिद्धसेन तो इसे 'मिथ्यादर्शन के समूह का विघातक' भी कहते हैं :—

भद्दं मिच्छादंसण-समूहमहयस्स अमयसारस्स।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्ग सुहाहिगम्मस्स।।

—*(आचार्य सिद्धसेन, सन्मतिसूत्र, 3/60)*

अर्थ :— एकांत मिथ्यादर्शनों के समूह का मथक अमृतसाररूप तथा तत्त्वज्ञ आचार्य मुनिजनों द्वारा सुखपूर्वक जाने गये ऐसे महत्त्वशाली तीर्थंकर सन्मति भगवान् के वचन से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमुमुक्षु-जगत् का कल्याण हो।

इस अनेकांतवाद का वाचिक परिचायक 'स्यात्' शब्द माना जाता है।

"तस्यानेकान्तवादस्य लिंगं स्याच्छब्द उच्यते।
तदुक्तार्थे बिनाभावे, लोकयात्रा न सिद्ध्यति।।"

—(*आचार्य जटासिंहनंदि, वरांगचरित, 26/83*)

अर्थात् उस अनेकांतवाद का लिंग (प्रधानचिह्न) 'स्यात्' शब्द है, जिसके कहे बिना लोक-व्यवहार भी नहीं चल सकता है, अर्थात् सिद्ध नहीं हो सकता है।

यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचारबिन्दु है कि अनेकान्तपरक चिन्तन के बिना लोक का व्यवहार ही नहीं चल सकता है। संकीर्ण विचारधारा से लोक में काम कभी नहीं चला है, चिन्तन की उदारता (विशालता या व्यापकता) इसमें प्रतिपल अपेक्षित है। अन्यथा 'शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व' जैसी आधुनिक सुन्दर विचारणायें कभी भी मूर्तरूप नहीं ले सकेंगीं। किसी भी संघटन या समवाय में अनेकविध व्यक्ति चाहिए, अन्यथा उसका कार्य सुचारुरूप से नहीं चल सकेगा। यहाँ तक कि उसके विरोधी भी चाहिये। यदि वे नहीं हों, तो सावधानवृत्ति एवं विचारशुद्धि निश्चितरूप से बाधित होगी। विरोध करने वालों को नीतिविदों ने 'उपकारक' कहा है; क्योंकि यदि वे न हों, तो अनुयायी अहंकार की वृद्धि कर विचारों को कलुषित बना देते हैं। जैसे राख से मंजे बर्तन चमक उठते है; उसीप्रकार विरोधी विचारधारा भी वैचारिक सहिष्णुता एवं परिष्कार के लिए अनिवार्य है। कहा भी है—

"निंदक नियरे राखिये आंगन कुटी छवाय।
जे साबू-पानी बिना, निर्मल करें सुभाय।।"

इसीलिये विवेकजन 'विरोध' को 'विनोद' समझते हैं। और उससे वे अपने चिंतन एवं प्ररूपण में निरन्तर विकास, परिशोधन एवं अनुसंधान करते रहते हैं। अत: अनेकान्तात्मक चिन्तन मनुष्य के विचारों को व्यापक एवं सहिष्णु बनाता है।

अनेकान्त वस्तु का स्वरूप है — यह स्वीकृति मनुष्य को 'अनेकान्तवाद' के अन्वेषण के अहंकार से भी दूर रखती है। तथा पारस्परिक सौहार्द को तो बढ़ाती ही है।

वाचिक सहिष्णुता का सिद्वान्त 'स्याद्वाद'

इस विश्व में यों तो **दो इन्द्री** (द्वीन्द्रिय) जीवों से ही वचन-क्षमता मानी गयी है, अर्थात् वे भी बोल सकते हैं। अत: बोल लेना —यह कोई बड़ी गौरवशाली उपलब्धि नहीं है। महत्त्व तो इस बात का है कि 'क्या बोला और कैसे बोला?' जैनाचार्य न्यायग्रंथों में जैनसिद्धान्त का स्पष्ट विरोध करनेवाली बातों से 'पूर्वपक्ष' के रूप में कई पृष्ठ भर देते हैं, और उसके अन्त में "इति केचित्" कहकर उन बातों से अपना साफ पल्ला झाड़ लेते हैं कि "यह तो अन्य कोई कहते हैं —यह हमारी मान्यता नहीं है।" इससे सिद्ध होता है कि वचनों की विषयवस्तु से भी अधिक महत्त्वपूर्ण होती है वक्ता की वक्तृत्वशैली; उसी से वस्तु का निर्दोष एवं यथार्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवबोध होता है। अन्यथा तो सही विषय को भी गलत समझा जा सकता है और उसका अनर्थकारी प्रभाव भी हो सकता है। 'राम' का नाम यथार्थ और सत्य है, किन्तु मांगलिक प्रसंगों पर यदि 'राम नाम सत्य है' का घोष कर दिया जाये, तो वह लोकपरंपरा-विरुद्ध होने से आपके लिए नाई के खर्च की बचत भी करा सकता है।

लोक में कहावत है कि एक बार दाँतों और जीभ के बीच तकरार हो गयी। दाँतों ने अकड़कर कहा कि "अरी जीभ ! तू नाजुक-सी चीज है, ज्यादा इधर-उधर मत घूमा कर, नहीं तो हम बत्तीस हैं और वज्र-सदृश कठोर भी हैं; तुझे चबा डालेंगे।" जो जीभ बोली "दन्त महाशयो ! इतना मत इतराईये, नहीं तो अभी किसी पहलवान को तीखी-सी गाली दूँगी; तो बत्तीसों के बत्तीस आसनच्युत होकर धूलधूसरित नज़र आओगे।"

कहने का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि वाच्य-विषय एवं वाचनशैली — दोनों का यदि संतुलित एवं मर्यादित व्यवहार नहीं हो, तो वचनों का अनर्थकारी रूप भी हो सकता है; तथा यदि यही सुनियोजित एवं मर्यादित हो, तो वह पुष्पार्चन-योग्य भी बना सकता है। इसीलिए किसी की 'बोली गोली-सी' लगती है, तो किसी के वचनामृत 'मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं', प्रतीत होते हैं।

लोक में अनेक प्रकार के जीव हैं, उनकी विविध मान्यतायें हैं। और इसके भी महत्त्वपूर्ण कारण हैं। जहाँ वैयक्तिक समझ एवं योग्यता कारण हैं, वहीं वस्तु की अनन्त धर्मात्मकता एवं संसारी प्राणों की सीमित समझ भी सर्वाधिक महनीय कारण हैं। अनन्त धर्मात्मक वस्तु को क्षुद्रक्षयोपशमवाला संसारी प्राणी पूर्णत: समझ नहीं पाता है, और अपनी सीमित समझ को ही कूपमंडूकवत् 'सर्वज्ञोऽहं' मानता हुआ "यह ऐसा ही है" के वचनप्रयोग से विवाद खड़ा करता है; जैसे कि छह अंधे हाथी के विभिन्न अंगों को टटोलते हुये हाथी को परस्पर विरुद्ध नानारूपों वाला प्रतिपादित करके परस्पर कलह उत्पन्न करते हैं। कदाचित् उनमें स्पर्शज्ञान के अतिरिक्त अन्यधर्म-अवलोकनी दृष्टि भी होती, तो ऐसी दुरवस्था नहीं होती। इससे स्पष्ट है कि यदि जिनकी दृष्टि व्यापक नहीं है तथा ज्ञान विशद नहीं है, तथा 'जितना मैंने देखा-जाना—वही सत्य है' का पूर्वाग्रह भी है; तो उन लोगों के वचन मात्र विसंवाद के ही निमित्त हो सकते हैं।

वस्तुतत्त्व के अनन्तधर्मों के प्रति अपार जिज्ञासा एवं विनयभाव के साथ-साथ यदि वाचिक-सहिष्णुता भी हो, तो व्यक्ति के वचन हित-मित-प्रिय हुये बिना नहीं रह सकते। इसी वचनशैली के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप की अभिव्यक्ति का नाम है 'स्याद्वाद', जो कि जैनदर्शन के स्तम्भ-चतुष्टय (अहिंसा, अनेकान्त, स्याद्वाद, अपरिग्रह) में से अन्यतम है।

'स्याद्वाद' पद में दो पद हैं—'स्यात्' एवं 'वाद'। इनमें से 'स्यात्' पद 'क्वचित्', 'कथंचित्' या 'किसी अपेक्षा से' —इस अर्थ को सूचित करनेवाला 'निपात' है। तथा 'वदनं वाद:' की व्युत्पत्ति के अनुसार 'वाद' शब्द का अर्थ है 'कथन'। इसप्रकार समुच्चयरूप से 'स्याद्वाद' पद का अर्थ है 'एक ऐसी कथनपद्धति, जिसमें विवक्षित धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का कथन तो हो; किन्तु अन्य अवशिष्ट धर्मों का निषेध न होकर उनकी विनम्र स्वीकृति भी हो' अथवा 'जो कथन किया जा रहा है, वह सर्वथा न होकर किसी अपेक्षा विशेष से ही है और उसे उसी मर्यादा में समझना चाहिये।'

आद्य शंकराचार्य 'स्यात्' पद की प्रयोगविधि को अपनी स्वीकृति प्रदान करते हुये लिखते हैं— **"सत्यत्वं एवं स्याद् यथा अर्थवादानां विधिशेषाणाम्।"**

—('गीता' का शांकरभाष्य, 18/66)

अर्थ:—विधिवाक्य के अन्त में कहे जाने वाले 'अर्थवाद' वाक्यों की सत्यता 'स्यात् एव' से मानी जाती है, यथा—'स्यात् पार्थ: धनुर्धर एव'।

चूँकि शब्द की सामर्थ्य सीमित है तथा वस्तु का स्वरूप अनन्त धर्मात्क है, अत: वस्तु के पूर्णरूप को युगपत् कहने में शब्द सदैव असमर्थ रहते हैं। इसीलिए वस्तु को शब्दों के द्वारा 'अवक्तव्य' या 'अकथनीय' भी कहा गया है। इसी तथ्य के **आचार्य समन्तभद्र** लिखते हैं:— **"सहावाच्यादवक्तव्य:।"**

किन्तु जैन यह 'अवक्तव्यत्व' भी मात्र यौगपद्य कथन की अपेक्षा मानते हैं, सर्वथा नहीं। इसीलिए 'स्यात् अवक्तव्य' के रूप में वे वस्तुतत्त्व का कथन करते हैं, जो निर्दोष है। 'सर्वथा अवक्तव्य' मानते ही वह वचन सदोष हो जाता है। वस्तु को वेदान्तदर्शन ने 'अनिर्वचनीय' तथा बौद्धदार्शनिकों ने 'अव्याकृत' कहकर 'अवक्तव्य' माना है; किन्तु वहाँ 'स्यात्' पद का प्रयोग न होने से वे वचन पूर्णत: निर्दोष नहीं हैं।

इसीप्रकार नानाधर्मों का कथन करते समय वस्तु का 'स्याद्वाद' शैली से विवेचन करने की उक्तियाँ जैनग्रंथों में द्रष्टव्य हैं—

'कधमेक्कस्सेव जहण्णुक्कस्स-ववदेसो? ण एस दोसो। कणिट्ठो वि जेट्ठो वि एसो चेव ममपुत्तो त्ति लोगे ववहारुवलंभा।' *—(आचार्य वीरसेन, धवला पु० 4, पृ० 424)*

शंका — *तो फिर एक समय के* **जघन्य** *और* **उत्कृष्ट** *का व्यवदेश कैसे किया?*

समाधान — *यह कोई दोष नहीं, क्योंकि कनिष्ठ भी और ज्येष्ठ भी 'यही हमारा पुत्र है' —इसप्रकार का व्यवहार पाया जाता है, इसलिए एक में भी जघन्य और उत्कृष्ट व्यपदेश हो सकता है।*

एक में भी भेद-व्यवहार संभव है, यथा—'देवदत्त का ज्ञान' इस वाक्य में देवदत्त और ज्ञान अभिन्न है तथा 'देवदत्त का धन' इसमें देवदत्त और धन —दोनों भिन्न पदार्थ हैं। इसीप्रकार का एक अन्य दृष्टान्त है—

'सिलापुत्तयस्स सरीरमिच्चादिसु ऍक्कम्हि वि भेद ववहारो।'

—(आचार्य वीरसेन, धवला 4/1/5/2, पृ० 321)

अर्थ:— 'शिलापुत्र का (पाषाणमूर्ति का) शरीर' इत्यादि लोकोक्तियों में भी एक या अभिन्न में भी भेद-व्यवहार होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सापेक्ष कथन, यथा—दूध का बर्तन, पानी का कलश, घी का घड़ा, मिट्टी का घर आदि बहुप्रचलित हैं।

'पितृपुत्रादि-संबन्ध एकस्मिन्नपुरुषे यथा।
न ह्येकस्य पितृत्वेन सर्वेषामपिता भवेत्।।'

—(आचार्य जटासिंहनन्दि, वरांगचरित्र, 26/87)

अर्थः—*एक ही मनुष्य किसी का पुत्र होता है तथा दूसरों का पिता होता है, इसप्रकार एक ही पुरुष में पिता-पुत्रादि संबंध निर्विरोधतः संभव हैं।*

काकः कृष्णः — प्राधान्यपद (धवलवण्ण बलयाए)

'बहुवण्णस्स जीवसरीरस्स कथमेंक्का लेंस्सा जुंजदे? ण पाधाण्णपदमासेज्ज किसणो कागो त्ति पंच-वण्णस्स कागस्स कसणववदेसोंव्व एगवण्ण-ववहारविरोहाभावादो।'

—(आचार्य वीरसेन, धवला 1,1,2 पृष्ठ 538)

शंका — बहुत वर्णवाले जीव के शरीर की एक लेश्या कैसे बन सकता है?

समाधान — *नहीं, क्योंकि* ***प्राधान्य पद का आश्रय कर*** *'काककृष्ण' है, इसप्रकार पांचों वर्णवाले काक को जिसप्रकार व्यवहार से 'कृष्णवर्ण' कहते हैं; उसीप्रकार* ***प्रत्येक शरीर में द्रव्य से*** *छहों लेश्याओं के होने पर भी* ***एक वर्णवाली लेश्या व्यवहार*** *करने में कोई विरोध नहीं आता है।*

कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्। विद्याऽविद्या-द्वयं न स्याद्, बंधमोक्षद्वयं तथा।।

—(आप्तमीमांसा, 25)

अर्थः—*अद्वैत एकान्त में पुण्य और पाप ये दो कर्म (शुभ अशुभ) सुख दुःख में उनके दो फल इहलोक और परलोक ये दो लोक तथा विद्या और अविद्या में दो ज्ञान एवं बंध और मोक्ष में दो तत्त्व नहीं बन सकते हैं।*

'स्याद्वाद' शैली की इसी महनीयता एवं अनिवार्य उपयोगिता को स्वीकार करते हुये जैनाचार्यों ने स्पष्ट घोषित किया कि यदि वचन में सत्य की पहिचान करना है, तो 'स्यात्' का प्रयोग अवश्य देख लेना चाहिये। **आचार्य समन्तभद्र** लिखते हैं—

"स्यात्कारः सत्यलाञ्छनः।" *—(आप्तमीमांसा, 112)*

वृत्ति — स्यात्कारः स्याद्वादः सत्यलाञ्छनः सत्यभूतोऽभिप्रेतः।

'स्याद्वाद' को 'प्रतिष्ठातिलक' (1/27) में 'अमोघ-वाक्य' भी कहा गया है— **"स्याद्वादामोघवाक्यम्।"**

इसीलिए विभिन्न ग्रंथों के मंगलचरणों में इष्टदेवता-स्मरण के साथ ही 'स्याद्वाद' का भी सादर स्मरण किया गया है:—

"श्रीमत्परमगम्भीर-स्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम्।।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"धर्मतीर्थंकरेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमो नमः।

ऋषभादि-महावीरान्तेभ्येः स्वात्मोपलब्धये।।" —*(आ० अकलंकदेव, लघीयस्त्रय, 1/1)*

एक जगह तो 'स्याद्वाद' को जिनशासन का भेरीनाद भी कहा गया है। जैसे रणक्षेत्र में रणभेरी का नाद सुनकर कायरों का पलायन होता है, वैसे ही 'स्याद्वाद' का भेरीनाद सुनते ही मोह और अज्ञान का पलायन हो जाता है—

"यावत्स्याद्वादभेरी या जिनसैन्ये प्रगर्जति।

तावत्भंगं समायान्ति दर्शनान्याशु पञ्च वै।।" —*(मदनपराजय, 4/71)*

यहाँ यह प्रश्न संभव है कि स्याद्वादी वचनपद्धति में 'स्यात्' पद का प्रयोग करके धर्मों का कथन तो होता है, परंतु क्या इसका कोई सुमर्यादित विधान भी है? —इसका उत्तर देते हुये जैनाचार्य कहते हैं कि एक धर्मयुगल के बारे में **सात** प्रकार की ही **जिज्ञासायें** संभव हैं, जिसके कारण उसके **प्रश्न भी सात** ही होते हैं और **उत्तर** भी **सात** होने से सात वाक्य 'स्यात्' पद-युक्त बनते हैं। इसे ही 'सप्तभंगी सिद्धान्त' कहते हैं। इन सप्तभंग 'स्यात्' पदशोभित वाक्यों का 'अस्ति-नास्ति' धर्मयुगल पर प्रयोग करके निम्नानुसार दर्शाया गया है—

"स्यादस्ति स्वचतुष्टयादितरतः स्यान्नास्त्यपक्षमक्रमात्,

तत् स्यादस्ति च नास्ति चेति युगपत् सा स्यादवक्तव्यता।

तद्वत् स्यात् पृथगस्ति नास्ति युगपत् स्यादस्तिनास्तियाहिते,

वक्तव्ये गुणमुख्य-भावनियतः स्यात् सप्तभंगीविधिः।।"

—*(श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्रम्, 10)*

अर्थः—1. स्यादस्ति, 2. स्यान्नास्ति, 3. स्यादस्तिनास्ति, 4. स्यादवक्तव्य, 5. स्यादस्त्यवक्तव्य, 6. स्यान्नास्त्यवक्तव्य और 7. स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य—ये सात भंग हैं। वक्तव्य में गौण और मुख्यभाव नियत करनेवाली यह सप्तभंग-विधि है।

इसकी सार्थकता बतलाते हुये आचार्य समन्तभद्र लिखते हैं—

समन्तभद्र— **सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्।**

असदेव विपर्यासात् चेन्न व्यवतिष्ठते।। 15।।

अर्थात् सभी पदार्थ किंचित सत् हैं और किंचित् असत् हैं। समस्त चेतन-अचेतन पदार्थ स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से 'सत्स्वरूप' हैं और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षया 'असत्-स्वरूप' हैं। यदि ऐसा अपेक्षया स्वीकार न किया जाए, तो किसी इष्ट तत्त्व की व्यवस्था नहीं बन सकती।

'सप्त' संख्या का भी अतिविशिष्ट महत्त्व है। इसे पूर्णपीठ माना गया है। लोक में भी 'सप्त' संख्यावाले अनेकों प्रयोग प्रचलित हैं, **यथा**—सप्ताह (सात दिन), सप्तपदी, सप्तसिंधु, सप्तऋषि, सप्तांगराज्य, सप्तव्यसनत्याग, सप्तस्वर, सप्तपरमस्थान, सप्तनरक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्ततत्त्व, सात विभक्ति-प्रत्यय आदि।

'सप्तभंगी' की सप्त संख्या का विशेष महत्त्व बतलाते हुये 'प्रतिष्ठातिलक' के कर्त्ता लिखते हैं—

स्याद्वादन्यायनायक: परमाप्तो तीर्थंकरवृषभनाथदिपरमभट्टारक:—

'जिनेश्वरश्रीचरणाम्बुजग्रे, सर्वाणि धान्यानि विमिश्रितानि।
अनंतधर्मेष्वपि संभवन्तीमर्हन्तु दिव्यध्वनि सप्तभंगीम्।।'

—*(पं० नेमिचन्द्र, प्रतिष्ठातिलक, 10/3, 1/267)*

भावार्थ:—*प्रतिष्ठा के समय केवलज्ञान कल्याण की पूजा करनेवाला जो प्रतिष्ठा आचार्य है, वह धान्यों को मिलाकर जिनेश्वर श्रीचरणों में बढ़ाता है; उसपर श्री नेमिचंद्र जी (प्रतिष्ठातिलक रचयिता) ने भव्यजीवों को शिक्षा देने के निमित्त यह हार्दिक अभिप्राय व्यक्त किया है कि जिस तरह से सप्तधान्य परस्पर में मिलकर कार्यकारी हैं, उसीप्रकार अनंत धर्मात्मक तत्त्वों को समझने के लिए तीर्थंकर जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि (दिव्य अर्थों की (जननकर्त्री) भी सप्तभंगात्मक (सहाद्यैव तत्संदेह समुत्पादात्) ही खिरती है। तभी वह परस्पर में एक-दूसरे धर्म का समन्वय करती हुई विद्वज्जन-सेवनीय होती है।)*

वैदिक वाङ्मय में भी सप्तविध वचनों की स्वीकृति एवं महत्ता मानी गयी है—

'सप्तधा वै वागवदत्, सप्तविभक्तय: इति।' —*(ऐतरेय ब्राह्मण, 7/7)*

'स्याद्वाद-वर्त्मनि परात्मविचारसारे, ज्ञानक्रियातिशय-भावनायां।
शब्दार्थ-संघटनसीम्नि रसातिरेके, व्युत्पत्तिमाप्तु मनसां दिगसौ शिशूनाम्।।'

—*(आचार्य अमृतचन्द्र, लघुतत्त्वस्फोट, 2)*

अर्थात् पर और आत्मा के विचारभूत स्याद्वादरूपी मार्गाग्रणी में और ज्ञान-चारित्र के अतिशय वैभव की भावना में, व्युत्पत्ति (बोध) प्राप्त करने के इच्छुक शिशुओं के लिये यह शब्द-अर्थ का सीमित रसातिरेक शब्द-समूह मात्र दिशा दिखलाता है, विशेष अनुभव से ही प्राप्त होगा।

सुनयों से युक्त वाणी की महिमा एवं कामना के स्वर वैदिक वाङ्मय में भी गुंजित है— **'आ नो गोत्रा दर्द्दहि गोपते गा:, समस्मभ्यं सु-नयो यंतु वाजा।**
देवक्षा अतिवृषभ सत्य शुष्माऽस्मभ्यं, सु मघवन्बोधि गोदा:।।'

—*(ऋग्वेद, 3/2/30/21)*

अर्थात् हे पृथ्वी के पालक देव। हमें सुनय-सहित वाणियों को प्रदान कर आदरयुक्त बना, जिससे हम अपनी वृत्तियों और इन्द्रियों को संयत रख सकें। हे वृषभ ! तू सूर्य के समान सब दिशाओं में प्रकाशमान है और तू सत्य के कारण बलवान है ! हे ऐश्वर्यमात्र मघवन् ! हमें ***बोधि*** *प्रदान कर !*

अत: वाचिक सहिष्णुता के सिद्धान्त 'स्याद्वाद' का जीवन में व्यावहारिक धरातल पर व्यापक प्रयोग करना समय और समझ—दोनों के अनुकूल है। ❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीराष्टक स्तोत्र

—*मूल-रचयिता : पण्डित भागचन्द जी*

जिनके चेतन में दर्पणवत् सभी चेतनाचेतन भाव।
युगपद् झलकें अंतरहित हो ध्रुव-उत्पाद-व्ययात्मक भाव।।
जगत्साक्षी शिवमार्ग-प्रकाशक जो हैं मानो सूर्य समान।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार।।

जिनके लोचनकमल लालिमारहित और चंचलताहीन।
समझाते हैं भव्यजनों को बाह्याभ्यन्तर-क्रोध-विहीन।।
जिनकी प्रतिमा प्रकट शांतिमय और अहो है विमल अपार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार।।

नमते देवों की पंक्ति की मुकुटमणि का प्रभासमूह।
जिनके दोनों चरणकमल पर झलके देखो जीवसमूह।।
सांसारिक ज्वाला को हरने जिनका स्मरण बने जलधार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार।।

जिनके अर्चन के विचार से मेंढ़क भी जब हर्षितवान।
क्षण भर में बन गया देवता गुणसमूह और सुक्खनिधान।।
तब अचरज क्या यदि पाते हैं सच्चे भक्त मोक्ष का द्वार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार।।

तप्त स्वर्ण-सा तन है फिर भी तन-विरहित जो 'ज्ञानशरीर'।
एक रहें होकर 'विचित्र' भी, सिद्धारथ राजा के वीर-
होकर भी जो 'जन्मरहित' हैं, 'श्रीमन्' फिर भी न रागविकार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार।।

जिनकी वाणीरूपी गंगा नय-लहरों-युत हीन-विकार।
विपुल ज्ञानजल से जनता का करती है जग में प्रक्षाल।।
अहो ! आज भी इससे परिचित ज्ञानीरूपी हंस अपार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार।।

तीव्र-वेग त्रिभुवन का जेता कामयोद्धा महाप्रबल।
वय: कुमार में जिनने जीता, उसको केवल निज के बल।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शाश्वत सुख-शान्ति के राजा बनकर जो हो गये महान्।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार।।
महामोह-आतंक-शमन को जो हैं आकस्मिक उपचार।
निरापेक्ष-बन्धु हैं जग में जिनकी महिमा मंगलकार।।
भवभय से डरते संतों को शरण तथा वर गुण-भंडार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार।।
'महावीराष्टक' स्तोत्र को, 'भाग' भक्ति से कीन।
जो पढ़ ले अथवा सुने, परमगति वह लीन।।

हिन्दी अनुवाद — डॉ० वीरसागर जैन ❖❖

वैशाली महानगर

ओ भारत की भूमि बन्दिनी ! ओ जंजीरों वाली !
तेरी ही क्या कुक्षि फाड़कर जन्मी थी वैशाली?
वैशाली ! इतिहास-पृष्ठ पर अंकन अंगारों का,
वैशाली ! अतीत-गह्वर में गुंजन तलवारों का,
वैशाली ! जन का प्रतिपालक, गण का आदि विधाता !
जिसे ढूँढ़ता देश आज उस प्रजातन्त्र की माता।
रुको, एक क्षण पथिक ! यहाँ मिट्टी को शीश नवाओ,
राजसिद्धियों की समाधि पर फूल चढ़ाते जाओ।।
डूबा है दिनमान इसी खंडहर में डूबी राका,
छिपी हुई है यहीं कहीं धूलों में राजपताका।
ढूँढ़ो उसे, जगाओ उनको जिनकी ध्वजा गिरी है,
जिनके सो जाने से सिर पर काली घटा घिरी है।
कहो, जगाती है उनको बन्दिनी बेड़ियोंवाली,
नहीं उठे वे, तो न बसेगी किसी तरह वैशाली।।
फिर आते जागरण-गीत टकरा अतीत-गह्वर से,
उठती है आवाज एक वैशाली के खँड़हर से।
"करना हो साकार स्वप्न को, तो बलिदान चढ़ाओ,
ज्योति चाहते हो, तो पहले अपनी शिखा जलाओ।
जिस दिन एक ज्वलन्त पुरुष तुम में से बढ़ आयेगा,
एक-एक कण इस खंडहर का जीवित हो जायेगा।
किसी जागरण की प्रत्याशा में हम पड़े हुए हैं,
लिच्छवी नहीं मरे, जीवित मानव ही मरे हुए हैं।।"

—(रामधारी सिंह 'दिनकर' *साभार उद्धृत Homage to Vaisali, पृ० 299*) ✳✳

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्द्धमान महावीर : जीवन एवं दर्शन

—*डॉ० प्रेमचन्द रांवका*

भारतवर्ष की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा में भाद्रपद के समान चैत्रमास का भी विशेष महत्त्व है। इस मास के प्रारम्भ में सर्वप्रथम चैत्रकृष्ण चतुर्थी को 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का ज्ञानकल्याणक, चैत्रकृष्ण नवमी को आद्य तीर्थंकर आदिनाथ का जन्म व तपकल्याणक, चैत्रशुक्ल प्रतिपदा को नवविक्रम-सम्वत् का प्रारम्भ और नवरात्र-अध्यात्म-साधना पर्व का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल नवमी को मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का जन्मोत्सव, चैत्रशुक्ल-त्रयोदशी इस युग के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्मोत्सव पुनीत पर्व-तिथियाँ आदि प्राणीमात्र को सुख-शान्ति का सन्देश प्रदान करते हैं। तीर्थंकरों के कई कल्याणक भी इसी माह में ही होते हैं। इसप्रकार न केवल राष्ट्र के अपितु मानव के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उन्नयन में प्रारम्भ से ही श्रमण एवं वैदिक धाराओं का महान् योग रहा है। ये दोनों ही धारायें मानव के इहलोक के अभ्युदान और पारलौकिक नि:श्रेयस् की आधार-शिलायें हैं।

आत्मोन्नयन के मार्ग में जिसने श्रम अर्थात् संयम, तप, त्याग और ज्ञान-ध्यान पर बल दिया, वह 'श्रमणधारा' कहलायी। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव इस 'श्रमणधारा' के सूत्रधार थे। ऋषभदेव ने भोगमूलक-संस्कृति के स्थान पर कर्ममूलक-संस्कृति की प्रतिष्ठा की। इन्हीं के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम 'भारतवर्ष' हुआ। दैववाद के स्थान पर पुरुषार्थवाद का पाठ ऋषभदेव ने ही पढ़ाया। इन्हीं ऋषभदेव की धर्मसभा में दिव्यध्वनि सुनने देव, मनुष्य व तिर्यंच उपस्थित हुये। चक्रवर्ती सम्राट् भरत भी अपने पुत्र मरीचि के साथ दिव्य-देशनार्थ पहुँचे। भगवान् की देशना से प्रभावित हो मरीचि ने संसार से विमुख हो मुनि-दीक्षा ले ली; परन्तु परिषह की अशक्ति से उनका पुरुषार्थ जवाब दे गया और सरल मार्ग अपना लिया। कुछ समय पश्चात् ऋषभदेव की पुन: धर्म-सभा लगी। चक्रवर्ती भरत भी पहुँचे। भरत ने जिज्ञासावश निवेदन किया — "भगवन्! क्या इस समय इस धर्मसभा में कोई और भी ऐसी भव्य आत्मा है, जो कालान्तर में तीर्थंकर पद प्राप्त करेगी?" उत्तर में अनन्तज्ञान के धनी त्रिकालदर्शी भगवान् ने सम्बोधित किया— "सामने प्रवेशद्वार पर जो साधु खड़ा है और भव्यजीवों को प्रेरित कर इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मसभा में भेज रहा है; वह तुम्हारा पुत्र मरीचि इस भरतक्षेत्र में और इसी अवसर्पिणी काल का 'महावीर' नामवाला अन्तिम तीर्थंकर होगा। इससे पूर्व वह प्रथम नारायण और चक्रवर्ती भी बनेगा।"

आत्मज के लिये यह सुनकर भरत बहुत आनन्दित हुये। वे हर्षातिरेक में तुरन्त यह शुभ-समाचार देने साधु मरीचि के पास गये और गद्‌गद् उत्कण्ठ से बोले— "मरीचि ! तुम धन्य हो, तुम धन्य हो। तुम इस भरतक्षेत्र में अन्तिम तीर्थंकर बनोगे। यह शुभ-संवाद स्वयं भगवान् ने दिया है।" सुनकर मरीचि खुशी के आवेग में उन्मत्त हो उछल पड़ा और लगा झूम-झूम चिल्लाने— "मैं प्रथम नारायण, चक्रवर्ती और फिर अन्तिम तीर्थंकर बनूँगा।" इससे मरीचि में का मद/अहंकार जाग उठा। साधुचर्या का कठिन-मार्ग तो वह पहले ही छोड़ चुका था। अब उसने परिव्राजक का वेष धारणकर भगवान् ऋषभदेव के समानान्तर स्वतंत्र मत स्थापित कर लिया। परिणामस्वरूप चारों गतियों में जन्म-मरण करता हुआ तीर्थंकरत्व से दस-भव-पूर्व सिंह बन मृग का वध करने जा रहा था कि दो ऋद्धिधारियों के उपदेश से उसे आत्मबोध हुआ। कालान्तर में दो भव पूर्व नन्दमुनि की पर्याय में तीर्थंकर-प्रकृति का बंध किया।

अगले भव में 16वें स्वर्ग में देवगति से चयकर वैशाली गणराज्य के क्षत्रिय कुण्डग्राम में महाराजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला की कोख से चैत्र शुक्ल 13 को जन्म लिया। उनके इस जन्म से सर्वत्र सुख-शान्ति हो गई। राजकीय वैभव में पले अनेक चमत्कृत करनेवाली घटनाओं के बीच वे वर्द्धमान हुये। पर जल से कमलवत् भिन्न रहकर आत्मलीन रहते। 30 वर्ष की युवावस्था में माता-पिता के विवाहादि आग्रह को अस्वीकार कर राज्य-वैभव के सुख को तृणवत् त्यागकर दिगम्बर श्रमण हो गये और वैराग्य-पथ पर चल पड़े। 12 वर्ष की अखण्ड मौन-साधना से पूर्व-कर्मों की निर्जरा कर कैवल्य को प्राप्त किया। वे अतीन्द्रिय ज्ञान के धनी लोकालोक के ज्ञाता-द्रष्टा महावीरत्व को प्राप्त हुये।

दिव्यज्ञान होने पर भी, ज्ञान के योग्य संवाहक के अभाव में 65 दिन तक महावीर की वाणी मुखरित नहीं हुई। इन्द्र ने इस रहस्य को समझा। अपने वाक्-चातुर्य से (त्रैकाल्य द्रव्यषट्कं) से युक्तिपूर्वक स्वाभिमानी वैदिक विद्वान् इन्द्रभूति गौतम को धर्मसभा में ले आये। उत्तुंग मानस्तम्भ पर वर्द्धमान महावीर के सौम्य-वीतरागी व्यक्तित्व को देखते ही गौतम को आत्मानुभूति हुई। उनके क्षयोपशम के अहं की निशा का अन्तिम प्रहर समाप्त हो गया और वे महावीर के परमभक्त बन गये। विचारों की निर्मलता और परिणामों की शुद्धता से उन्हें मन:पर्ययज्ञान प्राप्त हो गया। गौतम जैसे योग्य शिष्य के उपस्थित होते ही महावीर का दिव्य-सन्देश ॐकारमयी भाषा में प्रारम्भ हुआ; जिसे गौतम ने ग्रहण कर प्राणीमात्र की भाषा में जन-जन तक पहुँचाया। यह क्रम 30 वर्ष तक चलता रहा। संवाद-सम्प्रेषण की इससे आदर्श तकनीक और क्या हो सकती है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीतरागी, सर्वज्ञ बनने के बाद महावीर 30 वर्ष तक मुक्ति अर्थात् परमसुख का मार्ग जगत् के जीवों को बताते रहे। अपनी दिव्य-देशना की त्रिरत्नों (रत्नत्रय) की त्रिवेणी में जन-जन को आप्लावित किया। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' समस्त जीवों में आत्मवत् दृष्टि रखनेवाले महावीर ने निरपेक्षभाव से समस्त लोक को अपनाया। उनके साम्यभाव में आर्य-अनार्य, साधु-साध्वी, देव-देवांगनायें, स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी सब समानरूप से शरण पाते थे। सभी जीव परस्पर प्रेमानुभाव करते और समान आत्मा का अनुभव करते।

इसी मध्य गौतम के अनुज वायुभूति, जो महावीर के गणधरों में एक थे, को मुक्ति मिली। इस घटना ने गौतम के मन को उद्वेलित कर दिया। उन्होंने महावीर से प्रश्न किया — "मुझमें और क्या कमी है, जो मेरी मुक्ति में बाधक है?" महावीर का उत्तर था— "तुम्हारे अंतर्मन में मेरे व्यक्तित्व के प्रति अतिसूक्ष्म राग विद्यमान है, राग तो आग है; जिसमें जगत् के जीव अनादिकाल से झुलस रहे हैं। राग का अंश तो बुरा है। जब तक राग की आग नहीं बुझती, तब तक वीतरागता कैसे प्रकट हो और मुक्ति कैसे मिले?" गौतम को उत्तर मिल गया, किन्तु उनका अन्तर्मन शान्त नहीं हुआ। उनके मन में मुक्त होने का तीव्र भाव जो विद्यमान था। महावीर ने कहा— "गौतम ! व्यग्रता से काम नहीं चलता। प्रारब्ध को तो भोगना ही होगा।" गौतम ने सुना कि महावीर के निर्वाण के बाद, जब उनकी पार्थिव देह विलुप्त हो जायेगी, गौतम के अंतर्मन के राग के तन्तु टूटेंगे और हुआ भी यही कि अमावस्या को प्रातः महावीर को निर्वाण हुआ, तो सायं गौतम को कैवल्य की प्राप्ति हुई।

आचार में अहिंसा, विचारों में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रह —इन्हीं चार मणिस्तम्भों पर महावीर का जीवनदर्शनरूपी सर्वोदयी प्रासाद अवस्थित है। भगवान् महावीर ने अहिंसा, स्याद्वाद, कर्मवाद, साम्यवाद (अपरिग्रह) की जिस पावनधारा में तुमुल वेग प्रवाहित किया, उसमें निमज्जित होकर मानव युग-युग तक स्थायी शान्ति और अमरत्व को प्राप्त करता रहा है। अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह महावीर के जीवन-दर्शन की मुख्य रीढ़ है। आज हमारे परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व में मानव-मन में जो तनाव, हिंसा, कलह, संघर्ष का ताण्डव नृत्य हो रहा है; वह भगवान् महावीर के जीवन-दर्शन को समझने और तदनुसार आचरण से समाप्त हो सकता है। इसीलिये आचार्य समन्तभद्र ने महावीर के जीवन-दर्शन को समस्त प्रकार की आपदाओं का शमन करनेवाला सर्वोदय तीर्थ कहा है—

"सर्वापदामन्तकरं समस्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।"

महावीर के अनुसार किसी के प्राणों का वियोग करना ही हिंसा नहीं, अपितु मन दुःखाना भी हिंसा है। संकल्पी हिंसा कभी वैध नहीं हो सकती है। जो अपने प्रतिकूल हो, उसे दूसरे के लिये भी न करो। द्रव्य और भावहिंसा से तीव्र कषायें पैदा होती हैं। महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने समय में धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा का विरोध किया। महावीर की अहिंसा में विरोधी प्रकृति के जीव भी एक स्थान पर विचरते थे।

महावीर ने एकान्तवाद का विरोध किया। उनके अनुसार वस्तु अनेकधर्मरूपा है, उनकी कथनशैली है 'स्याद्वाद'। 'स्याद्वाद' हमें समताभाव और सहिष्णुता देता है। आग्रह से मुक्ति मिलती है। विचारों में विषमता समाप्त होती है। समता ही जीवन है।

महावीर ने **"बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुष्यः, अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य"** कहकर परिग्रह को पाप का पुंज बताया। अनावश्यक संग्रह संघर्षों की जड़ है। सामाजिक विषमताओं का कारण परिग्रह है। अतएव त्याग और संयम पर बल दिया। महावीर का कर्मवाद प्राणीमात्र को पूर्ण स्वतंत्रता देता है। प्रत्येक प्राणी अपने सुख-दुःख, जीवन-मरण, उत्थान-पतन, शुभाशुभ कर्मों का कर्ता-भोक्ता स्वयं है। क्रोधादि कषायें आत्म-प्रदेशों के साथ मिलकर आत्मस्वभाव को मलिन कर देती हैं। कर्मबन्धन से मुक्ति के लिये कषायों पर विजय पाना आवश्यक है। **'कषायमुक्ति किल मुक्तिरेव।"** महावीर का जीवनदर्शन पावन मन्दाकिनी सदृश है; जिसमें अवगाहन और स्नान से तन और मन दोनों पवित्र हो जाते हैं। उनका दर्शन अहिंसा, संयम और तप के उत्कृष्टरूप धर्म को धारण करता है, जिस धर्म को देवता भी प्रणाम करते हैं, वह धर्म उत्कृष्ट मंगलस्वरूप है। ❖❖

महावीर के प्रति विश्रुत विद्वानों के विचार

संसार के किसी भी धर्म ने अहिंसा की इतनी सूक्ष्म और व्यापक परिभाषा नहीं की है, जितनी जैनधर्म ने की है। उसने इसे विशेष रूप से मन, वचन, काय से आचरण में उतारने पर बल दिया है। अहिंसा का यह उदात्त सिद्धांत जब भी संसार में व्यवहार में आयेगा, तो निश्चय ही जैनधर्म का विशेष योगदान रहेगा और भगवान् महावीर का नाम अहिंसा के अग्रदूत के रूप में लिया जायेगा। यदि किसी ने अहिंसा के सिद्धांत को विकसित किया है, तो वे महावीर हैं। इस पर विचार करें और इसे जीवन में उतारें।

—महात्मा गाँधी

जैनधर्म मानव को ईश्वरत्व की ओर ले जाता है और सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् आचरण के जरिये पुरुषार्थ से उसे परमात्म-पद प्राप्त करा देता है।

—डॉ० मुहम्मद हाफिज

अहिंसा का सिद्धांत सबसे पहले गहन रूप से भलीभांति तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित एवं प्रचारित किया गया। इसमें 24वें तीर्थंकर भगवान् महावीर वर्द्धमान का उल्लेखनीय योगदान है। महात्मा बुद्ध और फिर महात्मा गाँधी ने भी मन, वचन, काय से अहिंसा के सिद्धांत को आचरण में उतारा। *—प्रो० तानयुन शान (चीन)*

**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर और अहिंसा-दर्शन

—डॉ० सुदीप जैन

सम्पूर्ण जैन-परम्परा आज 'अहिंसा' के उत्कर्ष से जानी-पहिचानी जाती है। "अहिंसा परमो धर्म:" का आदर्श वाक्य जैन-संस्कृति की मौलिक पहिचान है। जैनाचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने 'हिंसा' को प्रमुख पाप और 'अहिंसा' को प्रधान धर्म बताया है तथा कहा है कि पापों मं जो झूठ, चोरी आदि की गणना करायी गयी है, वह तो मात्र शिष्यों को समझाने के लिए है—

"अनृतवचनादि-केवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय।" —*(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय)*

जैन-ग्रंथों में 'अहिंसा' की महिमा अनेकत्र गायी गयी है—

"अहिंसा सर्वेषु व्रतेषु प्रधानम्।" —*(आ० अकलंकदेव, राजवार्तिक, 7/1/6)*

अर्थ :— सभी व्रतों में अहिंसा की ही प्रधानता है।

"अहिंसैव जगन्माताऽहिंसैवानन्द-पद्धति:।" —*(आ० शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, 8/32)*

अर्थ :— अहिंसा ही जगत् की माता है और अहिंसा ही आनन्द की पद्धति या आनन्दानुभूति की प्रक्रिया है।

इसीकारण अहिंसा धर्म की श्रद्धा करने की वे प्रेरणा देते हैं—

"धम्मु अहिंसउ सद्दहिइ।" —*(कवि पुष्पदन्त, महापुराण)*

अर्थ :— (हे भव्य जीवों ! तुम) अहिंसा धर्म की श्रद्धा करो।

जैन-परम्परा में अहिंसा की प्रधानता की पुष्टि करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी लिखते हैं—

"भूतदया जैनों का मुख्यतत्त्व है, मैं सब अहिंसावादी लोगों को जैन ही समझता हूँ।"

—*(द्र० दैनिक नवाकाल, 27 नवम्बर 1932 ई०)*

अहिंसा की प्रधानता का जैसा प्रभावी प्ररूपण भगवान् महावीर के द्वारा किया गया, उसका उनके समकालीन दार्शनिकों और विचारकों पर गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। एक क्षपणक लिखते हैं—

"महाभाग ! अहिंसा पलमो धम्मोऽत्थि।" —*(प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, 3/15)*

अर्थ :— हे महाभाग ! अहिंसा ही परमधर्म है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुत: पापरूपी घने अंधकार में अहिंसा ही नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अहिंसा ही एकमात्र प्रकाश की किरण है। इसीकारण अहिंसा सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र बन गयी है। वैदिक परम्परा के ग्रंथों में भी लिखा है—

"हे भगवन् ! मुझे अहिंसक मित्र का समागम मिले।" —*(ऋग्वेद, 5/64/3)*

"अहिंसक व्यक्ति इस पृथ्वीतल में मूर्धास्थानीय (सर्वश्रेष्ठ) हैं।"

—*(ऋग्वेद, सायणभाष्य, 8/67/13)*

"अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।" —*(मनुस्मृति, 2/159)*

अर्थ :— प्राणियों पर अनुशासन भी अहिंसक रीति से किया जाना ही श्रेयस्कर है।

महर्षि पतंजलि मानते हैं कि अहिंसा जब तक जीवन में प्रतिष्ठित नहीं होगी, तब तक वैरभाव जीवन से दूर नहीं किया जा सकता है—

"अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग:।" —*(पातंजल योगसूत्र, 2/35)*

अर्थ :— अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर ही उसकी सन्निधि में वैर का त्याग संभव है।

जैनाचार्यों ने तो प्राणीमात्र का स्वभाव ही अहिंसा बताया है—

"अत्ता चेव अहिंसा।" —*(जयधवला, भाग 1, पृष्ठ 94)*

अर्थ :— इसका स्पष्टीकरण करते हुए मनीषीगण लिखते हैं कि जैसे क्रूर प्राणी भी अपनी संतान की हिंसा नहीं करते हैं, तथा कसाई भी अपने परिवार और बच्चों को नहीं मारता है। इससे स्पष्ट है कि अहिंसा प्राणीमात्र में विद्यमान है।

चूँकि निराशा, अभाव और हीनभावना से व्यक्ति में हिंसक प्रवृत्ति का जन्म होता है, अत: प्राणीमात्र के प्रति आत्मीयता, सौहार्द एवं शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की प्रक्रिया अपनाने से ही अहिंसा का सार्वत्रिक प्रसार संभव है। इस अहिंसक भावना से समन्वित विवेक के उत्पन्न होने वाला उत्साह ही गौरवपूर्ण सफलता का एकमात्र मूलमन्त्र हैं; अत: आज यह आवश्यक है कि समाज में केवल रथोत्सवों का ही नहीं अहिंसा आदि के व्रतोत्सवों का भी आयोजन होना चाहिए; सभी को उल्लासपूर्वक इन्हें मनाना और अपना चाहिए तथा इसके साथ-साथ सभी को अहिंसक-समाजसेवा का व्रत भी लेना चाहिए।

हिंसक व्यक्ति का जीवन बिना स्टेयरिंग एवं ब्रेक की गाड़ी के समान अनियन्त्रित होता है, जबकि अहिंसक व्यक्ति का अपने आप पर पूर्ण नियंत्रण होता है; इसी से उसके जीवन में स्व-पर-अहितकारी कोई दुर्घटता नहीं होती है। लौकिक एवं पारमार्थिक जीवन जीन की कला हमें अहिंसा ही सिखाती है। हमारी जीवनयात्रा भी अहिंसा से ही प्रारम्भ होती है। अहिंसा ही सिंहनी जैसी क्रूरसत्त्वा माँ के हृदय में सन्तान के प्रति ममता का भाव भरकर उसके मातृत्व को चरितार्थ करती थी। अहिंसा के बिना जीवन की कल्पना भी अशक्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसीलिये भारतीय जीवनदर्शन का मेरुदण्ड 'अहिंसाधर्म' को माना गया है। जैनदार्शनिकों के अनुसार अहिंसा एक विराट वटवृक्ष हैं और उसकी जड़ सम्यग्दर्शन है। इसीलिये "दंसणमूलो धम्मो" का मंगलसूत्र आचार्य कुन्दकुन्द ने दिया है। अहिंसा की भावना से जीवन में समताभाव जागृत होता है, जो कि धर्मात्माओं के जीवन में आनन्द की क्रीडास्थल बन जाता है। क्षमता एवं वैराग्य की भावना से अहिंसाधर्म जीवन में सुदृढ़ता को प्राप्त करता है। आचार्य अमृतचन्द्र सूरि इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखते हैं—

"कमलमिव निरुपलेपत्वप्रसिद्धरहिंसक एव स्यात्।"

—(प्रवचनसार टीका, गाथा 18)

अर्थ :— अहिंसक व्यक्ति ही इस संसार में रहकर भी जल में कमल की भाँति निर्लिप्त रह सकता है।

इस अहिंसाधर्म का बिना किसी भेदभाव या पूर्वाग्रह की भावना से प्राणीमात्र में प्रचार-प्रसार करने के लिए -जैन-परम्परा में कतिपय नित्यप्रयोग किये जाते हैं। ऐसे में कुछ इसप्रकार हैं—

"क्षेमं सर्वप्रजानां, प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपाल:।
काले काले च वृष्टिं वितरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।।
दुर्भिक्षं चौर-मारी क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व-सौख्य-प्रदायी।।"

अर्थ :— सम्पूर्ण प्रजाजनों का कल्याण हो, राजा धार्मिक एवं समर्थ बने, उचित समय पर पर्याप्त परिमाण में वर्षा हो तथा व्याधियों का नाश हो। दुर्भिक्ष (अकाल), चोरी, महामारी आदि की दुर्घटनायें क्षणभर को भी इस जीवलोक में नहीं हों तथा प्राणीमात्र को सुख प्रदान करनेवाला जिनेन्द्र भगवान् का धर्मचक्र निरन्तर प्रवर्तित होते रहे।

इसीप्रकार यह भावना भी मननीय है—

"सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्यतपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञ: करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्र:।।"

अर्थ :— पूजा करनेवालों के लिये, प्रतिपालन करनेवालों के लिए, यतीन्द्रों (आचार्यों) के लिए, सामान्य तपस्वियों के लिए, देश के लिए, राष्ट्र के लिए, नगर के लिए —इन सबके लिये हे भगवन् जिनेन्द्र ! आप शान्ति प्रदान करें।

आज ऐसी उदात्त भावनायें मात्र पूजन-पाठ का अंग बनकर रह गयीं हैं। वास्तव में हमारे आचार-विचार में इनका स्थान अन्वेषणीय होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में अहिंसा की चर्चा ऊँट के मुँह में जीरे के समान नगण्य सिद्ध होती जा रही है; जबकि वर्तमान परिस्थितियों में अहिंसा की आवश्यकता और उपयोगिता पहिले की अपेक्षा कहीं ज्यादा है।

आज जब पारस्परिक सौहार्द एवं जीवदया स्वरूप स्थूल अहिंसा का प्रसार क्षेत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिनोंदिन सिकुड़ता/सिमटता जा रहा है; तब आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति हिंसा है और आत्मा में राग-द्वेष-मोह के परिणाम उत्पन्न ही नहीं होना 'अहिंसा' है। —ऐसी सूक्ष्म निश्चय अहिंसा की चर्चा की प्रासंगिकता चिन्तनीय विषय बन गया है। जैनदर्शन में प्रतिपादित अहिंसा की अतिव्यापक उदात्त भावना को हम अपने से शुरू करके विश्वभर में प्राणीमात्र में आध्यात्मिक संदेश के रूप में प्रसारित करें — यह समय की माँग है।

क्योंकि इसी अहिंसा के बल पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने इस देश को स्वतन्त्र कराया था, तथा इस तथ्य की मुखर स्वीकृति भारतीय गणतन्त्र के संविधान की मूल प्रति पर की गयी है। उसमें सबसे ऊपर बंगाल के एक चित्रकार द्वारा निर्मित निर्ग्रन्थ मुद्रा का भगवान् महावीर का एक मनोरम चित्र है और उसके नीचे लिखा है—

Vardhamana Mahavir, the 24th Tirthankara in a meditative posture, another illustration from the calligraphed edition of the Constitution of India. Jainism is another stream of spiritual renaissance which seeks to refine and sublimate men's conduct and emphasises Ahimsa, non-violence, as the means to achieve it. This became a potent weapon in the hands of Mahatma Gandhi in his political struggle against the British Empire.

हिन्दी अनुवाद :— चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर ध्यान की मुद्रा में (भारतीय संविधान के उत्कीर्णित लेख-प्रति का निदर्शन)। जैनमत आध्यात्मिक पुनर्जागरण की एक विशिष्ट धारा है, जो कि मनुष्य के आचार-विचार को उदात्त बनाने के साथ-साथ इसकी प्राप्ति के लिये **अहिंसा** पर बल देता है। **अहिंसा** महात्मा गाँधी के हाथों में ब्रिटिश साम्राज्य से राजनैतिक संघर्ष करने में सशक्त अस्त्र बनी।

वर्तमान की आतंकवाद, नक्सलवाद जैसी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई हिंसक प्रवृत्तियों के विषय वातावरण में महावीर की अहिंसा और अधिक प्रासंगिक है। आवश्यक है इसके नैष्ठिक प्रचार-प्रसार की और उसके लिए महात्मा गाँधी जैसी समर्पित मानसिकता वाले व्यक्तियों की। यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं इसे दृढ़ता से अपनाने को तत्पर हो जाये, तो भारतवर्ष को ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को हिंसा और आतंक से मुक्ति मिल सकती है।

❖❖

महावीर के प्रति विश्रुत विद्वानों के विचार

महावीर के वचन मानवीय-आचरण की उज्ज्वलतम प्रस्तुति है। अहिंसा का महान् सिद्धांत, जिसे पश्चिम-जगत् में 'ला ऑफ नान-वायलेंस' के नाम से जाना जाता है, सर्वाधिक मूलभूत सिद्धांत है, जिसके द्वारा मानवता के कल्याण के लिये आदर्श संसार का निर्माण किया जा सकता है। *—डॉ० एल्फ्रेड डब्ल्यू पार्कर (इंगलैण्ड)* ✱✱

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शाकाहार

हर वर्ष 10 लाख से भी अधिक अमेरिकन वेजिटेरियन बन रहे हैं। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी द्वारा किये गये अध्ययन से यह बात सामने आई है कि इस मिलेनियम के अंत तक लगता है पूरी दुनिया वेजिटेरियन हो जायेगी। दरअसल, शाकाहारी लोगों की संख्या दुनियाभर में तेजी से बढ़ रही है और आज की तारीख में स्लोगन यह बन गया है— **'ग्रीन इज इन'**। सच तो यह है कि कई बड़ी हस्तियाँ वेजिटेरियनिज्म को प्रोत्साहन देने के लिये काम भी कर रही हैं।

विशेषज्ञों का कहना है कि लाइफस्टाइल में आ रहे परिवर्तन के कारण होनेवाली बीमारियों की आशंका को वेजिटेरियन डाइट काफी कम कर देती है। 'एस्कॉर्ट्स हार्ट इंस्टीट्यूट' के सीनियर रेजिडेंट **डॉक्टर मोहित** का कहना है कि ऑबिसटी, हाइपरटेंशन और डायबिटीज जैसी बीमारियों से पीड़ित लोगों को शाकाहार काफी राहत देता है।

बहरहाल, ऐसे लोगों की भी संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है, जो दूध का इस्तेमाल करना ही नहीं चाहते। उनका कहना है कि जिस तरह हम कुतियों और बंदरियों का दूध नहीं पीते, उसी तरह हमें उन जानवरों का भी दूध नहीं पीना चाहिये, जिनके बच्चे 200 किलो से ज्यादा के हो जाते हैं।

कहीं दूसरी ओर, न्यूट्रिशनिस्ट्स का कहना है कि दूध के बिना रहा जा सकता है, यदि आपकी डाइट में पर्याप्त मात्रा में विटामिन ए, बी, कैल्शियम तथा प्रोटीन हो। अदिति गोवित्रिकर के शब्दों में, "कोई भी बिना दूध के अच्छी तरह रह सकता है, लेकिन मुझे नहीं लगता कि मैं कभी इसे अपनी डाइट से हटा सकूँगी।"

'इंद्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल' की न्यूट्रिशनिस्ट **सुपर्णा जयरथ** का कहना है कि अगर कोई दूध के बिना ही डाइट लेने का फैसला कर लेता है, तो उसे यह सब किसी न्यूट्रिशनिस्ट की देखरेख में ही करना चाहिये; क्योंकि इसके पहले काफी रिसर्च करनी होती है।

—*(साभार उद्धृत, नवभारत टाइम्स, 10 जुलाई, दिल्ली परिशिष्ट)*

**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मृति के झरोखे से

(भगवान् महावीर के 2600वें जन्म-कल्याणक वर्ष के अवसर पर विशेष)

—*त्रिशला जैन*

जब जागृत होती है स्मृति
मन के किसी कोने में,
तो लगता है जैसे
जन-जन का मानस बन
साथ-साथ चल रहे तुम।

जिंदगी ने कितने रूप
जिये होंगे अनगिनत,
पर स्वरूप वस्तु का
केवल एक ही था,
धर्मनिष्ठ समर्पित थे तुम।

रह गये अवशेष जो
विरासत में संस्कृति के,
उस मिट्टी को चढ़ा शीश
साँसें अपनी छोड़-छोड़,
प्राण फूँकते रहे तुम।

धरती पर ले जनम
पुरुषार्थ भाग्य के मनुज,
स्वप्न को यथार्थ कर
पहुँच गये शिखर पर,
क्योंकि थे नि:शोक तुम।

गगन के विस्तार पर
बांधकर श्रद्धा-कलश,
अमूर्त को मूर्त कर
दे गये पगडंडी सरल
वीतरागी भाव को तुम।।

❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिशला-कुंवर की तत्त्वदृष्टि

—डॉ० माया जैन

वैशाली गणतंत्र का शासक चेटक था, जिसकी पुत्री प्रियकारिणी त्रिशला थी। वह अपनी सात बहनों में सबसे बड़ी बहिन थी। सुप्रभा, प्रभावती, मृगावती, चेलना, ज्येष्ठा और चन्दना भी सभी कलाओं में निपुण थी। उनके दस भाई भी थे जो धीर-वीर एवं गंभीर थे। जिन्होंने अपने पिता चेटक की राज्य-सत्ता को भलीभाँति संभाल रखा था। चेटक धर्मनिष्ठ श्रावक भी था तथा दानी और ज्ञानीजनों का समान करनेवाला भी था।

वैशाली कन्या त्रिशला :— सुभद्रा की लाडली बेटियों में त्रिशला प्रिय थी। सभी के स्नेह का कारण बनकर वह वैशाली की कन्याओं में जहाँ अपनी कलाओं से प्रसिद्ध थी, वहीं धर्म-जगत् के बीच में धर्मनिष्ठा का परिचय देने वाली होने से सबकी प्रियकारिणी भी थी।

त्रिशला का परिणय :— ज्ञातृवंश, ज्ञातवंश, णायवंश आदि के नाम से प्रसिद्ध सिद्धार्थ का गौरव इसी से था। वज्जि-संघ में नौ अधिपति थे। उनका प्रमुख गणपति या राजप्रमुख गणपरिषद का संचालनकर्त्ता था। वज्जियों के अष्टकुल में भोगवंशीय, इक्ष्वाकुवंशीय, ज्ञातृवंशीय, कौरववंशीय, लिच्छवीवंशीय, उग्रवंशीय और विदेह-कुलों का वर्णन आगमों में विशेषरूप से प्राप्त होता है।

वैशाली के लिच्छवी :— गणराज्यों एवं गणशासन का प्रतिनिधित्व कोई राजपुरुष ही करता था। जितने गण थे, उतनी परिषदें थीं। उन परिषदों का प्रमुख लिच्छवी-राजा चेटक था, जिसकी पुत्री प्रियकारिणी का परिणय कुण्डग्राम के अधिपति के पुत्र सिद्धार्थ से हुआ। वे कुण्डग्राम के ज्ञातृवंशीय राजकुमारों के बीच अपना विशिष्ट स्थान बना चुके थे। इसलिये विदेह देश के कुण्डपुरवासी सिद्धार्थ-कुँवर को त्रिशला प्रदान की गई। परिणय के पश्चात् त्रिशला वैशाली-गणराज्य की तरह विदेह-कुण्ड के कुण्डग्राम में भी अपना स्थान बनाने में समर्थ हुई।

त्रिशला-कुँवर कुमार वर्धमान :— नाना संघ-गण एवं राज्यों के बीच गौरवशाली स्थान को पानेवाले सिद्धार्थ के नयनों की छवि ने रूप-लावण्य-युक्त प्रियकारिणी को राजमहिषी का स्थान दिया। दोनों के स्नेहसूत्र से लोकप्रिय जिस पुत्र का जन्म हुआ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका नाम वर्धमान रखा। वर्धमान के गर्भ में आते ही सम्पूर्ण वैशाली गणतंत्र सुखद वातावरण से युक्त हो गया था। निरन्तर रत्नवृष्टि ने इस बात की सूचना दे दी थी कि यह बालक साधारण कुमार नहीं है, अपितु समस्त गुणों का प्रकाशित करनेवाला सर्वत्र वृद्धि करनेवाला एवं जन-जन को सुख-शान्ति का साम्राज्य देनेवाला होगा।

त्रिशला-कुँवर का जन्म :— छब्बीस सौ वर्ष पूर्व वह त्रिशलाकुँवर चैत्रमास की त्रैयोदशी के दिन शुक्ल पक्ष में अपनी शुभ्र प्रभा को बिखेरने में समर्थ हुआ। त्रिशलाकुँवर के जन्म लेते ही मंगलकारी प्रतीक सामने आये। वनसम्पदायें हरित हो गईं, जलराशि ने अपना कल-कल स्वर जनता के कानों में भर दिया; त्रिशलाकुँवर वर्धमान बढ़ते गये। चलना सीख लिया, मति, श्रुत और अवधि —ये तीन ज्ञान उस महामना में विद्यमान थे। यह महामना तीर्थंकर नामकर्म की पुण्य-प्रकृति से कुण्डग्राम की शोभा बढ़ा रहा था। इनके कई साथी थे, छोटे-छोटे कुंवर सभी थे, परन्तु कुमार वर्धमान, कुमार चलधर, कुमार कामधर और कुमार पक्षधर —ये चारों कुमार बालसखा थे।

त्रिशला का सन्मति :— कुमार वर्धमान अपने मित्रों के साथ सभी कलाओं को प्राप्त कर रहा था, वह ज्ञान के शिखर पर आरूढ़ तो नहीं था; पर अभी-अभी कुछ ही कदम आगे बढ़ाये थे, वह लघु ही था। परन्तु इस त्रिशलाकुंवर की लघुता में गंभीरता थी। सोचने की शक्ति दिव्य थी, इसलिए दो दिव्य ऋद्धिधारी मुनि ज्ञान के पिपासु बनकर कुमार की ओर अग्रसर होते हैं। त्रिशलाकुंवर मित्रों के बीच मोदयुक्त ज्ञान की अपूर्व छवि को लेकर स्थित रहता था। संजयंत और विजयंत ने दर्शन का लाभ किया, जो जिज्ञासायें उमड़ रहीं थीं, वे क्षण में शांत हुईं। श्रद्धा उत्पन्न हुई, ज्ञान-ज्योति जगी और चारित्र ने चमत्कार प्रदान किया। वे वर्धमान 'सन्मति' कहलाये, क्योंकि ज्ञान की पिपासा से परिपूर्ण मुनियों के ज्ञान का सम्मान हुआ।

त्रिशलाकुँवर की निर्भीकता :— उपवन में कुमार क्रीड़ा कर रहे थे। अन्य कुमार भी उनके साथ इधर-उधर खेल रहे थे। कुमारों के बीच एक नागकुमार भी क्रीड़ा करने लगा। वह अपूर्व दिव्य एवं अत्यंत आकर्षित था। उसने कुँवर वर्धमान के निर्भीकता का प्रमाण देना चाहा। जहाँ कुँवर क्रीड़ा कर रहे थे, वहीं नागकुमार ने विषधर का रूप बनाया, इधर-उधर पेड़ों पर चढ़े आराम में स्थित झूलों पर झूलते हुए कुमार सर्प को देखते हैं, भयभीत होते हैं और यह चिल्लाने लगते हैं "कुँवर हटो-हटो, दूर भागो सर्प तेजी से तुम्हारी ओर ही बढ़ा आ रहा है।" अन्य कुँवर को सचेत करते हुए इधर-उधर भाग गये। त्रिशलाकुँवर की दृष्टि सर्प पर थी। सर्प की दृष्टि भी कुँवर पर थी। जिह्वा (जीभ) चल रही थी। सिर हिल रहा था और पुन: डोलता हुआ कुछ अभिव्यक्त कर रहा था। कुँवर ने शांतभाव से उसे पकड़ा और सरलता से बगीचे के एक ओर कर दिया। नागकुमार ने अपना दिव्य रूप प्रकट किया। वह अजमुख बनकर उन चारों कुमारों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ बालसुलभ ढंग से खेला और फिर अदृश्य हो गया। मित्रों ने भी त्रिशलाकुँवर को 'वीर' कहते हुए कंधे पर बैठा लिया।

त्रिशलाकुँवर की अपूर्व शक्ति :— वर्धमान सभी के चिन्तक थे। एक बार नगर में उन्मत्त हाथी का आतंक फैल जाता है, भगदड़ मच जाती है। राजपुरुष पकड़ने में समर्थ नहीं हो पाते। जन-धन की हानि सिद्धार्थ के सामने हो रही थी। त्रिशलाकुँवर वर्धमान के कानों में चीखने-चिल्लाने के स्वर गूँज उठे। माँ ने रोका और पिता ने हाथ पकड़ा, पर इस साहसी बालक ने अपने राजप्रासाद से राजपथ की ओर कदम बढ़ा लिये। हाथी का विकराल रूप था, कुँवर ने फुर्ती से मुष्टि-प्रहार किया, जिससे हाथी का मद चूर-चूर हो गया। कुँवर राजहाथी की तरह उस पर बैठ गया। सिद्धार्थ के सामने यह दृश्य था। और त्रिशला के रुदन के बीच ममता की अपूर्व छवि थी। कुँवर के साहस ने सबको चकित कर दिया। वे वीर तो थे ही, अब कुमार-अवस्था में ही 'अतिवीर' भी बन गये।

वीर से महावीर :— शक्तिपुञ्ज, परप्रतिष्ठित बालक वर्धमान अनंत दर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतबल के चतुष्टय को छूने के लिए अभिनिष्क्रमण कर जाते हैं। वे साधक बनते हैं और जनता के बीच में रहकर जनचेतना को जगाते हैं। वीर से महावीर बनने के लिए ध्यान को सर्वोपरि करते हैं। वे धर्मध्यान और शुक्लध्यान के उच्चशिखर पर आरूढ़ हो जाते हैं। दिव्यज्ञान के आलोक ने उन्हें केवलज्ञानी बना दिया। उनके समवसरण में पशु भी थे, पक्षी भी और मानवमात्र के समस्त जनसमुदाय भी थे। जनता थी, क्षत्रिय थे, वैश्य थे, ब्राह्मण और शूद्र भी थे। लिच्छवी के राजाओं में णायपुत्त के विचार क्रान्तिकारी थे। उनकी दृष्टि में प्राणीमात्र के प्रति समताभाव था। **"सव्वेसिं जीवियं पियं"** महावीर की दृष्टि का यह सूत्र यही सन्देश देता है कि सभी एक समान हैं। सभी को अपना जीवन प्रिय है, ~~सभी जीना~~ चाहते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं कि भयाकुल प्राणियों के लिए सर्वप्रथम समत्व की दृष्टि दिखलाना चाहिए। समत्व में सम्पूर्ण जगत् के प्रति प्रेमभाव ही होता है। समतानुप्रेक्षी किसी का प्रिय और अप्रिय नहीं करता है। वह तो वैर-विरोध से रहित प्राणीमात्र के लिए मैत्री का सन्देश देता है।

अहिंसा की दृष्टि :— त्रिशलाकुँवर ने यह सन्देश दिया कि शत्रु और मित्र इस जगत् में कोई नहीं है। यदि अपना हित चाहते हैं, तो सर्वप्रथम अपनी शत्रुता और अपनी मित्रता को देखें, फिर जीने का अधिकार सभी को दें। क्योंकि **'सव्वे जीवावि इच्छंति'** अर्थात् सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता है।

'सच्चं खु भगवं' :— महावीर की दृष्टि विश्व में यथार्थ का आभास कराना चाहती है। इसलिये वे कहते हैं कि जहाँ सत्य है, वहाँ भगवान् है। यह तभी संभव है, जब स्वार्थ से रहित होकर परमार्थ की दृष्टि रखेंगे।

ब्रह्म-दृष्टि :— देव, मनुष्य, यक्ष, राक्षस आदि सभी ब्रह्म के सामने झुके रहते हैं;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि भावों में अपूर्व तप, अपूर्व ज्ञान, अपूर्व संयम और अपूर्व सदाचरण समाहित रहता है।

अपरिग्रह-दृष्टि :— संग्रहवृत्ति मूर्च्छा को जन्म देती है। इसलिए वे अंतरंग परिग्रह और बाह्य परिग्रह के ममत्व से निकलकर मर्यादित जीवन जिये; ताकि किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो।

तत्त्वदृष्टि :— अनेकान्त और स्याद्वाद के सूत्रधार ने सभी को एक ही सन्देश दिया कि आत्मतत्त्व का बोध करें। उसके समीप पहुँचे, ताकि आत्मा का विशुद्धस्वरूप परमात्मा बना सके। क्योंकि स्वरूप की दृष्टि से सभी आत्मायें समान हैं। परन्तु उनका चिंतन, मनन पृथक्-पृथक् होते हुए भी एक ही उद्देश्य को चाहता है, वह है मुक्ति।

इसतरह जिस त्रिशलाकुँवर ने मनुष्यों के बीच में रहकर प्राणीमात्र की संवेदनशीलता को समझा, परखा और उन्हीं के संरक्षणार्थ जो कुछ कहा, वह शब्दों के सागर में समेटा नहीं जा सकता। धन्य है वह माँ त्रिशला प्रियकारिणी, जिसने अपने एक ही पुत्र को समस्त नारियों के बीच में रखकर यह सन्देश दे दिया कि वही नारी धन्य है, जिसने ऐसे नर को जन्म दिया, जो आज भी अपना यश फैला रहा है और आत्मतत्त्व के गुणों की महिमा गा रहा है। ❖❖

महावीर के प्रति विश्रुत विद्वानों के विचार

भगवान् महावीर ने प्राणीमात्र के कल्याण के लिये महान् संदेश दिया है, ताकि सभी प्राणी शांति से रह सकें। हम उनके बताये रास्ते पर चलकर उनके योग्य उत्तराधिकारी बनें।

—जस्टिस टी.के. टुकोल

भगवान् महावीर जिन्होंने भारत के विचारों को उदारता दी, आचार को पवित्रता दी, जिसने इन्सान के गौरव को बढ़ाया, उसके आदर्श को परमात्मपद की बुलंदी तक पहुँचाया, जिसने इन्सान और इन्सान के भेदों को मिटाया, सभी को धर्म और स्वतंत्रता का अधिकारी बनाया, जिसने भारत के अध्यात्म-संदेश को अन्य देशों तक पहुँचाने की शक्ति दी। सांस्कृतिक स्रोतों को सुधारा, उन पर जितना भी गर्व करें, थोड़ा ही है।

—डॉ० हेल्मुथफान ग्लाजेनाप्प (जर्मनी)

महावीर का जीवन अनन्तवीर्य से ओत-प्रोत है। अहिंसा का प्रयोग उन्होंने स्वयं अपने ऊपर किया तथा फिर सत्य और अहिंसा के शाश्वत धर्म को सफल बनाया। जो काल को भी चुनौती देते हैं और भगवान् को 'जिन और वीर' कहना सार्थक है। आज के लोगों को उनके आदर्श की आवश्यकता है।

—डॉ० फर्नेडो बेल्लिनी फिलिप (इटली)

**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर के 'अनेकान्त' का सामाजिक पक्ष

—*श्रीमती रंजना जैन*

वर्तमान-युग व्यावहारिक उपयोगिता का युग है। जो वस्तु या सिद्धांत व्यावहारिक उपयोगिता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है, वह लोकमान्य नहीं होता है; अत: आज यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक धार्मिक सिद्धांत की व्यावहारिक उपयोगिता का गवेषणापूर्वक निर्णय करके सक्षम पद्धति से उसका प्रतिपादन किया जाये, ताकि वर्तमान परिस्थितियों में उसकी लोकमान्यता बनी रहे।

वस्तुत: यह समीक्षा मात्र लोकमान्यता के लिये ही अपेक्षित नहीं है, अपितु यह इसलिये भी जरूरी है कि उस सिद्धांत की एवं उस सिद्धांत के प्ररूपकों की सार्थकता प्रमाणित हो सके; अन्यथा वे सिद्धांत कोरी गल्प या वैचारिक खुरापात ही सिद्ध होंगे, तथा उनके प्रतिपादकों की प्रामाणिकता भी संदिग्ध हो जायेगी। इन्हीं दृष्टियों को समक्ष रखते हुये मैंने इस आलेख में 'अनेकांतवाद' सिद्धांत के सामाजिक पक्ष पर विचार प्रस्तुत करने का निर्णय लिया है।

प्रथमत: अनेकांत का सामान्य-स्वरूप यहाँ विचारणीय है। आगमग्रंथों में अनेकांत का लक्षण निम्नानुसार कहा गया है—**"को अणेगंतो णाम?— जच्चंतरत्तं"**[1]

अर्थात् अनेकांत किसको कहते हैं? —इसका उत्तर है कि जात्यंतरभाव को अनेकांत कहते हैं। अभिप्राय यह है कि अनेक धर्मों या स्वादों के एकरसात्मक मिश्रण से जो जात्यन्तरपना या स्वाद उत्पन्न होता है, वही 'अनेकांत' शब्द का वाच्य है।

इसी बात को और स्पष्ट करते हुये 'समयसार' के टीकाकार **आचार्य अमृतचंद्र सूरि** लिखते हैं कि—

"एकवस्तुनि वस्तुत्व-निष्पादक-परस्परविरुद्ध-शक्तिद्वय-प्रकाशनमनेकान्त: ।"[2]

अर्थात् एक वस्तु में वस्तुत्व की उपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकांत है।

इसी बात को न्याय की शैली में परिभाषित करते हुए 'आचार्य भट्ट अकलंकदेव' लिखते हैं—

"एकत्र प्रतिपक्षानेकधर्मस्वरूपनिरूपणो युक्त्यागमाभ्यामविरुद्ध: सम्यगनेकान्त: ।"[3]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् युक्ति व आगम से अविरुद्ध एक ही स्थान पर प्रतिपक्षी अनेक धर्मों के स्वरूप का निरूपण करना सम्यगनेकान्त है।

जिसप्रकार अतिसंक्षेप में अनेकांत के मूलस्वरूप का विचार किया गया, उसीप्रकार यह भी अपेक्षित है कि 'समाज' शब्द का अभिप्राय भी जाना जाये। प्राचीनकाल में 'समाज' शब्द का अर्थ विशेष-आयोजन होता था, जिनमें बहुत से लोग एकत्र होकर परस्पर आमोद-प्रमोद करते थे। 'बाल्मीकि रामायण' में ऐसे समाजों को राष्ट्र की समृद्धि का सूचक माना गया है— **"उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धना:"**[4]

संभवत: इसलिये सम्राट् खारवेल ने अपने हाथीगुम्फा अभिलेख में यह लिखवाया— **"उसव-समाज कारापनाहि"**[5] अर्थात् प्रजा के सुख और समृद्धि के लिये मैंने अनेकप्रकार के उत्सवों एवं समाजों का आयोजन करवाया।

प्रियदर्शी सम्राट् अशोक ने अपने 'गिरनार अभिलेख' में भी इस संबंध में उल्लेख किया है और बताया है कि ये 'समाज' दो तरह के होते थे— एक तो मात्र ऐसे जिनमें दिखावे और आडम्बर की प्रधानता थी, और दूसरे वे जो राष्ट्र की वृद्धि के निमित्त थे। इसीलिये उसने राष्ट्र की समृद्धिकारक समाजों के आयोजन की प्रेरणा दी थी, तथा आडम्बरपूर्ण समाजों के प्रति लोगों को हतोत्साहित किया था।[6]

किंतु वर्तमान संदर्भों में 'समाज' का अर्थ अनेकविध मनुष्यों का वह संगठनात्मक स्वरूप है, जो पारस्परिक हित-सुख एवं राष्ट्र की समृद्धि के लिये जुड़ते हैं और शिष्टता एवं सहयोग के अपने नियमों के अंतर्गत नई उपलब्धियों के लिये मिल-जुलकर कार्य करते हैं। 'समाज' शब्द की शाब्दिक व्युत्पत्ति भी इस पक्ष का समर्थन करती है; क्योंकि शाब्दिकरूप से 'सम्' एवं 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'जन्' धातु से समाज शब्द की निष्पत्ति मानी गयी है, जिसका अर्थ होता है कि जो अच्छी तरह से, सब ओर से उत्पत्ति या समृद्धि करे, वह समाज है। इससे स्पष्ट ज्ञापित हो जाता है कि 'बहुजनहिताय' एवं 'बहुजनसुखाय' की मंगलकामना के साथ पारस्परिक सौहार्द एवं सामूहिक उन्नति के लिये बना मनुष्यों का संगठन ही समाज है। वैसे इस संगठनात्मक स्वरूप में मनुष्यों के अलावा पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी समाहित हो जाते हैं; क्योंकि ये भी **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'**[7] की उक्ति को चरितार्थ करते हैं।

अब यहाँ प्रश्न आता है कि अनेकांत एवं समाज का क्या मेल हो सकता है? तो जैसे अनेकांत परस्पर-विरोधी अनेक धर्मों का अविरोधीभाव से एक सहावस्थान है, उसीप्रकार समाज भी धनी-निर्धन, सुशिक्षित-अल्पशिक्षित (अशिक्षित), किसान-व्यापारी, लेखक-सैनिक आदि विविध प्रकृतियों वाले लोगों का पारस्परिक अवरोध एवं सहयोग की भावना से निर्मित वह रूप है, जिसमें इतने प्रकार के लोग सहावस्थानरूप से रहते हैं तथा जो भी इस भावना का उल्लंघन करता है, उसे असामाजिक तत्त्व माना जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सामाजिक सौहार्द में संशय, छल, सर्वजनसम्मत नहीं होना एवं अनुपयोगी होना —ये समाज-विधातक-तत्त्व माने गये हैं। किन्तु अनेकांत में इनमें से कोई भी दोष नहीं पाया जाता है, इसे मैं शास्त्रों के प्रमाणों के आधार पर यहाँ क्रमश: स्पष्ट करूँगी।

अनेकांत छलरूप नहीं है, क्योंकि 'छल' का लक्षण आचार्य अकलंकदेव ने इसप्रकार बताया है—**"वचनाविघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या छलम्, यथा नवकम्बलोऽयं देवदत्त: ।"**

जहाँ वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ की कल्पना करके वचन-विघात किया जाता है, वहाँ छल होता है; जैसे 'नवकम्बलोऽयं देवदत्त:" यहाँ 'नव' शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक 9 संख्या और दूसरा 'नया' या 'नूतन' यहाँ नये विवक्षा से कहे गये 'नव' शब्द का संख्यारूप अर्थ कहना— यह छल है। जबकि अनेकांत में ऐसा नहीं है; क्योंकि मुख्य गौण-विवक्षा से संभव अनेक धर्मों का निर्णयात्मकरूप से प्रतिपादन करनेवाले अनेकांत में वचन का विघात नहीं किया गया है; अपितु वस्तुतत्त्व का यथावत् निरूपण किया गया है।

इसीप्रकार अनेकांत के संशय रूप होने का भी बहुत अच्छी तरह निराकरण आचार्य अकलंक ने किया है। वे लिखते हैं कि— "संशयहेतुरनेकान्तवाद: । कथम्? एकत्राधारे विरोधिनोऽनेकस्यासम्भवात् ।..... तच्च न कस्मात् । विशेष लक्षणोपलब्धे: इह सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्च संशय: ।..... न च तद्वदनेकान्तवादे विशेषानुलब्धि:, यत: स्वरूपादेशवशीकृता विशेषा उक्ता वक्तव्या: प्रत्यक्षमुपलभ्यन्ते । ततो विशेषोपलब्धेर्नसंशयहेतु: । विरोधाभावात् संशयाभाव: । उक्तादर्पणाभेदाद्धि एकत्राविरोधेनाविरोधो धर्माणां पितापुत्रादि-संबंधवत् । सपक्षासपक्षा- पेक्षोपलक्षितसत्त्वासत्त्वादिभेदोपचितैकधर्मबद्धा ।"[9]

अनेकांत संशय का हेतु है, क्योंकि एक आधार में अनेक विरोधी धर्मों का रहना असंभव है। इसका उत्तर है— नहीं, क्योंकि यहाँ विशेष लक्षण की उपलब्धि होती है।. ...... सामान्य धर्म का प्रत्यक्ष होने से विशेष धर्मों का प्रत्यक्ष न होने पर, किन्तु उभय-विशेषों का स्मरण होने पर संशय होता है। जैसे धुंधली रात्रि में स्थाणु और पुरुषगत ऊँचाई आदि सामान्य धर्म की प्रत्यक्षता होने पर स्थाणुगत पक्षी-निवास व कोटर तथा पुरुषगत सिर खुजाना, कपड़ा हिलना आदि विशेष धर्मों के न दिखने पर, किन्तु उन विशेषों का स्मरण रहने पर ज्ञान दो कोटि में दोलित हो जाता है कि 'यह स्थाणु है या पुरुष।' इसे संशय कहते हैं। किन्तु इसप्रकार से अनेकांतवाद में विशेषों की उपलब्धि नहीं है; क्योंकि स्वरूपादि की अपेक्षा करके कहे गये और कहे जाने योग्य सभी विशेषों की प्रत्यक्ष उपलब्धि होती है। इसलिये अनेकांत संशय का हेतु नहीं है। इन धर्मों में परस्पर विरोध नहीं है, इसलिये भी संशय का अभाव है। पिता-पुत्रादि-संबंधवत् मुख्य-गौण विवक्षा से अविरोध सिद्ध है। तथा जिसप्रकार वादी या प्रतिवादी के द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक हेतु स्वपक्ष की अपेक्षा साधक और परपक्ष की अपेक्षा दूषक होता है, उसीप्रकार एक ही वस्तु में विविध अपेक्षाओं से सत्त्व-असत्त्वादि विविध धर्म रह सकते हैं; इसलिये भी विरोध नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसीप्रकार अनेकांतवाद की किसी न किसी रूप में सर्वमत सम्मत्ता उन्होंने भली-भाँति प्रमाणित कर वे लिखते हैं—

प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक है, इसमें किसी वादी को विवाद भी नहीं है। यथा सांख्य लोग सत्त्व, रज: और तम —इन भिन्न स्वभाववाले धर्मों का आधार एक 'प्रधान' (प्रकृति) मानते हैं। उनके मत में प्रसाद, लाघव, शोषण, अपवरण, सादन आदि भिन्न-भिन्न गुणों का 'प्रधान' से अथवा परस्पर में विरोध नहीं है। वह 'प्रधान' नामक वस्तु उन गुणों से पृथक् ही कुछ हो सो भी नहीं है, किन्तु वे ही गुण साम्यावस्था को प्राप्त करके 'प्रधान' संज्ञा को प्राप्त होते हैं। और यदि ऐसे हों, तो प्रधान भूभा (व्यापक) सिद्ध होता है। यदि यहाँ पर कहा कि उनका समुदाय प्रधान एक है, तो स्वयं ही गुणरूप अवयवों के समुदाय में अविरोध सिद्ध हो जाता है। वैशेषिक आदि सामान्य-विशेष स्वीकार करते हैं। एक ही पृथ्वी स्वव्यक्तियों में अनुगत होने से सामान्यात्मक होकर भी जलादि से व्यावृत्ति कराने के कारण विशेष कहा जाता है। उनके यहाँ 'सामान्य ही विशेष है' इसप्रकार पृथिवीत्व आदि को सामान्य-विशेष माना गया है। अत: उनके यहाँ भी एक आत्मा के उभयात्मकपन विरोध को प्राप्त नहीं होता। बौद्धजन कर्कश आदि विभिन्न लक्षणवाले परमाणुओं के समुदाय को एकरूप स्वलक्षण मानते हैं। इनके मत में भी विभिन्न परमाणुओं में रूप की दृष्टि से कोई विरोध नहीं है। विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्ध एक ही विज्ञान को ग्राह्याकार, ग्राह्याकार और संवेदनाकार —इसप्रकार त्रयाकार स्वीकार करते ही हैं। सभी वादी पूर्वावस्था को कारण और उत्तरावस्था को कार्य मानते हैं। अत: एक ही पदार्थ में अपनी पूर्व और उत्तर-पर्यायों की दृष्टि से कारण-कार्य-व्यवहार निर्विरोधरूप से होता है। उसीतरह सभी जीवादि पदार्थ विभिन्न अपेक्षाओं से अनेक धर्मों के आधार सिद्ध होते हैं।

अनेकांत के उपदेश का प्रयोजन बताते हुये आचार्य अमृतचंद्र सूरि लिखते हैं— "अनेकांत के ज्ञान के बिना आत्मवस्तु की प्रसिद्धि (ज्ञान) नहीं हो सकती है।"[11]

आचार्य समन्तभद्र इसी तथ्य की पुष्टि करते हुये लिखते है कि—"अनेकांत-दृष्टि ही सच्ची दृष्टि है। तथा एकांत मान्यतायें असत् सिद्ध होती हैं, इसलिये अनेकांत-दृष्टि से रहित सभी मान्यताओं को मिथ्या कहा गया है।[12]

वस्तुत: विरोध में भी अविरोध की स्थापना अनेकांतवाद की कृपादृष्टि के बिना संभव नहीं है।[13] सभी विद्वानों ने अनेकांतमय-चिन्तन और प्ररूपण को विरोध-नाशक होने से अनेकांत की प्रबलता का समर्थन किया है।[14]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अनेकांत जहाँ प्रत्येक वस्तुतत्त्व में परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों को अविरोधीभाव से युगपत् रहने की बात कहता है, वहीं अनेकांत का सिद्धांत व्यक्ति के चिंतन को भी 'विरोध को विरोध न समझकर उसकी अपेक्षा एवं विवक्षा को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझकर' सहनशीलता का पाठ भी पढ़ाता है। और यही सहनशीलता व्यक्ति के व्यक्तित्व में ऐसे संस्कार उत्पन्न करती है, जिससे उसकी सामाजिक व्यवस्था के अंग के रूप में उपादेयता बढ़ जाती है।

जैसे एक नगर में बढ़ई, लोहार, चर्मकार, व्यापारी, मजदूर, प्रशासक आदि अनेक भिन्न प्रकृति के लोगों का सहावस्थान हुये बिना और इनकी एक-दूसरे के प्रति अपने-अपने कार्य एवं स्वरूप को सुरक्षित रखते हुये अविरोधी दृष्टि हुये बिना समाज का ढाँचा निर्मित ही नहीं हो सकता है, अत: 'समाज' के वर्तमान स्वरूप में अनेकान्त-दृष्टि की अपरिहार्यता सिद्ध होती है। आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो अनेकांतवाद की सर्वाधिक मुखर स्वीकृति मिलती है; क्योंकि इसमें परस्पर विरोधी दल एक ही जगह बैठकर एक ही संविधान की शपथ लेकर एक राष्ट्र की भावना से अपनी-अपनी विचारधारा की स्वतंत्र अभिव्यक्ति करते हैं। वस्तुत: उनमें से राष्ट्रीयता का विरोध कोई नहीं करता, अत: उन्हें परस्पर विरोधी होते हुये भी एक ही राष्ट्र का सांसद कहा जाता है। इसप्रकार अनेकांतवाद की दृष्टि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र इन सभी के संरचना का मूल आधार है। तथा संयुक्त राष्ट्र का सिद्धांत भी परस्पर विरुद्ध या भिन्न प्रकृतियों के होते हुये भी सह-अस्तित्व की भावना की स्वीकृति पर आधारित है। इसप्रकार अनेकांतवाद का वैश्वीकरण हमें परिलक्षित होता है।

संदर्भग्रंथ-सूची

1. धवला, 15/25/1।
2. समयपाहुड, आत्मख्याति टीका, परिशिष्ट।
3. राजवार्तिक, अध्याय 1, सूत्र 6-7 की वार्तिक 35।
4. बाल्मीकि रामायण।
5. हाथीगुम्फा अभिलेख।
6. गिरनार का अभिलेख।
7. तत्त्वार्थसूत्र।
8. राजवार्तिक, अध्याय 1, सूत्र 6 से 8, पृष्ठ संख्या 36।
9. वही, अध्याय 1, सूत्र 6, वार्तिक 9 से 12।
10. वही, अध्याय 1, सूत्र 6, वार्तिक 14; तथा गीता, 13/14-16, एवं ईशोपनिषद्, 8।
11. राजवार्तिक, अध्याय 1, सूत्र 6 से 8, पृष्ठ संख्या 36।
12. द्रष्टव्य, समयसार परिशिष्ट।
13. स्वयंभूस्तोत्र, कारिका 98।
14. पंचास्तिकाय-तत्त्वप्रदीपिका, गाथा 21।
15. पंचाध्यायी पूर्वार्द्ध, गाथा 227।

❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी सम्मान की प्रतीक 'चन्दना'

—कु० ममता जैन

श्रमण-संस्कृति में गणिनी आर्यिका चन्दना का नाम अतीव श्रद्धा के साथ लिया जाता है। उनके व्यक्तित्व में एक अपार जिजीविषा का ऐश्वर्य है, शीलव्रत का प्रकाश है; और भक्ति का शौर्य है, यौवन में दारुण दु:खों को सहा; लेकिन वह अपने शीलव्रत से नहीं डिगीं। कल्पना कीजिए यदि भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धानवत हो तलघर में से ही बन्दिनी चन्दना 'अत्र अवतरत-अवतरत-अवतरत तिष्ठत तिष्ठत तिष्ठत नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु' न पुकारती, तो क्या चन्दना 'महासती चन्दना' बन सकती थी। विषवृक्षों के बीच चन्दनी सुवास की यह सारी कहानी मानों काल ने ही अपने हाथों से रची थी। अग्नि में कुन्दन बनकर चन्दना दमकी। अपने तप, नियम, व्रत और सहिष्णुता से उन्होंने सेठानी को ही पराभूत नहीं किया; अपनी युगीन नारियों का शीश उन्नत कर उन्हें गौरवास्पद बनाया। आहारदान देकर चन्दना ने भगवान् महावीर के साथ-साथ स्वयं को भी अमर कर लिया। युग बीत गया, लेकिन चन्दना का चरित आज भी प्रासंगिक है। कलियुग में सभी कुछ बदल गया हो, पर चन्दना की आहारदान की कथा आज भी जीवित है। आज भी समाज में तमाम विसंगतियाँ हैं, कदम-कदम पर विद्याधर और सेठानी हैं, लेकिन चन्दना तो चन्दना है, उसी में नारी का सौन्दर्य है और लाज है। भगवान् महावीर भी चन्दना का उद्धार तभी कर सके, जब चन्दना ने बन्धनों की उपेक्षा की अपने अन्तरंग से साक्षात्कार किया; इसीलिए युग की शुभ्र भाषा उस बन्दिनी के दिव्य आलोक की किरणों में स्नात कर जगत् के मर्म-मन्दिर के द्वार खोलकर त्रैलोक्य में नवज्योति और अज्ञान-विभावरी को छिन्न-भिन्न कर नारी-शक्ति की ललित-भाषा से काल के सूची-पत्र पर अपने सशक्त हस्ताक्षर अंकित कर सकी।

दुर्भाग्य की काली-छाया वैशाली-नरेश राजा चेटक की पुत्री को विद्याधर के रूप में अपहरण कराकर भी संतुष्ट नहीं हुई। जंगल-जंगल भटकती तड़पती चन्दना ने अश्रुजल से अपने दुष्कर्मों का प्रक्षालन किया। सेठानी का संताप सहती रही, अपमान के घूँट पीकर राजकुमारी दासी बन गई; किन्तु चन्दना ने धैर्य और विवेक का आंचल संभाल कर रखा। मानसिक दैन्य और सांस्कृतिक दारिद्रय प्रकट न कर अपनी आन्तरिक ऊर्जस्विता एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन्तता का परिचय दिया। अपनी साधना से संकीर्णता की बेड़ियों में अपने को बंधने नहीं दिया। मृत्यु के नागपाश में अपने को नहीं फंसने दिया। सब कुछ रौंदकर, सब कुछ छोड़कर वह विजय-यात्रा के लिए निकली।

आर्या चन्दना इस युग की सुवर्णाशा है; उसके ज्योति-पुंज में न जाने कितने सूर्य, राशि, नक्षत्र, अनिन्द्य लावण्यलोक अन्तर्हित हैं। जब तक महावीर का युग है, तब तक चन्दना की भी यशोगाथा जीवित है। वह समस्त संस्कृति की गति है, धर्म व साहित्य के अमृत-स्वरों की जाह्नवी है। उनका श्रद्धास्पद-चरित श्राविका और आर्यिका दोनों ही रूपों में वरेण्य है। भगवान् महावीर के 2600वें जन्मोत्सव के आलोक में गणिनी आर्यिका चन्दना को विस्मृत नहीं किया जा सकता। यह वर्ष उनके भी यश की शाखायें प्रशाखायें चतुर्दिक् प्रसारित कर जैनधर्म में नारी-जाति को सहज प्रदत्त समानता और सम्मान के पुण्यतीर्थ और कीर्तिस्तम्भ स्थापित करेगा। ❖❖

तीर्थंकर महावीर और महात्मा बुद्ध

वास्तव में तीर्थंकर महावीर और महात्मा बुद्ध समदेश, समकाल एवं समसंस्कृति के दो क्षत्रिय राजकुमार हुए, जिन्होंने आत्मधर्म और लोकधर्म का 2500वर्ष पूर्व प्रसार किया।

इन दोनों महान् आत्माओं के जीवन, सिद्धान्त, धर्म आदि का अध्ययन करने में निम्नलिखित तुलनात्मक तथ्यतालिका बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

क्र०	विषय	आत्मधर्म-प्रकाशक महावीर	लोकधर्म-प्रचारक बुद्ध
1.	नाम	वर्द्धमान	बुद्ध
2.	पिता	सिद्धार्थ	शुद्धोधन
3.	माता	त्रिशला	महामाया
4.	गोत्र	कश्यप	कश्यप
5.	ग्राम	कुण्डग्राम (वैशाली)	कपिलवस्तु (लुम्बिनी)
6.	वंश	ज्ञातृ	शाक्य
7.	जाति	क्षत्रिय	क्षत्रिय
8.	जन्म	ई०पू० 598	ई०पू० 582
9.	धर्म	अर्हन्त	आर्हत
10.	ज्ञानप्राप्ति-स्थान	ऋजुकूलातट	गया
11.	निर्वाण	ई०पू० 527	ई०पू० 502
12.	निर्वाणस्थान	पावापुरी	कुशीनगर
13.	आयुष्य	72 वर्ष	80 वर्ष
14.	व्रत	पंच-महाव्रत	पंचशील
15.	सिद्धान्त	स्याद्वाद	क्षणिकवाद

✳✳

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक-समीक्षा

(1)

पुस्तक का नाम : मध्यप्रदेश का जैन शिल्प
लेखक : नरेश कुमार पाठक
प्रकाशक : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
संस्करण : प्रथम, 2001 ई०
मूल्य : 300/- (शास्त्राकार, पेपरबैक, लगभग 400 पृष्ठ)

जैन-संस्कृति की दृष्टि से मध्यप्रदेश अत्यंत समृद्ध प्रांत है। इसमें विभिन्न राजवंशों के द्वारा कई शताब्दियों तक निरन्तर जैन-परम्परा, संस्कृति, शिल्प एवं साहित्य का प्रचुर-परिमाण में निर्माण, संवर्द्धन एवं सम्पोषण हुआ है। पर्यटन एवं तीर्थाटन के क्रम में लोग आकर आंशिक रूप में से देखते तो हैं, और देखना चाहते भी हैं; किन्तु इसकी कोई व्यवस्थित जानकारी देने वाली प्रामाणिक पुस्तक का अभाव खेदजनक था। यह हर्ष का विषय है कि जिज्ञासु शोधकर्त्ता श्री नरेश पाठक ने प्रभूत श्रमपूर्वक वर्षों तक समर्पित होकर अध्ययन एवं अनुसंधान करके एक प्रामाणिक कृति का निर्माण किया है। तदर्थ वे भरपूर बधाई एवं साधुवाद के पात्र हैं।

इस कृति का प्रकाशन कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के द्वारा हुआ है, अत: वह भी प्रशंसा के योग्य है। जहाँ एक ओर इस कृति के निर्माण में अनुसंधाता का अपार श्रम एवं समर्पण झलकता है, वहीं इसके प्रकाशन में यथासंभव गरिमा रहते हुये भी चित्रों के प्रकाशन में अधिक स्पष्ट मुद्रण नहीं हो पाने से कुछ और अधिक सावधानी की अपेक्षा का अनुभव होता है। सम्पादन की दृष्टि से भी जहाँ विद्वद्वर्य डॉ० अनुपम जी की अतिव्यस्तता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, वहीं इस महनीय कृति की बाइंडिंग इसके आकार एवं विषय-गरिमा के अनुरूप न हो पाने का अनुभव भी होता है।

फिर भी समग्र-रूप से यह कृति समाज के द्वारा तथा संस्कृति एवं पुरातत्त्व के प्रेमियों के द्वारा तो आदरणीय है ही, पर्यटन की रुचि रखनेवालों के लिये भी इसमें कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ हैं, जो उनके पर्यटन को अधिक रोचक और ज्ञानवर्धक बना सकेंगी।

—सम्पादक **

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(2)

पुस्तक का नाम	: धवलगान
सम्पादक	: डॉ० सुभाषचंद्र अक्कोळे
प्रकाशक	: अनेकांत शोधपीठ, बाहुबली, जिला–कोल्हापुर (महा०)
संस्करण	: प्रथम, 2001 ई०
मूल्य	: 100/- (डिमाई साईज़, पेपर बैक, लगभग 160 पृष्ठ)

मराठी भाषा में अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति विपुल परिमाण में धार्मिक प्रकीर्णक साहित्य का निर्माण हुआ, जो कि प्राय: धर्मानुरागियों के स्वरों में ही जीवित रहकर गतिशील बना रहा। किंतु कालक्रम से इसमें बहुत सारी प्रकीर्णक रचनायें लुप्त होती गईं। अत: यह आजके युग के संसाधनों के अनुरूप अत्यंत आवश्यक था कि ऐसे साहित्य को सम्पादित एवं प्रकाशित कर इसका संरक्षण किया जाये। इस विधि से न केवल यह साहित्य संरक्षित होगा, अपितु इसे पुर्नजीवन भी मिलेगा।

यह हर्ष का विषय है कि महाराष्ट्र के कई विद्वान् अत्यंत श्रमपूर्वक मराठी-साहित्य के संरक्षण, सम्पादन, निर्माण एवं प्रकाशन में समर्पितभाव से संलग्न हैं। इसी क्रम में एक विशिष्ट नाम है डॉ० सुभाषचंद्र अक्कोळे का, जिन्होंने अपने सुदीर्घ वैदुष्यपूर्ण जीवन में अनेकों यशस्वी पत्रिकाओं का निमित्त सम्पादन किया तथा अनेकों कृतियों का निर्माण भी किया। विशेष बात यह है कि उनके द्वारा हुआ प्रत्येक साहित्यिक कार्य प्रामाणिकता की दृष्टि से आदरणीय होता है।

प्रस्तुत कृति में भी उन्होंने महाराष्ट्री अपभ्रंश एवं प्राचीन मराठी के गद्य-पद्य रूप प्रकीर्णक छोटी-छोटी रचनाओं को सुसम्पादित करके संगृहीत किया है। तथा इनके संदर्भ स्तरों की प्रामाणिक सूची दी है। मूल शब्द प्राचीन ग्रंथों के होने के कारण उनके अर्थबोध में कठिनाई न हो, इसके लिये एक संक्षिप्त शब्दकोश भी इसके साथ दिया है। इसप्रकार यह कृति अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। आशा है जिज्ञासु विद्वानों एवं समाज के सभी वर्गों में यह व्यापक उपयोगी सिद्ध होगी। **—सम्पादक ****

(3)

पुस्तक का नाम	: रत्नाकर
मूल-लेखक	: प्रो० जी० ब्रह्मप्पा *एवं* एम०वी० श्रीनिवास
हिन्दी-अनुवाद	: डॉ० एन०एस० दक्षिणामूर्ति
प्रकाशक	: एस०डी०जे०एम०आई० मैनेजिंग कमेटी, श्रवणबेलगोल (कर्नाटक)
संस्करण	: प्रथम, 2001 ई०
मूल्य	: 60/- (डिमाई साईज़, पेपर बैक, लगभग 180 पृष्ठ)

कन्नड़ भाषा के कवियों में कविवर रत्नाकर वर्णी का नाम प्रथम श्रेणी में लिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है, इनके द्वारा रचित 'भरतेश वैभव' नामक काव्य सम्पूर्ण कन्नड़ साहित्य का कृति-स्तंभ कहा जाता है। कविवर रत्नाकर वर्णी का जीवन एवं कृतित्व हिन्दी के पाठकों को रोचक कथानक की शैली में प्रस्तुत करने का यह प्रयास अत्यंत श्लाघनीय माना जाना चाहिये, क्योंकि प्राय: ऐसा होता है कि उत्तर भारत के लोगों को दक्षिण भारत के साहित्य एवं साहित्यकारों के बारे में सामान्य जानकारी भी नहीं होती है, तो उनकी व्यवस्थित जानकारी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसका प्रमुख कारण हिन्दी भाषा के माध्यम से उनके जीवन एवं साहित्य की रोचक प्रस्तुति नहीं होना ही है।

'खारवेल-पुरस्कार' से सम्मानित यशस्वी विद्वान् प्रो० जी० ब्रह्मप्पा कन्नड़ भाषा एवं साहित्य के सिद्धहस्त लेखक हैं। उनके द्वारा श्री एम० वी० श्रीनिवास के सहयोगपूर्वक मूल कन्नड़ में एक औपन्यासिक कृति का निर्माण हुआ, जिसका समर्थ अनुवादक डॉ० दक्षिणामूर्ति ने हिन्दी भाषा के प्रवाह, प्रबंधन एवं शैली के अनुरूप इसका अनुवाद प्रस्तुत कर दक्षिण भारत के यशस्वी जैन विद्वान् के जीवन और साहित्य को सुरुचिपूर्ण ढंग से सम्पूर्ण देश के जिज्ञासुओं के लिये एक अनुपम कार्य किया है। अत: ये सभी विद्वान् अभिनंदनीय हैं। साथ ही भट्टारक कर्मयोगी श्री चारुकीर्ति स्वामी जी के प्रति भी विनम्र कृतज्ञता का भाव सहज ही उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि उन्हीं के कृपा-कटाक्ष से इस कृति का निर्माण, अनुवाद एवं प्रकाशन का महनीय कार्य गरिमापूर्वक सम्पन्न हो सका है। 'चन्द्रगिरि चिक्कबेटक महोत्सव' के शुभ आयोजन के निमित्त ऐसी कृतियों के निर्माण और प्रकाशन का शुभ संकल्प लिया जाना एक अनुकरणीय दिशाबोध है, जो आज के आडम्बर-प्रधान आयोजनों के आयोजकों को विचार करने एवं अनुकरण करने योग्य है। ऐसे गरिमापूर्ण एवं सर्वांग सुन्दर प्रकाशन के लिये प्रकाशक-संस्थान भी हार्दिक बधाई का पात्र है।

—सम्पादक ✱✱

(4)

पुस्तक का नाम : चामुण्डराय वैभव
मूल-लेखक : जीवंधरकुमार होतपेटे
हिन्दी-अनुवाद : प्रो० धरणेन्द्र कुरकुरी
प्रकाशक : एस०डी०जे०एम०आई० मैनेजिंग कमेटी, श्रवणबेलगोल (कर्नाटक)
संस्करण : प्रथम, 2001 ई०
मूल्य : 24/- (डिमाई साईज़, पेपर बैक, लगभग 80 पृष्ठ)

उत्तर भारत के जैनसमाज को दक्षिण भारत तक चुम्बकीय आकर्षण प्रदान करने में श्रवणबेलगोल की इन्द्रगिरि पहाड़ी पर शोभायमान परमपूज्य गोम्मटेश्वर बाहुबलि स्वामी का निर्माण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। इसके साथ ही साहित्य के संरक्षण एवं नवनिर्माण के लिये अनुकूल वातावरण और परिस्थितियों का बनना भी एक व्यापक धरातल प्रदान करता है। इन दोनों ही कार्यों के मूल में जहाँ परमपूज्य सिद्धान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र की दूरदृष्टि एवं पावन सन्निधि आध्यात्मिक कारण के रूप में थे, वहीं परमप्रतापी चामुण्डराय की अगाध समर्पण-वृत्ति तथा दूरदर्शितापूर्ण प्रशासनिक शैली भी इसे मूर्तरूप प्रदान करने में प्रमुख भूमिका रखती है।

ऐसे महामानव चामुण्डराय के जीवन एवं दर्शन को उत्तरभारत के हिन्दीभाषी जनों के लिये संक्षिप्त, किन्तु रोचक रूप में प्रस्तुत करके विद्वान् लेखक, अनुवादक एवं प्रकाशन संस्थान ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अत: वे सभी वर्धापनीय हैं।

साथ ही यह कृति भी भट्टारक कर्मयोगी श्री चारुकीर्ति स्वामी जी के कृपा-कटाक्ष से निर्मित, सम्पादित एवं प्रकाशित हो सकी है, अत: उनके प्रति भी विनम्र कृतज्ञता का भाव सहज ही उत्पन्न हो जाता है। 'चन्द्रगिरि चिक्कबेटक महोत्सव' के शुभ आयोजन के निमित्त ही इस कृति का भी निर्माण और प्रकाशन हुआ है। ऐसे गरिमापूर्ण एवं सर्वांग सुन्दर प्रकाशन के लिये प्रकाशक-संस्थान भी हार्दिक बधाई का पात्र है।

—सम्पादक **

(5)

पुस्तक का नाम : शौरसेनी प्राकृतभाषा एवं उसके साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
लेखक : प्रो० (डॉ०) राजाराम जैन
प्रकाशक : कुन्दकुन्द भारती न्यास, नई दिल्ली-110067
संस्करण : प्रथम, 2001 ई०, (डिमाई साईज़, पेपर बैक, लगभग 204 पृष्ठ)

भारतीय वाङ्मय के गौरवपूर्ण साहित्य में शौरसेनी प्राकृतभाषा का साहित्य अन्यतम है। नाट्य-साहित्य से लेकर दार्शनिक एवं आगम-साहित्य तक इसका व्यापक प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेकविध लोक-साहित्य भी इसी भाषा में लिखा गया है। इस भाषा की उत्तराधिकारिणी महाराष्ट्री प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषा का साहित्य भी कई दृष्टियों से शौरसेनी प्राकृत के साहित्य से उपजीवित है; अत: शौरसेनी प्राकृत के साहित्य की व्यापकता एवं महनीयता विद्वज्जगत् में स्वत: प्रमाणित है।

शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध जैन धार्मिक साहित्य का भाषिक एवं साहित्यिक दृष्टि से परिचयात्मक मूल्यांकन इस शोधपरक कृति में विद्वान् लेखक ने अत्यंत श्रमपूर्वक प्रस्तुत किया है। तथा प्रकाशक-संस्थान ने भी उसी के अनुरूप गरिमापूर्वक इसका प्रकाशन करके इसकी महत्ता को बढ़ाया है। अत: विद्वान् लेखक एवं प्रकाशक संस्थान —दोनों ही अभिनंदनीय हैं।

शौरसेनी प्राकृत के धार्मिक-साहित्य के बहुदृष्टीय अध्ययन की दृष्टि से जिज्ञासु छात्रों, शोधकर्त्ताओं, विद्वानों एवं सामाजिक व्यक्तियों —सभी के लिये यह कृति बहुत उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इसकी प्रतियाँ प्रत्येक पुस्तकालय तथा विद्वानों के निजी संग्रह में अवश्य होनी चाहिये। **—सम्पादक ****

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिमत

✪ प्राकृतविद्या का अक्तूबर-दिसम्बर 2000 का अंक प्राप्त हुआ। हमेशा की तरह इस अंक का संपादकीय तथा प०पू० आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज का आलेख अत्यंत विद्वत्तापूर्ण लगे। अन्य आलेख भी श्रेष्ठ हैं। पत्रिका अतिशय ज्ञानवृद्धि तथा जैनदर्शन के मर्म को प्रकट करनेवाली है। प्रत्येक आलेख चिंतन-मनन के बिन्दु प्रदान करता है। आपका प्रयास पूर्णत: सराहनीय है। सम्पादक मंडल को हार्दिक बधाई।

—**लाल चन्द जैन 'राकेश'**, *विदिशा (म०प्र०)* ✷✷

✪ 'प्राकृतविद्या' का अक्तूबर-दिसम्बर 2000 का अंक प्राप्त हुआ, तदर्थ धन्यवाद। अंक पठनीय सामग्री से भरपूर है, अंक आकार और साज-सज्जा भी अंक को स्पृहणीय बनाती है। प्राकृतविद्या के द्वारा जैनधर्म, दर्शन के क्षेत्र में होने वाले कार्य के लिये हार्दिक बधाई।

—**प्रो० बलिराम शुक्ल**, *पुणे (महा०)* ✷✷

✪ 'प्राकृतविद्या' का अक्तूबर-दिसम्बर 2000 ई० का अंक प्राप्त हुआ—आभार। अंक की सम्पादकीय में उठाये गये 'गोरक्षा और गोवध' संबंधी विचार गहन अध्ययन का परिणाम है। जिस कुशलता से विषय का विश्लेषण किया गया वह प्रशंसनीय है। भारतीय दर्शन एवं जैनदर्शन दिगम्बर-परम्परा के मनीषी और वर्तमान स्थिति आलेख संक्षिप्त होते हुये भी सारगर्भित है। प्राकृतभाषा तथा अपभ्रंश भाषा सम्बन्धी लेख एक अपनी पृथक् पहचान रखते हैं, जो पठनीय होकर चिन्तन करने योग्य है। 'पज्जुण्णचरिउ' ग्रंथ का मूल्यांकन बड़ी सूझबूझ और नवीनता लिये है।

शौरसेनी प्राकृत-संबंधी श्रीमती मंजूषा सेठी, डॉ० माया जी के आलेख गंभीरता से विषय को सोचने और समझने को बाध्य करते हैं। 'पुस्तक समीक्षायें' भी पुस्तक देखने की ललक जगाती है। अंक की अन्य सामग्री भी पठनीय होकर ज्ञानवर्द्धक है। सही पूछिये तो प्राकृतविद्या के सभी अंक संग्रहणीय होते हैं — इनके पीठे सम्पादक की दूरदर्शिता, कुशलता व बुद्धिमत्ता ही कही जायेगी। ऐसे सुन्दर अंक-हेतु बधाई स्वीकार कीजिये।

—**मदन मोहन वर्मा**, *ग्वालियर (म०प्र०)* ✷✷

✪ आपके कुशल, सक्षम एवं प्रभावी संपादकत्व में एवं पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के मार्गदर्शन में प्रकाशित 'प्राकृतविद्या' को प्रगति के सर्वोच्च शिखर पर देखकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हार्दिक प्रसन्नता होती है और मैं स्वयं को अत्यंत सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मैं 'प्राकृतविद्या' का स्थायी सदस्य हूँ।

स्वर्गीय साहू अशोक जैन की प्रतिमा (स्टेच्यू) एवं डॉ० हुकुमचन्द जी भारिल्ल के राष्ट्रस्तरीय सम्मान से स्पष्ट है कि श्रावकों के प्रति विशेषत: विद्वान् एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता के प्रति आचार्य श्री के भावानुराग ने मूर्तिमंत स्वरूप ग्रहण कर लिया है।

पण्डित सुखलाल जी संघवी का लेख 'वर्तमान सामाजिक परिवेश' में चतुर्विध संघ के लिये पठनीय, मननीय, चिंतनीय एवं शब्दश: अनुकरणीय है। डॉ० मंगलदेव शास्त्री की यह प्रस्तुति कि— "जैनाचार्यों ने अनेकान्तवाद के द्वारा दार्शनिक आधार पर विभिन्न दर्शनों में विरोध भावना को हटाकर परस्पर समन्वय स्थापित करने का एक सत्प्रयत्न किया है", स्वर्ण-पटि्टका पर अंकित कर सदैव स्मरण रखते हुये अपने प्रत्येक व्यवहार में हमें कार्यान्वित करना चाहिये और आपने सांस्कृतिक मूल्यों को नये आयाम देना चाहिये।

अब यह आवश्यक हो गया है कि हमारे श्रमण एवं श्रमणी, श्रावक एवं श्राविकायें अपने व्यवहार में अहिंसा, विचार में अनेकांत और वाणी में स्याद्वाद के ठोस उदाहरण प्रस्तुत करें और पंथवाद की संकीर्ण विचारधाराओं से ऊपर उठकर जैनदर्शन को विश्व के समक्ष आधुनिक एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करें।

प्राकृतभाषा के सिद्धहस्त लेखक-युगल डॉ० उदयचन्द्र जी एवं उनकी सहधर्मिणी माया जी की लेखनी निश्चित ही सराहनीय एवं प्रशंसनीय हैं। 'प्राकृतविद्या' के माध्यम से जैनदर्शन के सतत् जागरण में आपकी प्रभावी भूमिका अत्यधिक सराहनीय है और निश्चित ही आप हार्दिक बधाई के सुपात्र हैं। —**सुरेश जैन,** *आई.ए.एस, भोपाल (म०प्र०)* ✱✱

✪ सर्वप्रथम मैं आपके द्वारा प्रेषित 'प्राकृतविद्या' के 'अक्तूबर-दिसम्बर 2000' के अंक के लिये धन्यवाद देना चाहूँगी। साथ ही नई दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय दार्शनिक सम्मेलन के अवसर पर दर्शन के सेवानिवृत्त प्राध्यापकों के स्वागत, आतिथ्य तथा सम्मान-हेतु व्यक्तिगतरूप धन्यवाद देना आपका आभार व्यक्त करना चाहती हूँ।

आपके संस्थान द्वारा प्रकाशित 'प्राकृतविद्या' निसंदेह ज्ञान का प्रकाश फैला रही है, जिसमें जैनदर्शन के मूर्धन्य विद्वानों, मनीषियों के विचारों की गंगा प्रवाहित हो रही है। प्रस्तुत अंक में 6 अप्रैल 2001 को घटित घटना के संदर्भ में आपकी चिन्ता स्वाभाविक है। यदि इसप्रकार की घटनाओं को रोका नहीं गया, तो जैनदर्शन के विचारों पर ही प्रश्नचिह्न लग जायेगा और जैनदर्शन के उदारवादी चिन्तन-अनेकान्तवाद और स्याद्वाद के विशाल दृष्टिकोण पर से आस्था डगमगाने लगेगी।

आपकी पत्रिका के सुदृढ़ विचारों द्वारा ही जैन मतावलम्बियों को इस संकुचित दृष्टिकोण से बचाना होगा, ताकि सही मार्गदर्शन द्वारा जैनदर्शन के उदार विचारों का वर्चस्व बना रहे। —**डॉ० शकुन्तला सिन्हा,** इन्दौर *(म०प्र०)* ✱✱

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❂ 'प्राकृतविद्या' का 'अक्तूबर-दिसम्बर 2000' का अंक मिला। पत्रिका का संयोजन विषयवस्तु साजसज्जा सभी मनमोहक, गूढ़-अर्थभरी और विचारोत्तेजक है — कुशल सम्पादन-कल्पनाशीलता के लिये बधाई।

आवरण पृष्ठ गूढ़ अर्थ लिये है, जो रूढ़ अर्थ से भिन्न लगा। गायरूपी 'व्यवहार' और शावकरूपी 'निश्चय' एक पक्ष; और सिंहनीरूपी 'निश्चय' और बछड़ारूपी 'व्यवहार' — दूसरा पक्ष। अहिंसा की प्रतिष्ठा-हेतु रूढ़-चित्र वस्तुत: निश्चय-व्यवहार की संतति, समन्वय एवं समाहार को सूचित करता है। प्राथमिक अवस्था गाय-शावक की है और उन्नत अवस्था सिंहनी-बछड़े की है। दोनों का एक साथ जलपान व्यवहार-निश्चय का साम्य धर्म प्रति जैसा है। चित्र-संयोजन हेतु बधाई। नवीन कल्पना की यर्थाथता की तर्क-परीक्षा अपेक्षित है।

सम्पादकीय 'गोरक्षा ओर गोवध' की शब्द/भाषा समीक्षा एवं अनुसंधान के लिये आपको बधाई। जबसे गोरक्षा जैन-संस्कृति का अंग बनने लगा, मेरे जैसे अनेकों के दिमाग में यह बात उलझन पैदा करने लगी कि आखिर स्वाध्यायशाला, औषधशाला, धर्मशाला के साथ इनके स्थान पर गौशाला क्यों? अज्ञानता के कारण इस प्रकरण पर चर्चा भी नहीं कर सका। आपके सम्पादकीय ने स्पष्ट कर दिया कि गो-शाला का अर्थ विशाल है; जिसमें वाणी, संयम, आत्मसंयम, पर्यावरण संयम आदि बहुत कुछ आ जाता है। आवश्यकता है कि सभी सम्बद्धजन 'गो' का व्यापक अर्थ समझकर जीवन का अंग बनावें और संकीर्णता से जीवन की रक्षा करें।

राष्ट्रसंत आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज का आलेख 'अग्नि और जीवत्वशक्ति' अग्नि का समग्र शोधकार्य है, जो जैनदर्शन में अग्नि-विषयक सभी आयामों का सूक्ष्म विश्लेषण कर विचार एवं शोध-खोज हेतु व्यापक-सारभूत सामग्री देता है।

विचारक मनीषी पं० संघवी जी का आलेख 'दिगम्बर-परम्परा के मनीषी और वर्तमान स्थिति' उनकी अद्भुत मूल्यांकन क्षमता की सौगात है। उनके निष्कर्ष यथार्थ प्रतीत होते हैं कि जैन-परम्परा में पूर्ववर्ती आचार्यों के अ-समान साहित्यिक मनोवृत्ति अत्यंत अनुदार और संकुचित हो गयी है। वर्तमान में स्थिति तो और भी भयावह हो गयी है; जहाँ अन्य दार्शनिक ग्रंथों का पठन-पाठन तो बहुत दूर, जैन-साहित्य के अमुक-अमुक स्थानों/प्रेसों से प्रकाशित जैन ग्रंथालयों/देवालयों से पृथक् किये जा रहे हैं। आठ सदी की जैन-साहित्यिक-प्रकृति की समीक्षा नये युग का सूत्रपात्र करने में सहयोगी देती। जैनश्रमण-श्रावक, विद्वान् सभी साहित्यिक अनुदारता-संकीर्णता को विसर्जित कर विशाल दृष्टिकोण का परिचय देंगे।

ओशो टाइम्स की डॉ० भारिल्लकृत 'समयसार अनुशीलन' की इस समीक्षा से जैनाचार्यों एवं श्रावकों को अपनी निर्णय क्षमता, गुणग्राहकता एवं विशाल हृदयता (जो अनेकान्त से सहज पैदा होती है) को प्रश्नचिह्नित कर देती है। यह समीक्षा हमें विचार/निर्णय का नया आयाम देगी —ऐसी आशा है। —**डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल,** *अमलाई (म०प्र०)* ✱✱

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार दर्शन

'ब्राह्मी-पुरस्कार' एवं 'अहिंसा-पुरस्कार' समर्पित

परमपूज्य **आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज** की पावन प्रेरणा एवं मंगल-आशीर्वाद से 'त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान' के द्वारा प्रवर्तित भारतीय विद्याओं के क्षेत्र में उत्कृष्ट अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिये प्रवर्तित 'ब्राह्मी-पुरस्कार' (वर्ष 2001) एवं 'अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट' मुम्बई द्वारा प्रवर्तित 'अहिंसा-पुरस्कार' (वर्ष 2001) दिनांक 10 जून 2001 रविवार को राजधानी के सुप्रतिष्ठित 'सीरीफोर्ट सभागार' में आयोजित भव्य-समारोह में समर्पित किये गये।

परमपूज्य **आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज** के पावन सान्निध्य में आयोजित इस समारोह में 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' की अध्यक्षा **श्रीमती सोनिया गाँधी जी** 'मुख्य-अतिथि' के रूप में पधारी। तथा राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री **अशोक गहलोत जी** ने समारोह की अध्यक्षता की। 'ब्राह्मी-पुरस्कार' (वर्ष 2001) ब्राह्मी-लिपि के विश्वविख्यात विशेषज्ञ विद्वान् **प्रो० किरण कुमार थपल्याल**, लखनऊ को उनके उल्लेखनीय योगदान के लिये समर्पित किया गया। राज्यसभा के महासचिव **श्री रमेशचन्द्र जी त्रिपाठी** की अध्यक्षता में गठित एक उच्चस्तरीय चयन-समिति ने उनका नाम सर्वसम्मति से चयनित किया था। तथा सुप्रसिद्ध गांधीवादी समाजसेविका और अहिंसा के प्रचार-प्रसार में समर्पित **सुश्री निर्मलाताई देशपांडे** को वर्ष 2001 का 'अहिंसा-पुरस्कार' समर्पित किया गया।

समारोह में मंगल-आशीवर्चन प्रदान करते हुये पूज्य आचार्यश्री ने कहा कि भारतीय संस्कृति में नीति रही है कि **"स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते"** अर्थात् राजा का आदर तो मात्र अपने देश में होता है, किन्तु विद्वान् सारे भूमण्डल में पूजा जाता है। उनके लिये देश और काल की सीमायें लागू नहीं पड़तीं हैं। —ये विचार पूज्य आचार्यश्री ने दोनों पुरस्कारों के समर्पण-समारोह में व्यक्त किये। उन्होंने श्रीमती सोनिया गाँधी को नेहरू-गाँधी-परिवार की परम्पराओं के अनुरूप गतिशील रहने की प्रेरणा दी और उन्हें मंगल-आशीर्वाद भी दिया। सम्मानित मनीषियों को भी पूज्य आचार्यश्री ने अपना मंगल-आशीर्वाद प्रदान किया।

समारोह की मुख्य-अतिथि **श्रीमती सोनिया गाँधी** जी ने भगवान् महावीर और जैनधर्म के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए कहा कि इनके सिद्धांत प्राणीमात्र के लिये हितकारी हैं। उन्होंने राजनीतिज्ञों की कथनी और करनी के अन्तर की समीक्षा करते हुये भावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्त की कि इन दोनों में समानता और एकरूपता होनी चाहिये। उन्होंने इस बात पर दुःख व्यक्त किया है कि "देश में आज अहिंसा और प्रेम की जगह हिंसा और नफरत का माहौल पैदा किया जा रहा है तथा सत्ता और धन ही सब कुछ हो गया है। अच्छी-अच्छी और आदर्श की बातें करनेवाले ही यह सब कुछ कर रहे हैं।" उन्होंने कहा कि "हजारों साल की तपस्या के बाद हमारे देश में जिन मूल्यों की स्थापना हुई, आज उन्हें नष्ट किया जा रहा है और त्याग, सेवा, परोपकार के मार्ग पर चलने के बजाए हम अपने-अपने स्वार्थों को पूरा करने में लिप्त हो गये हैं।" सोनिया जी ने कहा कि "नई पीढ़ी को अच्छे संस्कार देने की बजाए उन्हें गुमराह किया जा रहा है। समाज का नेतृत्व करनेवाले ही यदि पतन के मार्ग पर चलने लगे, तो नई पीढ़ी को कैसा आदर्श मिलेगा?" उन्होंने कहा कि "वास्तविकता यह है कि आज राजनेता जो बातें करते हैं, उसके विपरीत आचरण करते हैं। दुनिया में कोई पैगम्बर या संत ऐसा नहीं हुआ, जिसने कथनी और करनी की समानता पर जोर नहीं दिया हो।" उन्होंने इस बात पर प्रसन्नता जाहिर की कि भगवान् महावीर के 2600वें जन्म-कल्याणक वर्ष को सारी दुनिया में मनाया जा रहा है। सोनिया जी ने कहा दुनिया में सुख-शांति की स्थापना करने के लिये हमें हर कीमत देकर भारत की परम्पराओं और विरासत की रक्षा करनी होगी। भारत ने हिंसा में कभी भी विश्वास नहीं किया। हमारा विश्वास दूसरों की जान लेकर जीने में नहीं, वरन् अपनी जान की बाजी लगाकर दूसरों की रक्षा करने में है। वर्तमान हालात में भगवान् महावीर द्वारा बनाये गये मार्ग का अनुसरण करने में ही हम सब का कल्याण है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा का मार्ग अपनाया था। स्व० इंदिरा गांधी और राजीव गांधी के मन में भी सदैव जैनदर्शन के प्रति अटूट आदर रहा। देश के इतिहास और संस्कृति में जैनधर्म ने अलग पहचान बनाई है, जिसका पं० नेहरू ने अपने लेखन में विशेषरूप से जिक्र किया है।"

राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री **अशोक गहलोत जी** ने समारोह की अध्यक्षता करते हुये भगवान् महावीर के सिद्धान्तों की समसामयिकता सिद्ध करते हुये जैनसमाज का राष्ट्र की उन्नति और विकास में महनीय योगदान बताया। उन्होंने पूज्य आचार्यश्री से देश को मार्गदर्शन देने की विनती भी की।

समागत अतिथियों और विद्वानों का स्वागत करते हुये **श्रीमती सरयू दफ्तरी जी** ने नेहरू-गाँधी-परिवार के द्वारा जैनसमुदाय के प्रति अपनत्व और योगदानों का विस्तार से उल्लेख करते हुये श्रीमती गाँधी जी एवं अन्य समागत अतिथियों का भावभीना स्वागत किया। तथा **सुश्री निर्मलाताई देशपांडे** ने पूज्य आचार्यश्री के प्रति विनयांजलि अर्पित करते हुये उन्हें भारतीय संस्कृति का शिखर-पुरुष बताया और कहा कि ऐसे संतों के पावन-सान्निध्य और मार्गदर्शन के कारण ही भारत की सांस्कृतिक-परम्परा इस घोर भौतिकवादी युग में भी सुरक्षित बची हुई है।

कुन्दकुन्द भारती न्यास के न्यासी **साहू रमेशचन्द्र जी** ने पुरस्कारों की गरिमापूर्ण परम्परा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और पूज्य आचार्यश्री की पावन-प्रेरणा के सम्बन्ध का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया।

ये पुरस्कार श्रीमती सोनिया गाँधी जी के करकमलों से समर्पित किये गये। इन पुरस्कारों में एक-एक लाख रुपयों की राशि, प्रशस्तिपत्र, सरस्वती प्रतिमा आदि समर्पित किये गये हैं।

इसी कार्यक्रम में शोध के क्षेत्र में विश्वकीर्तिमान बनाने वाले **डॉ० त्रिलोकचन्द्र जी कोठारी** एवं स्वास्थ्य-सेवाओं में विश्रुत नाम **डॉ० शांतिकुमार सोगानी** को उनकी उत्कृष्ट सामाजिक सेवाओं के लिये 'उत्कृष्ट-समाजसेवी' पुरस्कार भी दिये गये। श्रीमती सोनिया गाँधी जी ने डॉ० कोठारी की शोधकृति 'भगवान् महावीर की परम्परा और समसामयिक सन्दर्भ' का भी लोकार्पण किया।

समारोह में धन्यवाद-ज्ञापन श्री सी०पी० कोठारी ने किया। समारोह का सफल संयोजन और संचालन डॉ० **सुदीप जैन** ने किया। कार्यक्रम के आयोजन एवं व्यवस्था में श्री सुभाष चोपड़ा जी, श्रीमती सरोज खापर्डे जी, श्री चक्रेश जैन (बिजलीवाले), श्री सतीश जैन (SCJ), श्री सुरेश जैन (EIC), श्री महेन्द्र कुमार जी जैन (पूर्व निगम-पार्षद), श्री सुरेन्द्र कुमार जी जैन जौहरी, श्री एम०के० जैन, श्री रूपेश जैन, श्री राकेश जैन (जनकपुरी), श्री सतीश जैन (आकाशवाणी), डॉ० वीरसागर जैन, श्री अनिल जैन (ओम मैटल), श्री पारसदास जैन श्री प्रभात जैन तथा विभिन्न क्षेत्रों के सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने उल्लेखनीय योगदान दिया।

—सम्पादक ✱✱

श्रुतपंचमी-समारोह का आयोजन

परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के पावन सान्निध्य में कुन्दकुन्द भारती प्रांगण में 27 मई 2001, रविवार को श्रुतपंचमी-पर्व के सुअवसर पर एक गरिमापूर्ण समारोह का आयोजन किया गया। इस समारोह में ध्वजारोहण की मांगलिक विधि के उपरान्त जिनमन्दिर जी में श्रुतपूजन का कार्यक्रम धर्मानुरागी **श्री राकेश जैन 'गौतम मोटर्स'** एवं उनके परिजनों के नेतृत्व में स्थानीय जैनसमाज के द्वारा सम्पन्न हुआ। श्रुतपूजन के बाद कुन्दकुन्द भारती के नन्दनकानन जैसे सुरम्य एवं आह्लादकारी परिसर में एक सभा आयोजित हुई, इस सभा के प्रारंभ में धर्मानुरागिणी **श्रीमती उषा जैन** एवं **श्रीमती शालिनी जैन** की मंगल-गीतियाँ प्रस्तुत हुईं।

इस सभा में अपना मंगल-आशीर्वाद प्रदान करते हुये परमपूज्य **आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज** ने श्रुत के प्रवर्तन की परम्परा पर गरिमापूर्ण वक्तव्य प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि "वीतराग परमात्मा के द्वारा उपदिष्ट तत्त्वज्ञान का संरक्षण आचार्य गुणधर, आचार्य धरसेन, आचार्य पुष्पदंन्त-भूतबलि एवं आचार्य कुन्दकुन्द जैसे महान् समर्थ आचार्यों ने अत्यंत श्रम और समर्पणपूर्वक किया है। यह उनका ही अपार वात्सल्य है कि मूल जिनवाणी आज भी हमें सुरक्षित मिलती है, इस परम्परा को हमें अत्यंत निष्ठा और समर्पण की भावना से न केवल सुरक्षित करना है; अपितु इसका विश्वभर में आधुनिक विज्ञान की तकनीकियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का सहारा लेते हुये इसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी करना है।"

इसी कार्यक्रम में पूज्य **मुनिश्री ऊर्जयन्त सागर जी** ने श्रुतपंचमी-पर्व की महिमा बताते हुये जिनवाणी के प्रचार-प्रसार पर बल दिया। उन्होंने कहा कि "हमारे हजारों आचार्यों, मुनिराजों और विद्वानों के परिश्रम और त्याग के फलस्वरूप जिनवाणी इस पंचमकाल में सुनने को मिल रही है। हमें इनका उपकार कभी भी नहीं भूलना चाहिये, और जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में काम करनेवाले विद्वानों का भी समाज को समुचित सम्मान करना चाहिये।"

विषय-प्रवर्तन करते हुये सभा के संयोजक **डॉ० सुदीप जैन** ने श्रुतपंचमी-पर्व के प्रवर्तन का इतिहास भावपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत करते हुये श्रुतपंचमी पर्व का महत्त्व बताया, तथा प्राकृतभाषा में आचार्यों के द्वारा जो मूलतत्त्वज्ञान निबद्ध किया गया है; उसकी भी महिमा बताई। उन्होंने स्पष्ट किया कि प्राकृतभाषा में जिनवाणी का निबद्ध होना यह प्रमाणित करता है कि जैन-परम्परा की दृष्टि ऊँच-नीच के भेद के बिना सभीजनों को आत्मकल्याण का अवसर प्रदान कराना थी।

सभा का मंगलाचरण करते हुये डॉ० **वीरसागर जैन** ने आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में निहित तत्त्वज्ञान की गहनता एवं आनुपूर्विकता पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर अहिंसा-स्थल के अध्यक्ष धर्मानुरागी **श्री कैलाशचंद्र जी जैन 'जैना वाच कम्पनी'** एवं उनके समस्त परिजनों तथा ट्रस्ट के पदाधिकारियों ने पूज्य आचार्यश्री के श्रीचरणों में श्रीफल समर्पित कर **अहिंसा-स्थल पर इस वर्ष चातुर्मास** स्थापित करने की विनती की, जिसे पूज्य आचार्यश्री ने उदारतापूर्वक स्वीकार किया तथा घोषणा की कि अहिंसा-स्थल पर भगवान् महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक-वर्ष के अंतर्गत भव्य महामस्तकाभिषेक का समारोह आयोजित होना चाहिये, जिससे कि इस क्षेत्र की गरिमा और विकास के कार्य सम्पन्न हो सकें। समारोह की अध्यक्षता अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष धर्मानुरागी **साहू रमेशचंद्र जी** ने की।

कार्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न धर्मानुरागी भाईयो-बहिनों ने श्रुतभक्ति के मांगलिक भजन प्रस्तुत किये। कार्यक्रम के अंत में धर्मानुरागी **साहू समीर जैन** एवं उनके परिजनों द्वारा अपनी बहिन धर्मानुरागिणी स्व० श्रीमती नंदिता जज की पुण्यस्मृति में समागतजनों को सत्साहित्य का वितरण किया गया। तथा संस्था की ओर से साधर्मी वात्सल्य का आयोजन भी किया गया। इस कार्यक्रम के आयोजन में कुन्दकुन्द भारती न्यास के माननीय न्यासीगणों के अतिरिक्त श्री प्रभात जैन, श्री सुशील जैन एवं कुन्दकुन्द भारती के समस्त कार्यकर्त्ताओं ने सक्रिय योगदान किया। **—सम्पादक ✱✱**

यूनेस्को द्वारा पूज्य आचार्यश्री का व्याख्यान आयोजित

यूनेस्को द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति और सौहार्द की भावनाओं के प्रसार के लिये जो विश्वव्यापी कार्यक्रम चलाया जा रहा है, उसके अंतर्गत दिनांक 8 मई 2001, शुक्रवार को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजधानी नई दिल्ली के प्रतिष्ठित 'नेशनल म्यूज़ियम सभागार' में परमपूज्य **आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज** का मंगल व्याख्यान केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा आयोजित किया गया। इस समारोह की अध्यक्षता मानव संसाधन विकास मंत्री **श्रीमान् मुरली मनोहर जोशी** ने की।

इस कार्यक्रम का मुख्य विषय बच्चों में अहिंसा और सौहार्द के संस्कारों का विकास करने के लिये सुनियोजित कार्यक्रम बनाना था। पूज्य **आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज** ने अपने वक्तव्य में बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से सिद्ध किया की अहिंसा की भावना प्राणीमात्र के अंतस् में विद्यमान है। आज के भौतिकवादी युग में हमने अपने लौकिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये धन और संसाधनों को प्रमुख मान लिया है, और इसी कारण से हिंसा आदि पापों का प्रसार बढ़ रहा है। आज के भौतिकवादी प्रचार-माध्यम इस कार्य में आग में घी डालने जैसा काम कर रहे हैं। इसलिये बच्चों का मन विकृत हो रहा है, और वे हिंसा, क्रूरता और कुसंस्कारों की ओर बढ़ रहे हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय को व्यापक स्तर पर ऐसे कार्यक्रमों का निर्माण और प्रचार-प्रसार करना होगा, जो बच्चों में उनके स्वाभाविक अच्छे संस्कारों और अहिंसा की भावना को न केवल सुरक्षित रखें; अपितु उसे और अधिक बढ़ायें। अहिंसा कोई धर्म या सम्प्रदाय की बात नहीं है, बल्कि यह एक आदर्श-जीवनशैली है, जो प्राणीमात्र को आपस में मिल-जुलकर रहना और सहयोग करना सिखाती है। अहिंसा के बल पर ही मनुष्य का सामाजिक रूप सुरक्षित रह सकता है। तथा यदि समाज को अहिंसक और सदाचारी बनाना है, तो यह संस्कार बचपन से ही हमें देना होंगे। आज के माता-पिता बच्चों को साईंस और टेक्नॉलाजी की ऊँची से ऊँची शिक्षा दिलाने के लिये भरपूर समय और धन खर्च करने को तैयार हैं; किन्तु उनके पास बच्चों में अच्छे संस्कार देने के लिये समय और धन प्रायः नहीं होता है। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिये कि मात्र ऊँची शिक्षा से ही बच्चे आदर्श नागरिक नहीं बन सकते हैं, बल्कि अच्छे चरित्र और संस्कारों के बल पर ही वे आदर्श नागरिक बन सकेंगे।

समारोह की अध्यक्षता करते हुये मानव संसाधन विकास मंत्री श्रीमान् **मुरली मनोहर जोशी जी** ने पूज्य आचार्यश्री के प्रति कृतज्ञ विनयांजलि अर्पित करते हुये यह भावना व्यक्त की कि उनका मंत्रालय इस दिशा में ठोस कदम उठायेगा, और पूज्य आचार्यश्री जैसे संतों के राष्ट्रहितकारी मागदर्शनों के अनुरूप प्रभावी कार्यक्रमों का निर्माण करेगा। इस समारोह के संयोजन में श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली के कुलपति धर्मानुरागी **प्रो० वाचस्पति उपाध्याय** जी का विशेष योगदान रहा।

यूनेस्को के भारत-प्रमुख की ओर से कार्यक्रम का कृतज्ञता-ज्ञापन किया गया, और पूज्य आचार्यश्री के संदेश को विश्वभर में प्रसारित करने की भावना व्यक्त की गई।

—**सम्पादक** ✱✱

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाण्डुलिपि-संरक्षण-केन्द्र का शुभारम्भ

राजस्थान में स्थापित पहले पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र का शुभारम्भ दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, जयपुर में राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर के कुलपति पद्मश्री डॉ० मण्डन मिश्र के कर-कमलों से 20 मई को सम्पन्न हुआ।

पांडुलिपि-संरक्षण-केन्द्र का दीप-प्रज्वलन करके उद्घाटन करते हुए पद्मश्री डॉ० मण्डन मिश्र जी, साथ में हैं डॉ० कलानाथ शास्त्री एवं संस्था के अध्यक्ष श्री नरेश कुमार सेठी।

'महावीर दिगम्बर जैन पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र' को 'दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र श्रीमहावीरजी' एवं 'इंडियन नेशनल ट्रस्ट फॉर आर्ट एण्ड कल्चरल हैरिटेज, लखनऊ' के संयुक्त तत्त्वावधान में जयपुर में प्रारम्भ किया गया है। इस केन्द्र में पुरातन, दुर्लभ हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का संरक्षण किया जायेगा। संरक्षण में इन्टेक द्वारा विकसित की गयी समस्त आधुनिक तकनीक प्रयोग में ली जायेगी। इस केन्द्र के माध्यम से ग्रंथ-भण्डारों एवं मंदिरों में उपलब्ध दुर्लभ पाण्डुलिपियों के संरक्षण की व्यवस्था की जा रही है। पाण्डुलिपियों के संरक्षण से जुड़े लोगों को इस केन्द्र के द्वारा प्रशिक्षित भी किया जायेगा।

समारोह के मुख्य अतिथि डॉ० मण्डन मिश्र जी ने पाण्डुलिपियों के संरक्षण की दृष्टि से प्रारम्भ किये गये। इस केन्द्र का अधिक से अधिक लाभ उठाये जाने का आह्वान किया। इन्टेक के डायरेक्टर जनरल डॉ० ओ०पी० अग्रवाल ने इस केन्द्र को इन्टेक की ओर से न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवल तकनीकी बल्कि आर्थिक सहयोग भी प्रदान किये जाने की घोषणा की। डॉ० अग्रवाल ने अपने स्वर्गीय माता-पिता के नाम से स्थापित ट्रस्ट की ओर से 2,000/- रुपये मासिक की एक छात्रवृत्ति की घोषणा भी इस अवसर पर की। —**सम्पादक** ✱✱

'श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-2000' भारतीय ज्ञानपीठ को

प्राप्त प्रस्तावों की समीक्षा के उपरान्त निर्णायक-मंडल की सर्वसम्मत अनुशंसा के आधार पर कार्यकारिणी की सहमति से संस्थान के अध्यक्ष महोदय द्वारा 'श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-2000' 'भारतीय ज्ञानपीठ - दिल्ली' को प्रदान करने की घोषणा की जाती है। इस पुरस्कार के अन्तर्गत रुपये 1,00,000 की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जायेगी। —**डॉ० अनुपम जैन**, इन्दौर ✱✱

'वर्धमान महावीर' ऑडियो कैसेट का लोकार्पण

भगवान महावीर के 2600वें जन्मोत्सव के निमित्त आयोजित विशाल समारोह में परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के पावन सान्निध्य में परेड ग्राउण्ड दिल्ली में दिनांक 3 अप्रैल को धर्मानुरागी **साहू श्री रमेश चन्द्र जी** के करकमलों से 'वर्धमान महावीर' ऑडियो कैसेट का संगीतमय वातावरण में भव्य लोकार्पण हुआ। इस कैसेट में **डॉ० उमा गर्ग**, रीडर संगीत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के मधुर कण्ठ से भगवान महावीर विषयक अनेक पदों की संगीत के साथ गाथा गाई गई है इस कैसेट के निर्माता श्री **अनिल कुमार जी जैन** काठमाण्डू वाले हैं। —**डॉ० वीरसागर जैन**, *नई दिल्ली* ✱✱

देश का पहला जैन संग्रहालय मथुरा में

फैडरिक सामन ग्राउज द्वारा 1874 में कलक्टरेट परिसर में स्थापित संग्रहालय 67 वर्ष बाद पुन: विधिवत् शुरू होने जा रहा है। प्रदेश के संस्कृति-विभाग ने इसे जैन-संग्रहालय के रूप में स्थापित करने का निर्णय लिया है। यह संग्रहालय देश का पहला जैन-संग्रहालय होगा। इसका संचालन स्वतंत्र ट्रस्ट करेगा। ट्रस्ट के गठन की प्रक्रिया अंतिम चरण में है। जुलाई से आरंभ होने वाले जैन-संग्रहालय के साथ शोध-संस्थान भी शुरु करने की योजना है।

आधुनिक मथुरा की विशिष्ट पहचान का प्रतिनिधित्व करनेवाला मथुरा-संग्रहालय अपनी समृद्धि के कारण नवीन उपलब्ध के संकलन को तैयार हो रहा है। जनपद के जैन-संस्कृति का प्रमुख केन्द्र होने के कारण यहाँ जैन-संग्रहालय की स्थापना लंबे समय से अनुभव की जा रही थी। भगवान महावीर स्वामी की पहली मूर्ति व जैनस्तूप मथुरा में ही प्राप्त हुआ था। जैनसमाज के अंतिम केविली जम्बूस्वामी भी लंबे समय तक यहाँ रहे थे। इसकारण जैनमतावलंबियों का जनपद से स्वाभाविक जुड़ाव रहा है।

वर्ष 1874 में मथुरा तत्कालीन कलक्टर एफ०एस० ग्राउस ने यहाँ की सघन मूर्तिकला के संरक्षण व जनसामान्य के अवलोकन के लिए संग्रहालय की स्थापना की। उस समय कलक्ट्रेट परिसर में बने अतिथिगृह को संग्रहालय का रूप दे दिया गया था। 1934 में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डेंपीयर नगर में नया भवन तैयार होने पर संग्रहालय का स्थानांतरण हो गया व प्राचीन भवन को मूर्तियों के संग्रहण के लिए प्रयोग किया जाने लगा। वर्तमान में प्राचीन भवन में जैन मूर्तिकला, हिंदू मूर्तिकला व बौद्ध मूर्तिकला की लगभग एक हजार मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। डेंपीयर नगर स्थित संग्रहालय में मूर्तियों की अपेक्षा जगह का अभाव होने के कारण मूर्तियों का प्रदर्शन काफी कम संख्या में हो पाता है। वर्तमान में संग्रहालय में जैन- कला से संबंधित लगभग एक हजार मूर्तियाँ होने के बावजूद इनके प्रदर्शन के लिए मात्र एक गैलरी निर्धारित है। इसमें भी जैन-कला के साथ कुषाण-काल की मूर्तियाँ भी प्रदर्शित की गई हैं।

जैन-संस्कृति व कला से मथुरा के जुड़ाव व यहाँ की समृद्ध जैन-कलाकृतियों, अभिलेख, आयग-पट्टों को लोगों के प्रदर्शन के लिए उपलब्ध कराने की आवश्यकता कई वर्षों से महसूस की जा रही थी। विगत 6 मार्च को संस्कृति विभाग की लखनऊ में हुई बैठक में प्रस्ताव को स्वीकृति देकर 30 जून तक संग्रहालय आरंभ करने का निर्णय लिया गया।

संग्रहालय के सुचारु-संचालन को प्रस्तावित ट्रस्ट के अध्यक्ष प्रदेश-संस्कृति-विभाग के सचिव व ट्रस्ट के सचिव राजकीय संग्रहालय मथुरा के निदेशक होंगे। इसमें वरिष्ठ उपाध्यक्ष जिलाधिकारी मथुरा, 4 अन्य उपाध्यक्षों में से एक पर्यटन-विभाग के संयुक्त निदेशक तथा विशेष सलाहकार इंटैक के महानिदेशक होंगे। इनके अलावा ट्रस्ट के एक चेयरमैन, एक प्रो-चेयरमैन, दो संयुक्त सचिव, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रचार-सचिव व 8 अन्य न्यासी होंगे। ट्रस्ट के साथ 11 सदस्यीय सलाहकार समिति का प्रारूप भी प्रस्तावित है।

जैन-संग्रहालय के साथ एक शोध-संस्थान भी आरंभ किया जाएगा। राजकीय संग्रहालय के निदेशक जितेंद्र कुमार ने बताया कि शासन-स्तर पर शुरु होने वाले इस पहले जैन-संग्रहालय को आरंभ करने पर लगभग 15 से 16 लाख रुपए व्यय होने का अनुमान हैं। वैसे ललितपुर जिले के देवगढ़ नामक स्थान पर एक छोटा जैन-संग्रहालय वर्तमान में मौजूद है, लेकिन इसका संचालन जैनसमाज द्वारा किया जा रहा है। श्री कुमार ने कहा कि इस संग्रहालय में लखनऊ-संग्रहालय से भी महावीर स्वामी की एक मूर्ति मंगाई जायेगी।

जैन-संग्रहालय आरंभ होने के बाद देशी व विदेशी पर्यटक जैन-कला के विस्तृत रूप का अवलोकन कर सकेंगे। इसके साथ डेंपीयर स्थित संग्रहालय की जैन-गैलरी के स्वरूप को यथावत् रखा जायेगा। **

उच्च शिक्षा के लिये छात्रवृत्ति

उच्च तकनीकी शिक्षा के लिये रिफन्डेबल (वापसी) तथा स्कूल/कॉलेज शिक्षा के लिये नान-रिफन्डेबल (वापिस न होने वाली) छात्रवृत्तियाँ योग्यता एवं कमजोर आर्थिक स्थित के आधार पर उपलब्ध हैं। आवेदन-प्रपत्र एक लिफाफे (24×10 से०मी०) पर अपना पता व तीन रुपये का डाक टिकट भेजने से प्राप्त है। आवेदन-पत्र हमें मिलने की अंतिम तिथि 15.8.2001 मंत्री (छात्रवृत्ति), जैन सोशल वैलफेयर एसोसिएशन, एफ-83, ग्रीनपार्क (मेन) नई दिल्ली-110016 पर भेजें। —**पवन कुमार जैन,** *दिल्ली* **

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यप्रदेश में जैन समुदाय अल्पसंख्यक घोषित

मध्यप्रदेश शासन ने अपनी अधिसूचना क्रमांक F 11-18/98/54-2 दिनांक 29.5.2001 द्वारा मध्यप्रदेश के मूल निवासी जैन समुदाय को अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित किया है। इस पर जैनसमाज ने मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह जी के प्रति इस पहल हेतु आभार ज्ञापित किया है। एवं आशा व्यक्त की अन्य राज्य सरकारें भी इसीप्रकार की अधिसूचनायें जारी कर भारत की इस महान संस्कृति के संरक्षण में अपना योगदान देंगी। ✱✱

श्री जयचन्द लोहाड़े का दु:खद निधन

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के भूतपूर्व महामंत्री श्री जयचंद लोहाड़े का सोमवार दिनांक 19 मार्च, 2001 को देहावसान हो गया है। वे 78 वर्ष के थे।

समाजसेवा के कार्यों में गहरी रुचि रखने वाले श्री लोहाड़े जी सन् 1978 में तीर्थक्षेत्र कमेटी के महामंत्री बने और 15 वर्षों तक लगातार महामंत्री पद की गरिमा को संभालते हुए तीर्थक्षेत्र कमेटी को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया। आपके कार्यकाल में तीर्थक्षेत्र सर्वेक्षण, तीर्थवंदना रथ प्रवर्तन, एक करोड़ ध्रुवफण्ड के संकल्प पूर्ति जैसे अनेक कार्य हुए हैं, जिससे तीर्थक्षेत्र कमेटी का सर्वोदयी विकास हुआ है। आपका जीवन अत्यन्त सरल, विनम्र एवं सेवा से ओत-प्रोत रहा है। उन्होंने समाज में कई ऐसे कार्य किये हैं जिससे आज वे अमर हैं। उनके दु:खद निधन से न केवल इस कमेटी की अपितु जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। दिवंगत आत्मा को चिर, शान्ति, लाभ एवं शोक-संतप्त उनके कुटुंबजनों को धैर्य प्राप्त हो, ऐसी भावना है।

—**अरविन्द दोशी**, *महामंत्री, दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी* ✱✱

इंडियन एअरलाइंस की उडानों पर जैन भोजन परोसा जायेगा

भगवान् महावीर 2600वाँ जन्म-महोत्सव दिगम्बर जैन राष्ट्रीय समिति के प्रयास से भारत सरकार के निर्णय के अनुसार 28 मई, 2001 से इंडियन एअरलाइंस की उड़ानों पर जैन भोजन परोसा जाने लगा है। भारत सरकार के नागर विमानन मंत्रालय ने इस आशय का पत्र दिगम्बर राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष को भेजा है। —**डॉ० डी०के० जैन** ✱✱

खाद्य-पदार्थों के पैकेटों पर शाकाहार की सूचना

दिगम्बर जैन राष्ट्रीय समिति के निरन्तर प्रयास से भारत सरकार ने शाकाहारी समाज के हित में 16 मई, 2001 को जी०एस०आर० 258 (ई) द्वारा यह अधिसूचना जारी की है कि हर पैकबंद खाद्य पदार्थ पर निर्माता को यह कानूनी घोषणा लगानी होगी और चिन्ह लगाना होगा कि उस खाद्य पदार्थ में कोई भी मांसाहारी तत्व नहीं है। उक्त जानकारी राष्ट्रीय समिति के महामंत्री डॉ० डी० के० जैन ने हमारे संवाददाता को दी है जिन्हें भारत सरकार से इस आशय का पत्र उनके पत्र के उत्तर में मिला है।

—**डॉ० डी०के० जैन** ✱✱

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सर्वास्वेह हि शुद्धासु जातिषु द्विजसत्तमाः।
शौरसेनीं समाश्रित्य भाषा काव्येषु योजयेत् ।।' —(*नाट्यशास्त्र*)

अर्थः—हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! सभी शुद्ध जातिवाले लोगों के लिए शौरसेनी प्राकृतभाषा का आश्रय लेकर ही काव्यों में भाषा का प्रयोग करना चाहिये।

शौरसेनी प्राकृत

"शौरसेनी प्राकृतभाषा का क्षेत्र कृष्ण-सम्प्रदाय का क्षेत्र रहा है। इसी प्राकृतभाषा में प्राचीन आभीरों के गीतों की मधुर अभिव्यंजना हुई, जिनमें सर्वत्र कृष्ण कथापुरुष रहे हैं और यह परम्परा ब्रजभाषा-काव्यकाल तक अक्षुण्णरूप से प्रवाहित होती आ रही है।" —**डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित**

(*भरत और भारतीय नाट्यकला, पृष्ठ 75*)

"भक्तिकालीन हिंदी काव्य की प्रमुख भाषा 'ब्रजभाषा' है। इसके अनेक कारण हैं। **परम्परा से** यहाँ की बोली **शौरसेनी 'मध्यदेश' की काव्य-भाषा रही है। ब्रजभाषा आधुनिक आर्यभाषाकाल में उसी शौरसेनी का रूप थी।** इसमें सूरदास जैसे महान् लोकप्रिय कवि ने रचना की और वह कृष्ण-भक्ति के केन्द्र 'ब्रज' की बोली थी, जिससे यह कृष्ण-भक्ति की भाषा बन गई।" —**विश्वनाथ त्रिपाठी**

(*हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 18*)

"मथुरा जैन आचार्यों की प्रवृत्तियों का प्रमुख केन्द्र रहा है, अतएव उनकी रचनाओं में **शौरसेनी**-प्रमुखता आना स्वाभाविक है। श्वेतांबरीय आगमग्रन्थों की **अर्धमागधी** और दिगम्बरीय आगमग्रन्थों की **शौरसेनी** में यही बडा अन्तर कहा जा सकता है कि 'अर्धमागधी' में रचित आगमों में एकरूपता नहीं देखी जाती, जबकी 'शौरसेनी' में रचितभाषा की एकरूपता समग्रभाव से दृष्टिगोचर होती है।" –**डॉ०जगदीशचंद्र जैन**

(*प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० 30-31*)

"प्राकृत बोलियों में बोलचाल की भाषायें व्यवहार में लाई जाती है, उनमें सबसे प्रथम स्थान शौरसेनी का है। जैसा कि उसका नाम स्वयं बताता है, इस प्राकृत के मूल में शूरसेन के मूल में बोली जानेवाली भाषा है। इस शूरसेन की राजधानी मथुरा थी। -**आर. पिशल** (*कम्पेरिटिव ग्रामर ऑफ प्राकृत लैंग्वेज, प्रवेश 30-31*)

प्राकृतभाषा के प्रयोक्ता

"मथुरा के आस-पास का प्रदेश 'शूरसेन' नाम से प्रसिद्ध था और उस देश की भाषा 'शौरसेनी' कहलाती थी। उक्त उल्लेख से इस भाषा की प्राचीनता अरिष्टनेमि से भी पूर्ववर्त्ती काल तक पहुँचती है।"

—(*मघवा शताब्दी महोत्सव व्यवस्था समिति, सरदारशहर (राज०) द्वारा प्रकाशित 'संस्कृत प्राकृत व्याकरण एवं कोश की परम्परा' नामक पुस्तक से साभार उद्धृत*)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रबन्ध सम्पादक की कलम से

लेखकों से अनुरोध

सम्पादक मण्डल के निर्णयानुसार एवं शोध पत्रकारिता के नियमानुसार कतिपय सूचनायें अपेक्षित हैं, जिनका विवरण निम्नानुसार है। प्राकृतविद्या के प्राज्ञ लेखकों/विदुषी लेखिकाओं से अनुरोध है कि वे अपनी रचनायें भेजते समय कृपया निम्नलिखित बिन्दुओं के बारे में सूचना देकर हमें अनुगृहीत करें :—

1. आपकी प्रेषित रचना पूर्णतया मौलिक/सम्पादित/अनूदित/संकलित है।
2. क्या प्रेषित रचना इसके पूर्व किसी भी पत्र-पत्रिका, अभिनन्दन-ग्रन्थ आदि में कहीं प्रकाशित है? यदि ऐसा है, तो कृपया उसका विवरण अवश्य दें।
3. क्या आप प्रेषित रचना 'प्राकृतविद्या' के अतिरिक्त अन्य किसी-पत्रिका आदि में प्रकाशनार्थ किसी रूप में अथवा कुछ परिवर्तन के साथ भेजी? यदि भेजी हो, तो उसका विवरण देने की कृपा करें।
4. क्या प्रेषित रचना किसी सेमीनार/सम्मेलन आदि में पढ़ी गयी है? यदि ऐसा है तो कृपया उसका विवरण अवश्य दें।
5. 'प्राकृतविद्या' का सम्पादक-मण्डल विचार-विमर्श पूर्वक ही किसी रचना को प्रकाशित करता है, अत: उक्त जानकारियाँ प्रदान कर हमें अनुगृहीत करें; ताकि आपकी रचना के बारे में निर्विवादरूप से निर्णय लिया जा सके।
6. कृपया यह भी लिखें कि 'प्राकृतविद्या' से अस्वीकृत हुये बिना आप अपनी यह रचना अन्य कहीं प्रकाशनार्थ नहीं भेजेंगे।

कृपया अपने लेख/कविता/रचना आदि के साथ उपर्युक्त जानकारियाँ पत्र द्वारा अवश्य प्रेषित कर अनुगृहीत करें।

सदस्यों से अनुरोध

यदि आपको पत्रिका नियमित रूप से नहीं मिल रही है, अथवा एकाधिक अंक आ रहे हैं, अथवा आपका पता बदल गया है; तो इनके बारे में पत्र-व्यवहार करते समय सदस्यगण अपनी सदस्यता के क्रमांक (यथा V-23, S-76 आदि) का अवश्य उल्लेख करें। यदि एकाधिक अंक आ रहे हैं, तो उन एकाधिक क्रमांकों का भी उल्लेख करें। तथा आप जिस क्रमांक को चालू रखना चाहते हैं, उसको भी स्पष्टत: निर्दिष्ट करें।

यदि आपके पते में पिन कोड नं० नहीं आ रहा है, या गलत आ रहा है, तो आप सदस्यता क्रमांक के उल्लेखपूर्वक अपना सही पिनकोड अवश्य लिखें; ताकि आपको पत्रिका समय पर मिल सके।

❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृतविद्या के सम्बन्ध में तथ्य-सम्बन्धी घोषणा

प्रकाशन स्थान	:	18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-67
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
प्रकाशक	:	सुरेशचन्द्र जैन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	कुन्दकुन्द भारती 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-67
मुद्रक	:	महेन्द्र कुमार जैन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	कुन्दकुन्द भारती 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-67
सम्पादक	:	डॉ० सुदीप जैन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	कुन्दकुन्द भारती 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-67
स्वामित्व	:	सुरेशचन्द्र जैन मन्त्री, कुन्दकुन्द भारती 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-67

मैं **सुरेशचन्द्र जैन** एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य हैं।

सुरेशचन्द्र जैन
प्रकाशक

प्राकृतविद्या के स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक श्री सुरेशचन्द्र जैन, मंत्री, श्री कुन्दकुन्द भारती, 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067 द्वारा प्रकाशित; एवं मुद्रक श्री महेन्द्र कुमार जैन द्वारा, पृथा ऑफसेट्स प्रा० लि०, नई दिल्ली-110028 पर मुद्रित।

भारत सरकार पंजीयन संख्या **48869/89**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस अंक के लेखक/लेखिकायें

1. आचार्यश्री विद्यानन्द मुनिराज—भारत की यशस्वी श्रमण-परम्परा के उत्कृष्ट उत्तराधिकारी एवं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी संत परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज वर्तमान मुनिसंघों में वरिष्ठतम हैं।

इस अंक में प्रकाशित 'सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव' शीर्षक आलेख आपके द्वारा विरचित हैं।

2. डॉ० ए०एन० उपाध्ये—प्राकृतभाषा एवं जैनागम-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ मनीषी रहे डॉ० उपाध्ये आज एक प्रामाणिकता के मिथक बन चुके हैं। वे अपने यश:काय रूप में साहित्य के द्वारा कालजयी बने हुये हैं। इस अंक में प्रकाशित 'भगवान् महावीर और उनका जीवन-दर्शन' आलेख आपके द्वारा लिखित है।

3. डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया—आप जैनविद्या के क्षेत्र में सुपरिचित हस्ताक्षर हैं, तथा नियमित रूप से लेखनकार्य करते रहते हैं। इस अंक में प्रकाशित 'आर्या चन्दनाष्टक' नामक कविता के रचयिता आप हैं।

स्थायी पता—मंगल कलश, 394, सर्वोदय नगर, आगरा रोड़, अलीगढ़-202001 (उ०प्र०)

4. अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ—आप हिन्दी के अच्छे कवि हैं। इस अंक में प्रकाशित 'महावीर जन्मकल्याणक-महोत्सव' शीर्षक कविता आपके द्वारा लिखित है।

स्थायी पता— 769, गोदिकों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर-302003 (राज०)

5. डॉ० प्रेमचंद रांबका—आप हिन्दी-साहित्य के सुविज्ञ विद्वान् हैं।

इस अंक में प्रकाशित आलेख 'वर्द्धमान महावीर : जीवन एवं दर्शन' आपके द्वारा रचित है।

स्थायी पता—1910, खेजड़ों का रास्ता, जयपुर-302003 (राज०)

6. कविवर नवलशाह—आप बुंदेलखंडी भाषा के प्रख्यात महाकवि रहे। सत्रहवीं शताब्दी में रचित आपका साहित्य भारतीय वाङ्मय की अमूल्य धरोहर है। आपके द्वारा रचित 'श्री वर्द्धमान पुराण' के एक अंश 'चन्दना-चरित' को इस अंक में सानुवाद दिया गया है।

7. डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल—आप ओरियंटल पेपल मिल्स, अमलाई में कार्मिक अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त हुये, जैनसमाज के अच्छे स्वाध्यायी विद्वान् हैं। इस अंक में प्रकाशित 'तिलोयपण्णत्ती में भगवान् महावीर और उनका सर्वोदयी दर्शन' शीर्षक आलेख आपकी लेखनी से प्रसूत है।

पत्राचार-पता—बी०-369, ओ०पी०एम० कालोनी, अमलाई-484117 (उ०प्र०)

8. डॉ० उदयचंद जैन—सम्प्रति सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज०) में प्राकृत विभाग के अध्यक्ष हैं। प्राकृतभाषा एवं व्याकरण के विश्रुत विद्वान् एवं सिद्धहस्त प्राकृत कवि हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस अंक में प्रकाशित 'वइसालीए कुमार-वड्ढमाणो' शीर्षक का प्राकृत आलेख आपकी लेखनी से प्रसूत हैं।

स्थायी पता—पिऊकुंज, अरविन्द नगर, ग्लास फैक्ट्री चौराहा, उदयपुर-313001 (राज०)

9. डॉ० (श्रीमती) माया जैन—आप जैनदर्शन, की अच्छी विदुषी हैं। इस अंक में प्रकाशित 'त्रिशलाकुंर की तत्त्वदृष्टि' शीर्षक आलेख आपकी लेखनी से प्रसूत है।

स्थायी पता—पिऊकुंज, अरविन्द नगर, ग्लास फैक्ट्री चौराहा, उदयपुर-313001 (राज०)

10. डॉ० सुदीप जैन—श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में जैनदर्शन विभाग में वरिष्ठ प्राध्यापक एवं प्राकृतभाषा पाठ्यक्रम के संयोजक। अनेकों पुस्तकों के लेखक, सम्पादक। प्रस्तुत पत्रिका के 'मानद सम्पादक'।

इस अंक में प्रकाशित 'सम्पादकीय', के अतिरिक्त 'वैशाली और राजगृह' — 'महावीर-देशना के अनुपम रत्न : अनेकान्त एवं स्याद्वाद' तथा 'भगवान् महावीर और अहिंसा-दर्शन' नामक आलेख आपके द्वारा लिखित हैं।

स्थायी पता—बी-32, छत्तरपुर एक्सटेंशन, नंदा फार्म के पीछे, नई दिल्ली-110030

11. डॉ० (श्रीमती) नीलम जैन—आप हिन्दी एवं जैनदर्शन की विदुषी हैं। इस अंक में प्रकाशित 'महावीर के संघ की गणिनी युगप्रवर्तिका 'चन्दनबाला' आलेख आपके द्वारा रचित है।

12. डॉ० वीरसागर जैन—आप हिन्दी भाषा-साहित्य एवं जैनदर्शन के विख्यात् विद्वान् हैं। सम्प्रति आप श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में जैनदर्शन विभाग के अध्यक्ष हैं। इस अंक में प्रकाशित 'महावीराष्ट स्तोत्र' का हिन्दी अनुवाद आपके द्वारा रचित है।

पत्राचार पता— श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली-110067

13. श्रीमती प्रभा किरण जैन—आप हिंदी-बाल-साहित्य की अच्छी कवियत्री हैं। इस अंक में प्रकाशित 'थी शक्ति कैसी प्रभु-भक्ति में' शीर्षक कविता आपके द्वारा लिखित है।

स्थायी पता— 2, पन्ना भवन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

14. श्रीमती रंजना जैन—हिन्दी साहित्य की विदुषी लेखिका हैं। इस अंक में प्रकाशित आलेख 'वैशालिक महावीर' और 'भगवान् महावीर के अनेकान्त का सामाजिक पक्ष' आपके द्वारा लिखित है।

स्थायी पता—बी-32, छत्तरपुर एक्सटेंशन, नंदा फार्म के पीछे, नई दिल्ली-110030

15. प्रभात कुमार दास—आप प्राकृतभाषा एवं साहित्य के शोधछात्र हैं। इस अंक में प्रकाशित आलेख 'लोकतांत्रिक दृष्टि और भगवान् महावीर' लेख आपके द्वारा लिखित है।

पत्राचार पता—शोधछात्र प्राकृतभाषा विभाग, श्री ला०ब०शा०रा०सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली-16

16. ममता जैन—आप एम०ए० की शोधछात्रा हैं। इस अंक में प्रकाशित आलेख 'नारी सम्मान की प्रतीक चन्दना' आपके द्वारा लिखित है।

स्थायी पता—68, मिशन कम्पाउण्ड, सहारनपुर-247001 (उ०प्र०)

17. श्रीमती नीतू जैन—आप डॉ० वीरसागर जैन की सहधर्मिणी हैं। जैन-साहित्य की अच्छी स्वाध्यायी गृहिणी हैं। इस अंक में प्रकाशित आलेख 'महासती चन्दना' आपके द्वारा लिखित है।

❖❖

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की 2600वीं जन्म-जयन्ती पर विनयाञ्जलिसहित)

तीर्थंकर वर्द्धमान

पूर्व भव	अच्युतेन्द्र		
अन्य नाम	वर्द्धमान (वीर, अतिवीर, सन्मति, महावीर)		
तीर्थंकर क्रम	चतुर्विंशतमक		
जन्मस्थान	क्षत्रिय कुण्डग्राम		
पितृनाम	सिद्धार्थ		
मातृनाम	त्रिशलादेवी (प्रियकारिणी)		
वंशनाम	नाथवंश (ज्ञातृवंश, 'नाठ'-इति पालिः)		
गर्भावतरण	आषाढ़ शुक्ला षष्ठी, शुक्रवार, 17 जून 599 ई०पू०।		
गर्भवास	नौमास, सात दिन, बारह घंटे		
जन्मतिथि	चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, सोमवार, 27 मार्च, 598 ई०पू०।		
वर्ण (कान्ति)	स्वर्णाभ (हिमवर्ण)		
चिह्न	सिंह		
जन्म-समय की	नक्षत्र	-	उत्तरा फाल्गुनि
ज्योतिर्ग्रहस्थिति	राशि	-	कन्या
	महादशा	-	बृहस्पति
	दशा	-	शनि
	अन्तर्दशा	-	बुध
गृहस्थितरूप	अविवाहित		
कुमारकाल	28 वर्ष, 5 माह, 15 दिन		
दीक्षातिथि	मंगसिर कृष्ण 10, सोमवार, 29 दिसम्बर 569 ई०पू०।		
तपःकाल	12 वर्ष, 5 मास, 15 दिन		
कैवल्य-प्राप्ति	वैशाख शुक्ला 10, रविवार 26 अप्रैल, 557 ई०पू०।		
देशनापूर्वमौन	66 दिन		
देशनातिथि (प्रथम)	श्रावण कृष्ण प्रतिपदा, शनिवार, 1 जुलाई 557 ई०पू०। (यह तिथि 'वीरशासन जयन्ती' के रूप में मनायी जाती है।)		
निर्वाणतिथि	कार्तिक कृष्णा 30 (अमावस्या), मंगलवार, 15 अक्तूबर 527 ई०पू०।		
निर्वाण-भूमि	पावा (मध्यमा पावा)		
आयु	72 वर्ष (71 वर्ष, 4 मास, 25 दिन)		

**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(भारत सरकार पंजीयन संख्या 48869/89)

"पायन्त्यध्वगान् गीत्वा बालिका जलमेकशः।
पुनस्तास्ते न मुञ्चन्ति केतकी भ्रमरा इव।।"
-(धर्मसंग्रह श्रावकाचार, 7/109)

अर्थः- मगध देश की कुलकुमारी-बालिकायें मार्ग में चलने वाले लोगों को मधुर-मधुर गीतों को गाकर जल पिलाती हैं। इसी से पथिक लोग भी फिर उनके जलपान को उसी प्रकार नहीं छोड़ते हैं, जैसे केतकी पुष्प को भ्रमर नहीं छोड़ते हैं।

राजगृह में भगवान् महावीर के समवसरण
में जाते हुये पथिकों को जलपान कराती बालिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org